भारतीय सहकारिता आन्दोलन ।

शंकरसहाय सकसेना ।

Bharatiya Sahqarita Andolan

भारतीय सहकारिता आन्दोलन।

लेखक

Shankar Sahay Saksena

शंकरसहाय सकसेना,

एम.ए.,(इकान.)एम.ए.,(काम.)बी.काम.

अर्थशास्त्र प्रोफ़ेसर, बरेली कालेज, बरेली।

प्रथम संस्करण] १६३५ [मूल्य २) रुपया

1935

प्रकाशक—

एस. एस. सकसेना,
बरेली कालेज, बरेली।

मिलने का पता—

व्यवस्थापक—भारतीय ग्रन्थमाला, वृन्दावन।
तथा—प्रोफ़ेसर शंकरसहाय सकसेना,
बरेली कालेज, बरेली, यू० पी०।

मुद्रक—

त्रिभुवननाथ शर्मा,
जमुना प्रिन्टिग वर्क्स, मथुरा।

समर्पण ।

श्रीमन् पंडित शंकरप्रसाद भार्गव एम. ए., एल-एल. बी., प्रिंसिपल, राजऋषी कालेज, अलवर तथा भूतपूर्व प्रिंसिपल, सनातनधर्म कालेज, कानपुर।

गुरुदेव,

जिस वस्तु को आपके चरणों में बैठकर प्राप्त किया है वही भेंट करने चला हूँ; यह धृष्टता समझी जा सकती है, किन्तु मैं तो इस पुस्तक को परीक्षा रूप में लेकर उपस्थित हुआ हूँ। आशा है कि आप इसे स्वीकार कर मुझे कृतार्थ करेंगे।

शंकर

निवेदन ।

"भारतीय सहकारिता आन्दोलन" पर यह पुस्तक लेकर पाठकों के सामने उपस्थित होते हुए हृदय को अत्यन्त हर्ष हो रहा है। सम्भवतः मैं इस विषय पर पुस्तक लिखने का प्रयास भी न करता यदि श्रीयुत भगवानदासजी केला मुझे पुस्तक लिखने पर वाधित न कर देते। श्री केलाजी साहित्यिक तपस्वी हैं, भारतीय ग्रन्थमाला के द्वारा अर्थशास्त्र तथा राजनीति साहित्य उत्पन्न करके उन्होंने हिन्दी की महान सेवा की है। कोई भी उनके सम्पर्क में आकर मातृ भाषा को पुष्पांजलि चढ़ाये विना नहीं रह सकता। यही मेरे साथ हुआ, केलाजी को हिन्दी में 'सहकारिता' पर एक भी पुस्तक का न होना खटक रहा था। स्वयं अन्य पुस्तकों के लिखने में व्यस्त होने के कारण उन्होंने मुझे पकड़ा। इस विषय में रुचि होने के कारण मैंने पुस्तक लिखने का वचन दे दिया।

एक वर्ष परिश्रम करके गत वर्ष पुस्तक तैयार करली थी किन्तु मेरे यहां चोरी होगई और हस्त लिखित पुस्तक भी हाथ से निकल गई। वचन वध्य हो चुका था, अस्तु, फिर एक वर्ष परिश्रम करके पुस्तक लिखी।

सहकारिता आन्दोलन के विना भारतवर्ष के ग्रामों का उद्धार नहीं हो सकता। आयरलैंड, डैनमार्क, जर्मनी, तथा इटली में तो इस आन्दोलन की बदौलत किसानों की काया पलट होगई। भारतवर्ष में जहां किसानों के जीवन मरण का प्रश्न उपस्थित है,

बिना इस आन्दोलन के गति ही नहीं है। अंग्रेज़ी में इस विषय पर हज़ारों सुन्दर ग्रन्थों की रचना हो चुकी है, किन्तु उन पुस्तकों से अंग्रेज़ी न पढ़े हुए देश वासी कोई लाभ नहीं उठा सकते। हिन्दी भाषा भाषी इस आन्दोलन की अद्भुत राष्ट्र निर्माण की शक्ति को जान सकें, इसी उद्देश्य से यह पुस्तक लिखी गई है।

अन्त में मैं संयुक्त प्रन्तीय सहकारिता विभाग के रजिस्ट्रार श्री विष्णु सहायजी आई. सी. एस. के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करना चाहता हूँ। उन्होंने समय निकाल कर सारी पुस्तक को पढ़ा और इस विषय के अपने अनुभव का मुझे पूरा लाभ दिया है। उनके सौजन्य तथा सहानुभूति का मूल्य मैं धन्यवाद देकर आंकने की धृष्टता नहीं करूँगा।

मुझे आशा है कि भारतीय निर्धन जनता और विशेषतः ग्राम निवासियों से सम्बन्ध रखने वाले सरकारी विभाग तथा ग़ैर-सरकारी संस्थाएें इस पुस्तक का यथेष्ट स्वागत करेंगी।

विनीत
शंकरसहाय सकसेना।

बरेली कालेज।

सहायक पुस्तकें ।

1. Co-operation in many lands *by* L. S. Smith Gordon. and C. O'Brien. Vols. I and II.
2. Co-operation in Bombay *Edited by* Prof. H. L. Kaji
3. Co-operation in India *by* Henry W. Walff.
4. Peoples Bank " "
5. Co-operative Banking " "
6. Co-operative movement in India *by* Dr. Eleanor M. Hough Ph. D.
7. Rusticus Loquitur *by* M. L. Darling
8. Co-operative Movement in India *by* P. Mukherji M.A.
9. Co-operation in India and Abroad *by* Talmaki.
10. Rural Reconstruction in Ireland *by* Linel Smith Gordon.
11. Reconstruction and Education in Rural India *by* Dr. Prem Chand Lal Ph. D.
12. Up From Poverty *by* Dr. D. Spencer Hatch
13. Remaking of an Indian Village *by* F. L. Brayne.
14. Agricultural Co-operation in India *by* John Matthai D. Sc.
15. Indian Year Book 1934.
16. Co-operation in India *by* H. L. Kajl.
17. Co-operation in Agriculture *by* H. W. Walff.
18. Co-operative Movement in Indi a *by* J. L. Raina.
19. Report of the Central Banking Enquiry Committee.
20. Report of the Royal Agriculture Commission.

21. Report of the U. P. Banking Enquiry Committee.

22. Report of the Maclagan Committee on Co-operation.

23. Report of the Co-operative Committee of U. P.

24. Annual Reports of the working of Co-operative Departments in Different Provinces.

26. Reports of the Banking Enquiry Committees of the Different Provinces.

26 Review of Rural Welfare Activities in India *bg* C. F. Stickland C. I. E.

27. The Law and Principles of Co-operation *by* H. Calvert.

28. Co-operation in Germany and Italy *by* M.L. Darling.

29. Introduction to Co-operation in India *by* C. F. Stickland.

30. Studies in European Co-operation, Vols. I and II *by* C. F. Stickland.

३१. अर्थशास्त्र शब्दावली—भारतीय ग्रन्थमला, वृन्दावन।

विषय सूची

भारतीय सहकारिता आन्दोलन

प्रथम परिच्छेद

सहकारिता के सिद्धान्त

समाज में रह कर मनुष्य विना एक दूसरे के साथ सहयोग किये, एक दिन भी अपना काम नहीं चला सकता। सभ्यता के प्रारम्भिक काल में भी मनुष्य-समाज सहकारिता के सिद्धान्तों को समझती थी और व्यवहारिक जीवन में उसका उपयोग भी करती थी। यदि मनुष्य-समाज सहकारिता को न अपनाती तो मनुष्य-जाति आज इतनी उन्नत तथा सभ्य कदापि न होती। आज से हज़ारों वर्ष पहले ही अनुभव से यह ज्ञात होगया था कि मनुष्य-जीवन, बिना एक दूसरे के साथ सहयोग किये, असम्भव हो जायगा।

आज कल प्रतिस्पर्धा का युग है; साधारणतया यह समझा जाता है कि जो प्रतिस्पर्धा में नहीं ठहर सकता उसके लिये संसार में कोई स्थान नहीं है, इस कारण लोगों की यह धारणा बन गई है कि मनुष्य जीवन का मूल मन्त्र प्रतिस्पर्धा है; किन्तु देखने से ज्ञात होता है कि मनुष्य जीवन का मूल मन्त्र सहकारिता है, न कि प्रतिस्पर्धा। यदि देखा जावे तो मनुष्य एक दूसरे पर अपनी साधारण आवश्यकताओं के लिये इतना निर्भर है कि

यदि एक दिन के लिये भी उसको दूसरों का सहयोग न मिले तो उसका जीवन ही कण्टकमय हो जावे।

समाज में प्रत्येक मनुष्य की कार्य-शक्ति एकसी नहीं है। अस्तु, सहकारिता तथा श्रम-विभाग (Division of labour) के बिना मनुष्य समाज में रह कर अपनी आवश्यकतायें पूरी नहीं कर सकता। मनुष्य-समाज की उन्नति तथा सभ्यता के विकास के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि पूर्ण श्रम-विभाग का सिद्धान्त काम में लाया जावे। यदि अधिक क्षमता वाले मनुष्य ऐसे साधारण कार्यों में अपनी शक्ति का दुरुपयोग करें, जिनको साधारण क्षमता वाले मनुष्य भी कर सकते हैं, तो समाज तथा मनुष्य की व्यक्तिगत उन्नति में भारी बाधा पड़ेगी। मनुष्य-जाति तभी उन्नति कर सकती है, जब मनुष्य को अपनी कार्य-शक्ति के अनुसार किसी एक कार्य में विशेष योग्यता प्राप्त करने का अवसर दिया जावे। उदाहरण के लिये, किसी भी वस्तु के तैयार कराने में हमें सैकड़ों मनुष्यों का सहयोग प्राप्त करना पड़ता है। मध्य प्रान्त अथवा बम्बई प्रान्त का किसान कपास उत्पन्न करता है। कपास उत्पन्न करने में उसे स्वयं बहुत से मनुष्यों का सहयोग प्राप्त करने की आवश्यकता पड़ती है। महाजन, ज़मींदार, बढ़ई, लुहार, तथा मज़दूर सभी उसे कपास उत्पन्न करने में सहायता देते हैं। दलाल, आढ़तिया, तथा व्यापारी उस कपास को मोल लेकर अथवा व्यवसायियों के लिये ख़रीद कर जिनिंग फ़ैक्टरी में ले जाते हैं। जिनिंग फ़ैक्टरियों में सैकड़ों

मज़दूरों के द्वारा कपास ओटी जाती है, और गांठों में बांध कर अहमदाबाद, बम्बई, अथवा जापान के औद्योगिक केन्द्रों को भेज दी जाती है। इस कार्य में भी बैलगाड़ी, मोटर, रेल, और जहाज़ों पर कार्य करने वाले, तथा व्यापारियों का सहयोग होता है। इसके उपरान्त कारख़ानों में हज़ारों मज़दूरों, मिस्त्रियों, तथा अन्य कार्य-कर्ताओं की सहायता से कपड़ा तैयार किया जाता है। अन्त में वह कपड़ा रेलों, जहाज़ों, तथा बैलगाड़ियों और मोटरों के द्वारा दूकानदारों के पास आता है। ग्राहक उसको ख़रीद कर दर्ज़ी से कोट, कमीज़ इत्यादि बनवाता है, तब कहीं वह वस्त्र पहिन सकता है। जब तक इतने लोग एक दूसरे के साथ सहयोग नहीं करेंगे, वस्त्र तैयार नहीं हो सकते। इसी प्रकार, किसान गांवों में रह कर गेंहूँ तथा अन्य अनाज उत्पन्न करता है, और नगरों में निवास करने वाले अध्यापक, क्लर्क, डाक्टर, वकील तथा दूसरे लोग उस गेंहूँ को खाते हैं। गेंहूँ उत्पन्न करने में तथा उसे शहरों तक लाने में सैकड़ों मनुष्यों की सहायता की आवश्यकता होती है। कोई भी काम क्यों न ले लिया जावे, बिना सहयोग के वह सरलता-पूर्वक नहीं हो सकता। आज हम लोगों का जीवन एक दूसरे के सहयोग पर इतना अधिक निर्भर है कि यदि सहकारिता के सिद्धान्त को त्याग दिया जावे तो यह ध्यान में भी नहीं आ सकता कि संसार का कार्य कैसे चल सकेगा। मनुष्य की शक्ति सहकारिता में छिपी हुई है, और सहकारिता के द्वारा ही उसकी उन्नति हो सकती है।

मनुष्य जाति अब सहकारिता के सिद्धान्त को भली भांति समझ गई है, और इसको मनुष्य-जीवन के लिये आवश्यक समझती है। समाज में निर्बल और सबल, बुद्धिमान और मन्द-बुद्धि, साहसी और कायर, चतुर और मूर्ख, शीघ्र कार्य करने वाले तथा आलसी—सभी प्रकार के मनुष्य हैं, यदि समाज को उन्नति की ओर अग्रसर होना है तो इन सब को एक साथ कार्य करना होगा। यदि समाज प्रतिस्पर्धा के सिद्धान्त को अपनाले तो समाज की उन्नति अवश्य ही रुक जावेगी। कुछ लोगों का कहना है कि मनुष्य जीवन एक भयंकर संग्राम है और इस संग्राम में वही जीवित रहकर सफल हो सकता है, जो संग्राम में ठहर सके। जो निर्बल हैं—जो जीवन-संग्राम में ठहर नहीं सकते, उनके लिये यहां कोई स्थान नहीं है। उनका कहना है कि यदि इस संग्राम में सबलों को निर्बलों की सहायता के लिये जाना पड़ा तो उनकी व्यक्तिगत उन्नति में बाधा पड़ेगी; व्यक्तिगत उन्नति तथा यशोपार्जन के लिये सहकारिता नहीं, प्रतिस्पर्धा की आवश्यकता है, सहकारिता इसके लिए घातक सिद्ध होगी। सहकारितावादी शक्तातिजीवन (Survival of the fittest) के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करते। यह सिद्धान्त मनुष्य को समाज के ऊपर बिठा देता है, व्यक्तिगत इच्छाओं की पूर्ति के लिये सामूहिक स्वार्थ को ठुकराकर अपने पथ पर अग्रसर होना ही इस सिद्धान्त के मानने वालों का उद्देश्य होता है। यह सिद्धान्त व्यक्तिगत लाभ के लिए सामूहिक लाभ को नष्ट करने की शिक्षा

देता है और समाज में घोर असमानता उत्पन्न करता है। आधुनिक युग में पूँजीपतियों और श्रमजीवियों में जो भयंकर संग्राम छिड़ा हुआ है, "पूँजी पतियों को नष्ट करदो" की जो आवाज़ चारों ओर से सुनाई देरही है, वह इस सिद्धान्त के द्वारा उत्पन्न हुई आर्थिक असमानता के कारण ही उठाई गई है।

समाज अपने निर्बल सदस्यों को ठीक उसी प्रकार नष्ट होते नहीं देख सकती, जिस प्रकार माता पिता अपने लंगड़े अथवा लूले पुत्र को मरते नहीं देख सकते। समाज का मूल मन्त्र शक्तातिजीवन न होकर "निर्बलों की रक्षा" होना चाहिये। यदि हम चाहते हैं कि समाज में उत्पन्न हुई घोर आर्थिक विषमता के कारण, हमें भयंकर क्रांतियों का सामना न करना पड़े तो हमें सहकारिता को अपनाना होगा। सहकारिता निर्बलों की रक्षा करती है, वह उनको निर्बल नहीं रहने देती, वरन् उनको संगठित करके शक्तिवान बनाने का प्रयत्न करती है। सहकारिता आन्दोलन उन लोगों की उन्नति में बाधक नहीं होता जो कि शक्तिवान हैं और प्रतिस्पर्धा में अपने पैरों पर स्वयं खड़े हो सकते हैं; सहकारिता का ऐसे लोगों से कोई सम्बन्ध नहीं है। वह तो केवल निर्धन तथा निर्बलों का आन्दोलन है; पारस्परिक सहायता और सहानुभूति इसके मुख्य सिद्धान्त हैं, और सेवा इसका लक्ष्य है।

यह तो पूर्व ही कहा जा चुका है कि मनुष्य का कोई भी कार्य बिना दूसरों के सहयोग के नहीं हो सकता, किन्तु आधुनिक

औद्योगिक संगठन में धन-वितरण की प्रणाली इतनी दूषित है कि जो लोग उत्पादन कार्य में सहयोग देते हैं, उन्हें उचित हिस्सा नहीं मिलता, अर्थात् कुछ लोग तो उचित से अधिक पा जाते हैं, और अधिक संख्या वालों को,जो कि निर्बल हैं, अपना हिस्सा भी नहीं मिलता। मिल में काम करने वाला मजदूर जो मिल को सफलता-पूर्वक चलाने के लिये उतना ही आवश्यक है जितना कि पूँजीपति अथवा मिल-मैनेजर, बहुत थोड़ी मज़दूरी पाता है; तथा मैनेजर और पूँजीपति अनुचित रूप से सम्पत्ति का अधिक भाग हड़प कर जाते हैं,। किसान गेहूँ उत्पन्न करता है, दलाल, थोक व्यापारी, तथा दूकानदार साधारण गृहस्थ को गेहूँ पहुँचाने में सहयोग करते हैं; किन्तु गेहूँ का जो मूल्य ग्राहक देता है उसका बहुत थोड़ा अंश किसान को मिलता है,और दलाल, थोक व्यापारी, तथा दूकानदार उसका अधिक अंश खा जाते हैं। किसान को खेत की पैदावार का इतना कम मूल्य मिलता है कि खेती का ख़र्चा निकालने पर उसके लिये बहुत कम बचता है; यह उसके परिश्रम को देखते हुये कुछ भी नहीं होता। रेलवे लाइन को डालने का बड़े बड़े ठेकेदार ठेका लेते हैं,हज़ारों मज़दूरों तथा कारीगरों को रख कर वे काम करते हैं, काम करने वाले मज़दूरों और कारीगरों को बहुत थोड़ी मज़दूरी देकर ठेकेदार सारा लाभ डकार जाता है। सहकारिता धन-वितरण की अन्याय-पूर्ण प्रणाली को स्वीकार नहीं करती और इसको नष्ट कर देना चाहती है। सहकारिता आन्दोलन वर्तमान दूषित प्रणाली का

विरोध करता है और प्रत्येक मनुष्य को, जिसने सम्पत्ति के उत्पादन कार्य में सहयोग दिया है, उसके परिश्रम के अनुपात में सम्पत्ति देने का समर्थन करता है।

सम्पत्ति का उत्पादन केवल पूँजी के ही द्वारा नहीं होता; श्रम की भी आवश्यकता होती है। पूँजीपति को अपनी पूँजी पर सूद तो मिलना ही चाहिये; साथ ही वह जोखिम भी उठाता है, उसके लिये भी उसे कुछ लाभ मिलना चाहिये। बेचारे मज़दूर को तो पूरी मज़दूरी भी पूँजीपति नहीं देते; अस्तु, यह सब तथा अन्य ख़र्चे निकाल कर भी कुछ अतिरिक्त लाभ बचता है। प्रश्न होता है कि यह अतिरिक्त लाभ किसको दिया जावे? आधुनिक औद्योगिक संगठन में तो यह सारा का सारा पूँजीपतियों को मिलता है। श्रमजीवी समुदाय इस कारण क्षुब्ध हो उठा है। जब मजदूर लोग देखते हैं कि उन्हें कठिन परिश्रम करने पर भी भर-पेट भोजन नहीं मिलता, और पूँजीपति अनन्त धन-राशि प्रति वर्ष हड़प जाते हैं तो स्वभावतः वे लोग असन्तुष्ट हो जाते हैं। क्रमशः औद्योगिक देशों में श्रमजीवी समुदाय आज सङ्गठित हो गया है और इस अत्याचार को सहन नहीं करना चाहता। ट्रेड यूनियन आन्दोलन इसी प्रयत्न का फल है। साम्यवाद तो पूँजीपतियों के अस्तित्व को ही नष्ट कर देना चाहता है। श्रमजीवी आन्दोलन तथा साम्यवाद लाभ को केवल मजदूरों के ही लिए सुरक्षित रखना चाहते हैं। सहकारिता अतिरिक्त लाभ का न्यायपूर्ण विभाजन करना चाहता है और

किसी एक वर्ग को दूसरे वर्ग पर अत्याचार नहीं करने देती।

सहकारिता आन्दोलन एक आर्थिक आन्दोलन है। आज आर्थिक संगठन इस प्रकार का बनगया है कि पूँजीपति श्रमजीवी वर्ग का शोषण कर रहे हैं। फल-स्वरूप श्रमजीवी समुदाय पूँजीपतियों के अस्तित्व को नष्ट करदेना चाहता है। दोनों वर्गों में भयंकर युद्ध छिड़ा हुआ है; दोनों एक दूसरे को दबाने का प्रयत्न कर रहे हैं। सहकारिता आन्दोलन एक ऐसी समाज का निर्माण करना चाहता है जिसमें इस प्रकार युद्ध न होगा, जहां भिन्न भिन्न वर्ग एक दूसरे का साथ देंगे, और आर्थिक विषमता का यह भयंकर रूप नष्ट हो जायगा। जब समाज के निर्बल सदस्य किसी भी आर्थिक कार्य अर्थात् उत्पत्ति, उपभोग, विनिमय, तथा वितरण में सम्मिलित प्रयत्न से उत्पन्न हुए लाभ को आपस में न्यायपूर्ण प्रणाली से बांट लें तो ऐसे सङ्गठन को सहकारी समिति कहेंगे। कुछ लोग सहकारी समितियों की तुलना ट्रेड यूनियन से करते हैं, किन्तु सहकारी समितियां इससे भिन्न हैं। ट्रेड यूनियन आधुनिक आर्थिक संगठन को स्वीकार करती है और केवल श्रमजीवी समुदाय की आर्थिक स्थिति को सुधारना चाहती है; यदि पूँजीपति मज़दूरों की मांग को स्वीकार नहीं करते हैं तो ट्रेड यूनियन हड़तालों के द्वारा उनको विवश कर देती है। सहकारी समितियों के कार्य का ढंग दूसरा ही है, ट्रेड यूनियन विघातक कार्य करती हैं, और सहकारी समितियां रचनात्मक कार्य करती हैं।

प्रत्येक आर्थिक हलचल में सहकारिता के सिद्धान्तों का उपयोग किया जा सकता है। सहकारिता के सिद्धान्त को पूर्णतया समझने के लिये यह आवश्यक है कि हम सहकारी समितियों तथा आधुनिक औद्योगिक संस्थाओं का भेद समझ लें। मानलो कि कुछ मोची अपनी आर्थिक स्थिति को सुधारने की दृष्टि से, अपनी थोड़ी थोड़ी पूँजी को लेकर एक सङ्गठन में सम्मिलित होते हैं और निश्चय करते हैं कि वे सम्मिलित रूप में जूते का व्यवसाय करेंगे, समिति के कार्य का संचालन करने में प्रत्येक सदस्य का समान अधिकार होगा, और वार्षिक लाभ सदस्यों की पूँजी के अनुपात में न बांटा जाकर, सदस्यों की जूतों की उत्पत्ति के अनुपात में बांटा जावेगा, तो ऐसी समिति को सहकारी उत्पादक समिति कहेंगे। सहकारी उत्पादक समितियों तथा मिश्रित पूँजी वाली कम्पनियों में यही भेद है कि एक तो मनुष्यों का संघ है और दूसरा पूँजी का संघ है। मिश्रित पूँजी वाली कम्पनियों में कार्य संचालन का अधिकार तथा लाभ, हिस्सेदारों को पूँजी के अनुपात में ही मिलता है। उत्पादक सहकारी समतियों के संगठन में मजदूर पूँजी को किराये पर लेकर धन्धे की जोखिम उठाते हैं,किंतु पूँजी वाली कम्पनियों में हिस्सेदार स्वयं कार्य नहीं करते, वे मज़दूरों को नौकर रखते हैं और धन्धे की जोखिम उठाते हैं। उत्पादक सहकारी समितियां पूँजी के लिये उचित सूद दे देती हैं और लाभ आपस में बांट लेती हैं। किन्तु मिश्रित पूँजी वाली कम्पनियों में निश्चित मज़दूरी देकर

मज़दूर रखे जाते हैं और लाभ हिस्सेदारों में पूँजी के अनुपात में बांट दिया जाता है। सहकारी समितियों में पूँजी को अधिक महत्व नहीं दिया जाता। उसको सम्पत्ति उत्पन्न करने के लिये एक साधन मात्र समझा जाता है। यही कारण है कि समिति के प्रत्येक सदस्य को केवल एक 'वोट' मिलती है, उसको समिति के कार्य सञ्चालन में उतना ही अधिकार होता है जितना कि किसी दूसरे सदस्य को; परन्तु मिश्रित पूँजी वाली कम्पनियों में पूँजी का ही सर्वोच्च स्थान होता है, धन्धे का लाभ तथा कार्य-सञ्चालन-अधिकार हिस्सेदारों में पूँजी के अनुपात में दिया जाता है।

इन दोनों में एक भेद और भी है जो अत्यन्त महत्वपूर्ण है। मिश्रित पूँजी वाली कम्पनियों की सफलता, अन्य कम्पनियों को प्रतिद्वन्दता में सफलता पूर्वक खड़े रहने पर निर्भर है। प्रत्येक कंपनी का अपना एक व्यक्तित्व होता है, और प्रत्येक कंपनी दूसरी कंपनियों को कुचल कर आगे बढ़ने का प्रयत्न करती है। सहकारिता आन्दोलन इस व्यक्तिवाद के सिद्धान्त को नहीं मानता। सहकारी समितियां एक दूसरे की प्रतिद्वन्दता में नहीं खड़ी होतीं। वे मिल कर एक संघ (Federation) की स्थापना करती हैं, और उसकी संरक्षणता में कार्य करती हैं। यह संघ सहकारी समितियों को एक दूसरे की प्रतिस्पर्धा नहीं करने देता। यद्यपि यह स्वीकार करना पड़ेगा कि प्रतिस्पर्धा बिलकुल नष्ट नहीं हो गई है—और यहां तक सहकारिता आन्दोलन को अपने ध्येय में असफल ही समझना चाहिये—किन्तु इससे यह न समझना

चाहिये कि यह सिद्धान्त ही ग़लत है। कारण यह है कि समाज का संगठन ही दूषित है, और जब तक सहकारिता के सिद्धान्तों के अनुसार समाज का संगठन नहीं हो जाता, तब तक प्रतिस्पर्धा जड़ से नष्ट नहीं हो सकती। यदि उपभोक्ता भी अपने को सहकारी समितियों में संगठित करलें, और फिर संगठित उत्पादक सहकारी समितियों से अपनी आवश्यक वस्तुओं को ख़रीदें तो प्रतिस्पर्धा को नष्ट किया जा सकता है। सहकारिता आन्दोलन का यही लक्ष्य है। अस्तु, सहकारिता तथा अन्य प्रणालियों में यही मुख्य भेद है कि एक प्रतिस्पर्धा का समूल नाश करना चाहती है, दूसरी प्रतिस्पर्धा को स्वीकार करती हैं। यह तो पूर्व ही कहा जाचुका है कि अभी तक यह सिद्धान्त पूर्ण रूप से कार्य में परिणित नहीं हो सका है।

सहकारिता आन्दोलन केवल सम्पत्ति को उत्पन्न करने वालों की ही रक्षा नहीं करता, वह सब वर्गों को सहायता पहुँचाता है। आधुनिक औद्योगिक संगठन में उपभोक्ता का वस्तुओं के मूल्य निर्धारण में कोई हाथ नहीं होता, और न धन्धों के संचालन में ही उसकी आवाज़ सुनी जाती है। उत्पत्ति करने वालों तथा उपभोक्ताओं के बीच में अगणित दलाल काम करते हैं, जो उपभोक्ता तथा उत्पत्ति करने वालों को लूटते हैं। उपभोक्ता वस्तु का जो मूल्य देता है उसका बहुत थोड़ा अंश उत्पत्ति करने वाले को मिलता है, अधिक अंश तो दलालों की जेब में जाता है। सहकारिता आन्दोलन जहां यह प्रयत्न करता है कि उत्पत्ति करने

वालों को अधिक से अधिक लाभ हो, वहां उसका यह भी प्रयत्न होता है कि उपभोक्ताओं को सस्ते दामों पर वस्तुएं मिलें, जिससे कि उनका बोझ हलका हो। यदि देखा जावे तो लाभ उपभोक्ताओं से मिलता है; यदि उपभोक्ता तैयार माल को न लें तो केवल उत्पत्ति से लाभ नहीं मिल सकता। अस्तु, सहकारिता आन्दोलन केवल श्रमजीवी तथा पूँजीपति को ही लाभ का अधिकारी नहीं मानता, वरन् उपभोक्ताओं को भी लाभ के कुछ अंश का हक़दार समझता है। सहकारिता के सिद्धान्तानुसार, समाज में केवल दो वर्ग होने चाहियें, उत्पादन-कर्ता और उपभोक्ता। किन्तु इस पूँजीवाद के युग में उपभोक्ता तथा उत्पादन-कर्ता के बीच में अगणित दलाल हैं, जो दोनों वर्गों को लूट रहे हैं। सहकारिता दलालों के द्वारा इन दोनों वर्गों के शोषण का घोर प्रतिवाद करती है और दोनों वर्गों को संगठित करके इतना समीप लाना चाहती है कि फिर दलालों की आवश्यकता ही न पड़े। दलालों को अपने स्थान से हटा देना सहकारिता आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य है।

अब एक प्रश्न यह उठता है कि धन्धों का नियन्त्रण किस वर्ग के हाथ में होना चाहिये। धन्धों का संचालन उपभोक्ता करें, अथवा उत्पादन-कर्ता। इस विषय में सहकारिता आन्दोलन में कार्य करने वालों के दो मत हैं। एक मत के लोग कहते हैं उपभोक्ता वर्ग को धन्धों का संचालन करना चाहिये, दूसरे मत के लोग यह अधिकार उत्पादन-कर्ता वर्ग को देना चाहते हैं। सह-

कारिता आन्दोलन में कार्य करने वालों का बहुमत इस पक्ष में है कि खेती-बारी को छोड़कर अन्य धन्धों के संचालन का अधिकार उपभोक्ता को होना चाहिये, और इन धन्धों में काम करने वालों की स्थिति मज़दूरी पाने वालों से अच्छी नहीं होगी। जहां जहां उपभोक्ता सहकारी समितियों का संगठन हुआ है और उनके सम्मिलित संघ ने स्वयं आवश्यक वस्तुओं को तैयार करने के लिये मिल और कारख़ाने खोले हैं, उनमें काम करने वाले मज़दूरों को उस कारख़ाने के संचालन में कोई अधिकार नहीं है। यद्यपि इन कारख़ानों में मज़दूरों की स्थिति साधारणतः कारख़ानों से बहुत अच्छी होती है, किन्तु उनका कोई अधिकार नहीं होता। हां, यदि वे भी उन उपभोक्ता समितियों के सदस्य होते हैं, जिनके सम्मिलित संघ ने उस कारख़ाने को चलाया है, तो वे उस रूप में उस कारख़ाने की व्यवस्था में भाग लेते हैं। मज़दूरों को व्यवस्था में भाग न लेने देने का कारण यह भी है कि उससे व्यवस्था के शिथिल होजाने का भय रहता है। जिन समितियों में उत्पादन कर्ता ही सदस्य होते हैं और वे ही मज़दूर होते हैं, वहां व्यवस्था उन्हीं के हाथ में रहती है। किन्तु कहीं कहीं ऐसा देखने में आता है कि ऐसी समितियों में भी, उन सहकारी साख समितियों अथवा सहकारी उपभोक्ता समितियों का व्यवस्था में अधिक अधिकार रहता है जो उत्पादक समितियों को पूँजी देती हैं। ऐसी दशा में उत्पादक समिति के सदस्य अर्थात् मज़दूरों का व्यवस्था में नाम-मात्र को अधिकार होता है। जहां तक सहकारिता आन्दोलन

उत्पत्ति करने वालों को उस धंधे की व्यवस्था का अधिकार नहीं दिला सका है, वहां तक उसको अपने लक्ष्य में असफल ही समझना चाहिये।

यद्यपि सहकारिता आन्दोलन विशेषकर आर्थिक आन्दोलन है, किंतु इसकी नींव ऊँचे आदर्श पर जमाई गई है। यह आन्दोलन समाज में एक नवीन भावना को जागृत करता है। स्वावलम्बन तथा भ्रातृ-भाव ही वह भावना है, जिसके बल पर यह आन्दोलन खड़ा किया गया है। सहकारिता आन्दोलन समाज में किसी एक वर्ग का अत्याचार सहन नहीं करता, वह तो समाज के सदस्यों में आत्म-निर्भरता तथा भाईचारे का भाव उत्पन्न करता है। सब मिलकर एक उद्देश्य के लिये प्रयत्न करें, यही सहकारिता का अर्थ है। व्यक्तिवाद को हटाकर सहकारिता आन्दोलन सामूहिक स्वार्थ को प्रधानता देता है। पूँजीवाद के युग में व्यक्तिगत स्वार्थ का प्रधान्य है, किन्तु सहकारिता समूह को व्यक्ति के ऊपर रखता है।

पूँजीवाद के युग में आर्थिक असमानता तथा अन्य दोषों के कारण समाज घबरा उठी है। कोई कोई तो पूँजीवाद को समूल नाश कर देना चाहते हैं। साम्यवाद इसी असमानता को नष्ट करने का एक प्रयोग है। किंतु सहकारिता आन्दोलन साम्यवाद के सिद्धान्तों को स्वीकार नहीं करता। जो लोग संसार के देशों को साम्यवादी होने से बचाना चाहते हैं उन्हें सहकारिता आन्दोलन की शरण में आना चाहिए। बीसवीं शताब्दी में सहकारिता आन्दोलन ने यथेष्ट उन्नति की है, और आशा है भविष्य में इसका

अधिकाधिक उपयोग समाज के निर्बल सदस्यों की आर्थिक स्थिति के सुधारने में किया जावेगा।

भारतवर्ष के लिये सहकारिता का सिद्धान्त नया नहीं है। अत्यन्त प्राचीन काल से सहकारिता का हमारी भारतीय समाज उपयोग करती आ रही है। यद्यपि वर्तमान रूप में सहकारी समितियां इस देश के लिये नई वस्तु हैं, किन्तु सिद्धान्त रूप से तो सहकारिता हिन्दू समाज के जीवन में ओत-प्रोत है। सम्मिलित कुटुम्ब,जो कि हिंदुओं की एक अत्यन्त प्राचीन सामाजिक संस्था है, सहकारी संस्था नहीं तो क्या है? आज भी बहुत से कार्य गांवों में किसान लोग सामूहिक रूप में करते हैं। संयुक्तप्रांत के ईख उत्पन्न करने वाले किसानों में यह बात बहुत से गांवों में प्रचलित है कि वे एक या दो कोल्हू मिलकर मोल ले लेते हैं अथवा किराये पर ले आते हैं तथा बारी बारी से अपनी ईख पेर लेते हैं। अपने अर्थशास्त्र में बहुत बार सामूहिक रूप से कार्य करने के लिये आदेश करते हुए,आचार्य कौटिल्य ने सहकारिता का महत्व बतलाया है। प्राचीन काल में कारीगरों के संघ भारतवर्ष में बहुत थे जिनका विवरण वेदों तथा मनुस्मृति में मिलता है। 'रस्टिकस लोकिटर' नामक पुस्तक में लिखते हुए, श्री० एम. एल. डार्लिंग ने पञ्जाब के गांवों के विषय में जो विवरण दिया है,उससे ज्ञात होता है कि वहां के गांवों में आज भी सामूहिक रूप से बहुत सा कार्य होता है। किसी किसी गांव में दो से दस तक किसान सम्मिलित होकर एक वर्ष के लिये भूमि जोतते हैं। फ़सल के कटने

पर पैदावार को,प्रत्येक किसान द्वारा खेत पर किये गये काम तथा उसके बैलों के उपयोग के अनुपात से, बांट दिया जाता है। यह वार्षिक साझेदारी कभी कभी कई वर्षों तक चलती है। बहुत से गांवों में जब फ़सल पकने पर होती है तो एक रखवारा सब खेतों की देख भाल के लिये रख दिया जाता है। फ़सल काटने तथा बोने के समय भी पड़ौसी एक दूसरे की सहायता करते हैं। प्रत्येक घर के मनुष्य गांव के कुओं की मरम्मत के लिये बारी बारी से काम करते हैं। कहीं कहीं सड़क भी गांव के लोग मिल कर बनाते हैं। मदरास प्रान्त में सहकारिता आन्दोलन के श्रीगणेश के पूर्व वहां 'निधि' स्थापित हो चुकी थीं। निधियां एक प्रकार की अर्ध-सहकारी संस्था होती हैं।

लेखक को बहुत बार राजस्थान में यात्रा करने का अवसर मिला है और उसको यह देख कर अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि राजस्थान के बहुत से गांवों में शुद्ध सहकारिता का उपयोग ग्रामीण समाज करती है। राजस्थान के दक्षिण में मेवाड़ का प्रसिद्ध राजपूत राज्य है जिसकी राजधानी उदयपुर है। उदयपुर से लगभग ३० मील की दूरी पर मैनार नामक एक गांव है। बहुत समय हुआ जब कि उदयपुर के महाराणाओं ने यह गांव कुछ ब्राह्मणों को दान कर दिया था। आज भी वह गांव उन्हीं ब्राह्मणों की संतानों के अधिकार में है। दो हजार की आबादी वाले इस गांव में अधिकतर ब्राह्मण लोगों की बस्ती है। कुछ निम्न जाति के लोग पंचायत ने बसा लिये हैं जो कि गांव की सेवा करते हैं। गांव की एक

पञ्चायत है जो कि यहां का शासन करती है। गांव के बीच में एक शिवालय है जो कि पञ्चायत का न्यायालय है। प्रति दिन पञ्च लोग वहीं बैठ कर गांव को समस्याओं पर विचार करते हैं और मुक़दमों को निपटाते हैं। मन्दिर में एक पुजारी रहता है जिसको पञ्चायत थोड़ी सी भूमि दे देती है। घर पीछे पञ्चायत छटांक भर घी, सवा सेर तेल, पावभर रुई प्रति वर्ष मन्दिर के खर्चे के लिये लेती है। मेवाड़ में सिंचाई के लिये तालावों का उपयोग अधिक होता है। मैनार में भी एक विशाल जलाशय है, जिसका क्षेत्रफल लगभग तीन वर्ग मील होगा। प्रति वर्ष, वर्षा के पूर्व पंचायत उसके बांध की मरम्मत करवाती है। यह मरम्मत गांव वाले स्वयं कर लेते हैं। नियम यह है कि गांव का प्रत्येक पुरुष स्त्री, तथा लड़का एक घन फुट मिट्टी खोद कर बांध पर डाले। गांव की लड़कियों से यह कार्य नहीं लिया जाता, क्योंकि हिन्दुओं में लड़की को पूज्य समझा जाता है। पञ्च लोग खुदी हुई भूमि को नाप लेते हैं। यदि गांव को किसी बाहरी आदमी अथवा गांव से, राजकीय अदालतों में मुक़दमा लड़ना होता है तो पंचायत घर पीछे कर लगा देती है। यदि कोई पंडित मिल जाता है तो पंचायत उसको रखलेती है और वह गांव के लड़कों को पढ़ाता है। राजस्थान के गांवों में नदी अथवा नालों का, जिनमें कि पानी सदा बहता हो, अभाव है, और गरमियों में पशु जब चरने को जाते हैं तो उनको जल का कष्ट होता है; इस कारण वहां यह नियम सर्वत्र प्रचलित है कि प्रत्येक किसान

बारी बारी से एक दिन कुए पर अपने बैल और चरस लेकर उपस्थित रहता है और जब गांव के पशुओं को जल की आवश्यकता हो तो उन्हें जल पिलाता है। भारतवर्ष में ऐसे बहुत से प्रांत हैं जहां के ग्रामीण जीवन में हमें शुद्ध सहकारिता का स्वरूप देखने को मिलता है। किन्तु,जहां जहां पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव अधिक पड़ गया है, वहां व्यक्तिवाद के कारण सामूहिक जीवन नष्ट हो गया है।

भारतवर्ष जैसे कृषि-प्रधान देश में जहां कि कृषि ही मनुष्यों की जीविका का प्रधान साधन है, सहकारिता आन्दोलन कितना आवश्यक है, यह आगे के परिच्छेदों में स्पष्ट हो जावेगा। यदि पुरानी संस्थाओं को पुनर्जीवित किया जावे और आधुनिक सहकारी संस्थाओं का उन्हें रूप देदिया जावे तो देश में ग्राम-सुधार का कार्य सफलता-पूर्वक हो सकता है।

द्वितीय परिच्छेद

भिन्न भिन्न प्रकार की सहकारी समितियां

पिछले परिच्छेद में सहकारिता के सिद्धान्तों की चर्चा कीगई है, उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सहकारिता आन्दोलन का उपयोग प्रत्येक आर्थिक समस्या के हल करने में किया जासकता है। वास्तव में सहकारिता आन्दोलन का क्षेत्र इतना विस्तृत है कि किसी भी देश में सब प्रकार की सहकारी समितियों की एक-सी उन्नति दिखाई नहीं देती। यदि इंगलैंड में उपभोक्ता-सहकारी-स्टोर्स को आश्चर्यजनक सफलता मिली है, जर्मनी में सहकारी साख समितियों तथा बैंकों ने आशातीत सफलता प्राप्त की है, फ्रांस ने उत्पादक सहकारी समितियों की ओर अधिक ध्यान दिया है, इटली में श्रमजीवी सहकारी समितियां विशेष हुई हैं तो डैनमार्क ने सहकारिता का उपयोग खेती-बारी के लिये किया है। भारतवर्ष में सहकारी साख समितियां ही अधिक संख्या में दृष्टि-गोचर होती हैं। बात यह है कि प्रत्येक देश ने अपनी आवश्यकता को पूरा करने के लिये सहकारिता आन्दोलन का उपयोग किया है। जहां जिस प्रकार की सहकारी समितियों की अधिक आवश्यकता थी, वहां उसी प्रकार की समितियां स्थापित कीगईं। हमें अब देखना यह है कि सहकारी समितियां कितनी तरह की होती हैं, और उनकी विशेषता क्या है।

समाज का यदि हम आर्थिक दृष्टि से विभाजन करें तो वह

तीन समूहों में बांटी जा सकती है:—सम्पत्ति की उत्पत्ति करने वाले, सम्पत्ति का उपभोग करने वाले, तथा दलाल जो उत्पन्न की हुई सम्पत्ति को उपभोक्ताओं तक पहुँचाते हैं। उत्पन्न करने वालों में वे सभी लोग आजाते हैं जो कि किसी रूप में सम्पत्ति का उत्पादन करते हैं, जैसे किसान, सब प्रकार के कारीगर जो कि गृह उद्योग-धन्धों में लगे हुये हैं, मिल मालिक तथा मिल-मज़दूर। दलालों की श्रेणी के अन्तर्गत वे सभी लोग आते हैं जो कि उत्पन्न की हुई सम्पत्ति को उपभोक्ता के समीप पहुँचाते हैं, जैसे बड़े बड़े व्यापारी, जो विदेशों से व्यापार करते हैं, थोक व्यापारी, फुटकर बेचने वाले, बैलगाड़ी मोटर तथा रेलवे लाइनों पर काम करने वाले, जहाज़ चलाने वाले, तथा कमीशन एजन्ट। तीसरा समूह उपभोग करने वालों का है। देश की समस्त जन संख्या ही इस समूह में आजाती है, क्योंकि कुछ चीजें ऐसी हैं जिन्हें उत्पन्न तो थोड़े से ही लोग करते हैं, किन्तु उपभोग प्रत्येक मनुष्य करता है। अस्तु; उपभोक्ता समूह सब से बड़ा है, इसके बाद उत्पादक समूह आता है, और सबसे छोटे दलाल समूह है।

सहकारिता आन्दोलन मुख्यतः आर्थिक आन्दोलन है। जिस वर्ग की आर्थिक स्थिति कमज़ोर है, उस वर्ग को संगठित करके सबल बनाना ही उसका उद्देश्य है। किसी ने ठीक ही कहा है "सहकारिता तेरा नाम निर्धनता है।" जो निर्धन हैं, वे ही धनिकों की प्रतिद्वन्दिता में खड़े होने के लिये सहकारिता की शरण

आते हैं। वे ही अपना संगठन करते हैं क्योंकि ऐसा किये बिना वे धनी प्रतिद्वन्दी की प्रतिस्पर्धा में खड़े नहीं रह सकते। दलाल समूहों के लोगों को, जो कि शक्तिवान और सम्पन्न होते हैं, और जिन्होंने बाज़ार पर अपना एकाधिपत्य जमा रखा है, सहकारिता की सहायता नहीं चाहिये। दलाल, उत्पादक समूह को उसके परिश्रम के लिये कम से कम मूल्य देकर उपभोग करने वालों से अधिक से अधिक मूल्य लेते हैं। सहकारिता आन्दोलन ऐसे समूह की कोई सेवा नहीं कर सकता। ऊत्पादक समूह तथा उपभोक्ता समूह में से भी सहकारिता उन्ही लोगों की सेवा कर सकती है जो कि निर्बल हैं और जिन पर आर्थिक अत्याचार हो रहा है।

उत्पादक समूह उत्पादक सहकारी समितियां स्थापित कर सकता है। उत्पादक सहकारी समितियां प्रत्येक धन्धे तथा प्रत्येक स्थान के लिये पृथक् होंगी। उदाहरण के लिये बुनकर सहकारी समितियां प्रत्येक स्थान के लिये पृथक् होंगी, जैसे बनारस सिल्क-वीवर्स सहकारी समिति, लुधियाना बुनकर सहकारी समिति। इसी प्रकार उपभोक्ता समितियां भी प्रत्येक स्थान के लिये अलहदा होंगी। यही नहीं, उपभोक्ता सहकारी समितियां एक पेशे में काम करने वालों के लिये भी अलहदा होती हैं, जैसे इलाहाबाद के लिये एक सहकारी उपभोक्ता स्टोर्स हो सकता है, प्रयाग विश्व-विद्यालय के विद्यार्थियों के लिये विश्व विद्यालय सहकारी स्टोर्स हो सकता है, तथा रेलवे कर्मचारियों के लिये रेलवे स्टोर्स चलाया

जा सकता है। अस्तु, सहकारी समितियों के दो मुख्य भेद हैं, उत्पादक समितियां और उपभोक्ता समितियां। उत्पादक समितियों का उद्देश्य यह होता है कि माल को कम व्यय करके तैयार किया जावे और उसे अच्छे दामों पर बेचा जावे, जिससे कि उत्पत्ति करने वालों को अधिक लाभ हो। उपभोक्ता स्टोर्स का ध्येय यह होता है कि तैयार माल को सस्ते दामों पर खरीदें और अपने सदस्यों को सस्ते दामों पर दें। इस प्रकार दोनों ही तरह की सहकारी समितियां दलालों को अपने स्थान से हटा देने का प्रयत्न करती हैं। उपभोक्ता स्टोर्स बीच के दलालों को तो हटा ही देते हैं, उनका लक्ष्य यह होता है कि आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन भी वही करें। जहां उपभोक्ता समितियां अधिक संख्या में स्थापित हो गई हैं वहां वे उत्पादन कार्य भी करने लगीं हैं। दूसरी ओर उत्पादक समितियां बीच के सब दलालों को अपने स्थान से हटा, उपभोक्ता से सीधा सम्बन्ध स्थापित करना चाहती हैं। पाठक कह सकते हैं कि तब तो यह दो प्रकार की समितियां एक दूसरे की विरोधी हुईं, और देखने से ऐसा प्रतीत भी होता है। किन्तु जब समाज का आर्थिक संगठन सहकारिता के सिद्धान्तों के अनुसार होगा और समाज एक वृहद सहकारी संगठन का रूप धारण करलेगी तब इन दो प्रकार की समितियों का पारस्परिक विरोध मिट जायगा, और उत्पत्ति करने वालों को अपने माल का उचित मूल्य मिलेगा तथा उपभोग करने वालों को उचित मूल्य देना होगा।

इन दो प्रकार की समितियों के अन्तर्गत बहुत प्रकार की समितियां होती हैं, उदाहरण के लिये साख समितियां, तथा बैंक। भारतवर्ष में सहकारी साख समितियां ही अधिकतर स्थापित की गई हैं। भारतवर्ष कृषि प्रधान देश है; देश की तीन चौथाई जन संख्या खेती-बारी पर अपने उदर पालन के लिये निर्भर रहती है। इसके अतिरिक्त देश की ६० प्रति शत जन-संख्या गांवों में निवास करती है। गांव की आवश्यकतायें शहरों से भिन्न होती हैं। गांव वालों की खेती-बारी के लिये साख को अत्यन्त आवश्यकता होती है। प्रत्येक मनुष्य को जो कि किसी धंधे में लगा हुआ है साख की अवश्यकता पड़ती है। उसकी स्थिति इतनी ख़राब होती है कि उसको कोई व्यापारिक बैंक पूँजी नहीं देता, इस कारण उसको महाजन की शरण जाना पड़ता है। महाजन किसान का इस प्रकार दोहन करता है कि वह कभी पनप ही नहीं सकता और सर्वदा ऋणी रहता है। सहकारी साख समितियां उसकी आर्थिक स्थिति को सुधारने का प्रयत्न करती हैं। साख समितियों के अतिरिक्त किसानों के लिये अन्य प्रकार की सहकारी समितियां भी स्थापित की गई हैं, जैसे चकबंदी सहकारी समितियां, दूध सहकारी समितियां, सिंचाई सहकारी समितियां, क्रय समितियां, विक्रय समितियां इत्यादि। भारतवर्ष में किसानों के अत्यन्त ऋणी होने के कारण तथा साख का विशेष महत्व होने के कारण, यहां सहकारी समितियां दो श्रेणियों में बांटी जाती हैं, साख समितियां, ग़ैर-साख-समितियां।

अन्तर्राष्ट्रीय कृषि इंस्टीट्यूट ने समितियों का निम्न लिखित विभाजन किया है:—(१) साख, (२) उत्पादक, (३) क्रय, (४) विक्रय। एक ही समिति एक, या एक से अधिक कार्य कर सकती है। उदाहरण के लिये एक ही समिति क्रय विक्रय का कार्य करती है।

वास्तव में सहकारी समितियां कितने प्रकार की होती हैं, यह बताना कठिन है। यह तो पूर्व ही कहा जाचुका है कि प्रत्येक आर्थिक समस्या को हल करने लिये सहकारिता का उपयोग किया जासकता है और किया गया है। अब आगे के परिच्छेदों में हम भारतीय सहकारी समितियों के विषय में विस्तार पूर्वक लिखेंगे, किन्तु इससे पहले हमें भिन्न भिन्न प्रकार की समितियों का संगठन कैसे होता है यह जान लेना चाहिये।

खेती-बारी के लिये साख समितियां—भारतवर्ष कृषि प्रधान देश है, इस कारण हम प्रथम साख समितियों पर विचार करेंगे। आधुनिक आर्थिक संगठन में साख का अत्यन्त महत्व है, बड़े से बड़ा व्यवसायी और छोटे से छोटा कारीगर भी बिना साख के अपना कार्य नहीं चला सकता। बड़े बड़े व्यवसायी आरम्भ में लाखों रुपये लगाकर मिल खड़ी करते हैं, जब मिल चलने लगती है और तैयार माल बिकने लगता है तब कहीं मिल मालिक को रुपया मिलता है। व्यवसायियों को औद्योगिक बैंकों से आरम्भ में पूँजी मिलजाती है और मज़दूरों के वेतन के

लिये व्यापारिक बैंकों से पूँजी उधार लेलेते हैं । व्यापारी तथा दलालों को, जो कि तैयार माल का अथवा खेती-बारी की पैदावार का व्यापार करते हैं, माल लेते समय तो उसका मूल्य देना पड़ता है, परन्तु वह माल बहुत दिनों के बाद बिकता है। ऐसी स्थिति में यदि उन्हें कहीं से पूँजी न मिले तो उनका व्यापार ही चौपट होजावे। अस्तु, व्यापारियों को व्यापारिक बैंक से रुपया मिल जाता है। जो व्यापारी कि विदेशी व्यापार करते हैं उन्हें विनिमय बैंक (Exchange Bank) से साख मिल जाती है। साख के साथ जोखिम भी है। जो बैंक अथवा मनुष्य किसी को ऋण देता है वह पूँजी के मारे जाने की जोखिम भी उठाता है। अस्तु, बिना ज़मानत के कोई भी साख नहीं देता । साख और ज़मानत का साथ है; बिना ज़मानत के साख नहीं मिल सकती । एक निर्धन किसान अथवा कारीगर जिसके पास पूँजी नहीं है, इन बैंकों से ऋण नहीं पासकता, क्योंकि उनके पास ज़मानत कुछ भी नहीं होती। बड़े बड़े व्यापारी व्यवसायियों के पास निजी पूँजी यथेष्ट होती है, इस कारण व्यापारिक बैंक उन्हें कर्ज़ देदेते हैं। जो बैंक ज़मानत के बिना कर्ज़ देदेता है उसका दिवाला निकलने में देर नहीं लगती। निर्धन किसानों के पास अधिक सम्पत्ति तो होती नहीं कि जिससे उनकी साख हो, इसके अतिरिक्त एक कठिनाई और भी उपस्थित होती है, उनकी पूँजी की मांग इतनी थोड़ी होती है कि बड़े बड़े व्यापारिक बैंक ऐसा काम लेना पसन्द नहीं करते। मान लीजिये कि एक हज़ार किसान जो कि

भिन्न भिन्न गांवों में रहते हैं, बैंक से फ़सल बोने के समय कुल पचास हज़ार रुपया उधार लेना चाहते हैं, अर्थात् प्रत्येक किसान केवल पचास रुपये लेना चाहता है। यदि बैंक इन किसानों को रुपया देना स्वीकार करे तो उसे चार या पांच कर्मचारी केवल इस लिये नियुक्त करने होंगे कि वे इन किसानों की हैसियत की जांच करें और यह बतलावें कि वे ईमानदार हैं अथवा नहीं और उनको रुपया उधार देना चाहिये या नहीं। प्रत्येक बैंक क़र्ज़ देने से पूर्व, क़र्ज़ लेने वाले की आर्थिक स्थिति, वह ईमानदार है अथवा नहीं, उसका कारबार कैसा चल रहा है, इत्यादि बातों की पूरी जांच करने के उपरान्त ही क़र्ज़ देता है। जो बैंक इस विषय में सतर्कता से काम नहीं लेता उसको हानि उठानी पड़ती है। बैंक व्यापारिक केन्द्रों में होते हैं, इस कारण बड़े बड़े व्यापारियों की आर्थिक स्थिति की जांच सरलता पूर्वक होसकती है। व्यापारिक केन्द्र के बड़े बड़े व्यापारियों तथा व्यवसायियों के विषय में बैंक पूरी जानकारी रखता है। किन्तु भिन्न भिन्न गांवों में बिखरे हुये किसानों की आर्थिक स्थिति की ठीक ठीक जांच करना कठिन ही नहीं, व्यय-साध्य भी होगा। इसके अतिरिक्त एक हज़ार किसानों का हिसाब रखना तथा उनसे समय पर वसूल करना भी कठिन तथा व्यय-साध्य होता है। यदि एक व्यापारी पचास हज़ार रुपये उधार लेता है तो बैंक उसकी स्थिति की जांच भी करलेता है। उसके हिसाब के रखने तथा उससे रुपया वसूल करने में न तो अधिक

कठिनाई और न अधिक व्यय ही करना पड़ता है। इन्हीं कारणों से किसान, छोटे कारीगर तथा अन्य निर्धन लोग इन बड़े बैंकों से क़र्ज़ा नहीं पासकते। यह तो पूर्व ही कहा चुका है कि विना पूँजी के उत्पादन कार्य चल नहीं सकता,इस कारण किसान और कारीगर को पूँजी की आवश्यकता होती है और उनकी आवश्यकता को महाजन और साहूकार पूरी करते हैं। महाजन और साहूकार किस प्रकार किसान और कारीगर का दोहन करते हैं यह तो अगले परिच्छेदों में लिखा जावेगा, किन्तु यहां यह कह देना अतिशयोक्ति न होगा कि महाजनों का क़र्ज़दार होकर किसान चिर-दास वन जाता है। वह कठिन परिश्रम करता है,किंतु उसका लाभ मिलता है महाजन को। किसान को तो भूखे रहकर महाजन की थैलियों को भरना पड़ता है। किसानों और कारीगरों को इस आर्थिक दासता से छुड़ाने के लिये, और उनको अपने धन्धे के लिये उचित मूल्य पर पूँजी देने का आयोजन करने के लिये सर्व प्रथम जर्मनी में सहकारी साख समितियों की स्थापना हुई। जर्मनी में शुल्ज़ और रैफ़ीसन नामक दो सज्जनों को निर्धन किसानों और कारीगरों की अत्यन्त शोचनीय आर्थिक स्थिति ने आकर्षित किया और दोनों ने ही लगभग एक ही समय देश के दो भिन्न भिन्न भागों में दो प्रकार की सहकारी साख समितियों की स्थापना की।

रैफ़ीसन तथा शुल्ज़ प्रणाली की सहकारी साख समितियां—रैफ़ीसन तथा शुल्ज़ दोनों ही ने निर्धन किसानों

और कारीगरों की सामूहिक साख पर पूँजी उधार लेने का आयोजन किया। कुछ लोगों का विचार है कि रैफ़ीसन सहकारी साख समितियां केवल गांव वालों के लिये उपयुक्त हैं तथा शुल्ज़ सहकारी साख समितियां नगर निवासी कारीगरों के के लिये उपयुक्त हैं। वास्तव में बात ऐसी नहीं है। रैफ़ीसन सहकारी साख समितियां उन स्थानों के लिये उपपुक्त हैं जहां अधिक जन संख्या न हो, निवासी एक दूसरे से भली भांति परिचित हों, तथा वहां के निवासी उस स्थान पर स्थायी रूप से रहने वाले हों, साथ ही जनसंख्या अधिक निर्धन हो। गांवों के निवासियों में अधिकतर ऊपर लिखी हुई बातें मिलती हैं, इस लिये गांवों में रैफ़ीसन सहकारी साख समितियां अधिकतर पाई जाती हैं। यही कारण है कि साधारणतः लोग समझते हैं कि रैफ़ीसन सहकारी साख समितियां गांवों के लिये हैं।

इसके विपरीत शुल्ज़ सहकारी साख समितियां ऐसे स्थानों के उपयुक्त होती हैं, जहां जन संख्या अधिक हो जिसके कारण निवासी एक दूसरे से भली भांति परिचित न हों, जन संख्या स्थायी रूप से निवास न करती हो अर्थात् वहां के निवासी काम की खोज में दूसरे स्थानों पर चले जाते हों तथा वे अत्यन्त निर्धन न हों। यह स्थिति अधिकतर नगरों में होती है, इस कारण शुल्ज़ सहकारी साख समितियां शहरों में कारीगरों तथा अन्य लोगों के लिये खोली जाती हैं।

बात यह है कि रैफ़ीसन सहकारी साख समितियां अपरिमित

दायित्व वाली होती हैं, इस कारण उनके सदस्यों को स्थायी रूप से एक स्थान का निवासी होना तथा एक दूसरे से भली भांति परिचित होना आवश्यक है। शुल्ज समितियां परिमित दायित्व वाली होती हैं इस कारण उनके लिये यह आवश्यक नहीं है।

रैफ़ीसन सहकारी साख समितियां--रैफ़ीसन साख समितियों के संस्थापक श्री० रैफ़ीसन महोदय का जन्म १८१८ में हैम नामक ग्राम में हुआ था। युवा अवस्था में वे सेना में भरती होगये किन्तु शीघ्र ही उन्हें सैनिक जीवन त्यागना पड़ा क्योंकि आंखें खराब होगईं। सैनिक जीवन से हट कर वे सिविल सर्विस में आये और शीघ्र ही बरगोमास्टर नियुक्त किये गये। वे एक ज़िले के ज़िलाधीश बनाये गये। यहां पर उनको किसानों की दयनीय दशा का करुणा-जनक दृश्य देखने को मिला। उन्होंने देखा कि वर्ष भर कठिन परिश्रम करते रहने पर भी निर्धन किसान को भर-पेट भोजन नहीं मिलता और वह सर्वदा क़र्जदार ही रहता है। यहूदी साहूकार किसान को जोंक की भांति चूसता था और सरकार का उस ओर ध्यान भी नहीं था। किसानों की पैदावार को साहूकार बहुत सस्ते दामों पर ख़रीद लेता था और सूद की दर इतनी अधिक थी कि किसान उसके चँगुल में से कभी भी नहीं निकल सकता था। किसान का मकान भूमि तथा हल और बैल सभी साहूकार के यहां गिरवी रख दिये जाते थे और किसान उसका दास बन जाता था।

रैफ़ीसन का हृदय इस नग्न निर्धनता को देख कर अत्यन्त

दुखी हुआ। इसके उपरान्त वे उसी प्रदेश में एक दूसरे ज़िले में भेज दिये गये, वहां की दशा पहले से भी बुरी थी। बस, रैफ़ीसन ने निर्धनता तथा भयंकर क़र्ज़दारी से युद्ध छेड़ दिया। क्रमशः रैफ़ीसन ने सहकारी साख समितियों का देश में एक जाल सा फैला दिया। यह ध्यान में रखने की बात है कि रैफ़ीसन को कोई सरकारी सहायता अथवा सहानुभूति प्राप्त नहीं हुई; आन्दोलन सफल होगया तब भी उन्होंने सरकारी सहायता लेना पसंद नहीं किया। सहकारी साख समितियों ने जर्मनी के गांवों की काया पलट कर दी। किसान साहूकारों के चँगुल से निकल कर ऋण-मुक्त होगये और उनकी आर्थिक स्थिति बहुत सुधर गई।

रैफ़ीसन पद्धति की साख समितियों की निम्न लिखित विशेषतायें हैं :—

रैफ़ीसन महोदय एक गांव में एक ही साख समिति की स्थापना ठीक समझते हैं। यदि गांव अधिक छोटे हों तो दो या तीन गांवों के लिये एक समिति की स्थापना की जा सकती है। रैफ़ीसन का मत है कि समिति के सदस्य बनाने में बहुत छानबीन की आवश्यकता है। अधिक सदस्यों की इतनी आवश्यकता नहीं है जितनी कि चरित्रवान सदस्यों की।

सदस्यों में चाहे कितनी ही आर्थिक विषमता क्यों न हो, किन्तु ग़रीब और अमीर को समिति के प्रबन्ध में बराबर अधिकार है।

सब सदस्यों की सभा को साधारण सभा कहते हैं। साधारण सभा ही समिति की नीति को निर्धारित करती है और वही प्रबंधकारिणी समिति के सदस्यों को चुनती है। साधारण सभा प्रबन्धकारिणी समिति को समिति का कार्य चलाने तथा सभा द्वारा निर्धारित नीति के अनुसार कार्य करने का अधिकार देती है। साधारण सभा अपने में से ही एक निरीक्षण कौंसिल का चुनाव करती है। निरीक्षण कौंसिल प्रबन्धकारिणी समिति के सदस्यों के कार्य का निरीक्षण करती है। प्रबन्धकारिणी समिति तथा निरीक्षण कौंसिल के सदस्यों को कोई वेतन, फ़ीस, अथवा कमीशन नहीं दिया जाता। केवल कैशियर को थोड़ा वेतन दिया जाता है, किन्तु उसको कोई अधिकार नहीं होता वह केवल समिति का नौकर होता है।

रैफ़ीसन के अनुसार साख समितियों के सदस्यों से न तो फ़ीस लेने की आवश्यकता है और न उन्हें समिति का हिस्सा ख़रीदने की। जब जर्मन सरकार ने एक क़ानून बना दिया कि सदस्यों को हिस्से ख़रीदने चाहिये तब भी रैफ़ीसन सहकारी समितियों ने अपने हिस्से का मूल्य नाम मात्र को रखा; इसका उद्देश्य यह है कि ग़रीब किन्तु सचरित्र किसान समिति का सदस्य बनने से वंचित न रह जावें।

रैफ़ीसन, समिति के लाभ को बांटने नहीं देता। उसका कथन है कि यदि लाभ सदस्यों में बांटा जावेगा तो उन में लालच बढ़ जावेगा। वार्षिक लाभ रक्षित कोष में जमा होना चाहिये।

रक्षित कोष को क्रमशः बढ़ाते रहने पर रैफ़ीसन ने बहुत ज़ोर दिया है। वह कहता था कि रक्षित कोष ही इस आन्दोलन का स्तम्भ है। यदि किसी वर्ष समिति को हानि हो तो वह इस कोष से पूरी की जा सकती है, किन्तु इसके अतिरिक्त सबसे बड़ा लाभ यह है कि अधिक कोष हो जाने से समिति के पास अपनी निज की कार्यशील पूँजी हो जायगी और उधार नहीं लेनी होगी। इसका फल यह होगा कि समिति सूद की दर को घटा सकेगी और सदस्यों को कम सूद पर कर्ज़ मिल सकेगा।

यदि रक्षित कोष अधिक होजावे तो यह रुपया गांव में किसी सार्वजनिक हित के कार्य में व्यय किया जाता है। यदि कभी समिति टूट भी जावे तो भी सदस्य रक्षित कोष को आपस में नहीं बांट सकते; समिति के टूट जाने पर कोष में जमा किया हुआ रुपया किसी ऐसी सार्वजनिक संस्था के पास जमा कर दिया जाता है जो भविष्य में, यदि उस गांव में कोई दूसरी सहकारी समिति स्थापित हो, तो उसको देदे। कुछ समय व्यतीत होजाने पर भी कोई दूसरी सहकारी समिति स्थापित न हो तो वह रुपया उसी गांव के सार्वजनिक हित के कार्यों पर व्यय कर दिया जावे। रैफ़ीसन ने यह नियम इस लिये बनाया कि कहीं ऐसा न हो कि अधिक कोष जमा हो जाने पर सदस्य समितियों को तोड़ कर कोष का धन बांट लें।

क़र्ज़ देने के लिये रैफ़ीसन ने यह सिद्धान्त निश्चित किया कि ऋण केवल उसी आदमी को दिया जाना चाहिये जो समिति की

प्रबन्ध कमेटी को निश्चय करा सके कि उसको पूँजी को आवश्यकता है और जिस कार्य को वह करने जारहा है उसमें सफल होने की सम्भावना है। समिति उत्पादक कार्यों के लिये ही रुपया दे, अनुत्पादक तथा व्यर्थ कार्यों के लिये रुपया न देना चाहिये। जब समिति एक बार सदस्य की आवश्यकता के विषय में छानबीन करके क़र्ज़ा देदे तब यह देखना चाहिये कि जिस कार्य के लिये सदस्य ने क़र्ज़ा लिया है उसके अतिरिक्त और किसी कार्य में तो व्यय नहीं किया। निरीक्षण कौंसिल प्रत्येक तीन महीने के उपरान्त सदस्य तथा उसकी ज़मानत देने वालों की आर्थिक स्थिति की, तथा उस रुपये के उपयोग की जांच करती है। यदि यह ज्ञात हो कि सदस्य ने क़र्ज़ा का ठीक उपयाग नहीं किया तो उस से फ़ौरन ही रुपया वापिस मांगना चाहिये। समिति की आर्थिक स्थिति को मज़बूत बनाये रखने के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है।

सदस्य को क़र्ज़ा देते समय ही उस पर सूद का हिसाब लगाकर किश्तें बांध दीजाती हैं। रैफ़ीसन ने किश्तों को ठीक समय पर वसूल करने के लिये बहुत ज़ोर दिया है। उसका कहना है कि समिति इस नियम के पालन करने तथा सदस्यों से पालन करवाने में बड़ी कड़ाई से काम ले। सदस्य को ठीक समय पर ही किश्त का रुपया देना चाहिये। इससे सदस्यों को एक बहुत बड़ा लाभ यह होता है कि वे अपने क़र्ज़ा को ठीक समय चुका देने के लिये बाध्य होते हैं; इस लिये वह लापरवाह नहीं होते।

रैफ़ीसन का मत था कि सदस्य को कर्ज़ा देने का कार्य ऐसी

सरलता पूर्वक होना चाहिये कि न तो उसमें सदस्य को कोई कठिनाई ही हो, और न क़र्ज़ मिलने में देरी हो। कर्ज़ के विषय में जांच कर चुकने के उपरान्त एक या दो ज़मानत लेकर रुपया देदेना चाहिये।

जर्मनी में रैफ़ीसन सहकारी साख समितियों ने तो देश की दशा ही पलट दी। जर्मनी की ग्रामीण जन संख्या कर्ज़े के भयंकर बोझ से दबी हुई आर्थिक दासता को भोग रही थी, वही निर्धन किसानवर्ग रैफ़ीसन सहकारी समितियों की सहायता से स्वावलम्बन का पाठ सीख गया और महाजनों की दासता से स्वतंत्र होकर सुखी जीवन व्यतीत करने लगा। सच तो यह है कि रैफ़ीसन ने अपने देश के लिये वह कार्य किया जो कि बड़े से बड़ा राजनीतज्ञ भी नहीं कर सकता था। यही कारण था कि सन् १८१८ में जब किसानों की सेवा में अपने जीवन को लगा देने वाले श्री० रैफ़ीसन का स्वर्गवास हुआ तो आधा जर्मन साम्राज्य शोक-ग्रस्त होगया था। आज भी जर्मनी में पिता रैफ़ीसन का नाम अत्यन्त श्रद्धा और भक्ति से लिया जाता है।

रैफ़ीसन सहकारी साख समितियां जब जर्मनी में फैल गईं तो उत्पादक, क्रय, विक्रय, दूध सहकारी समितियां तथा अन्य सभी प्रकार की समितियां स्थापित होगईं। सहकारी समितियां अधिक होजाने के कारण, समितियों के समूहों की यूनियन स्थापित की गई हैं। जर्मनी में इस प्रकार की १३ यूनियन हैं जो कि सब रैफ़ीसन सहकारी समितियों का संरक्षण करती हैं। इन यूनियनों

के भी ऊपर एक कौंसिल है जो कि रैफ़ीसन सहकारिता आन्दोलन की बागडोर संभालती है। कौंसिल की देखभाल में एक बैंक भी स्थापित किया गया है जो कि साख समितियों की आवश्यकताओं को पूरी करता है।

किन्तु रैफ़ीसन सहकारी साख समितियों की विशेषता अपरिमित दायित्व (Unlimited liability) है । रैफ़ीसन ने अपरिमित दायित्व पर बहुत जोर दिया है। रैफ़ीसन के अनुसार वास्तविक सहकारिता वही है जहां प्रत्येक सदस्य अपने को समिति-रूपी बड़े कुटुम्ब का सदस्य समझे; और, उन सदस्यों का आदर्श हो—"एक सब के लिये, सब एक के लिये"। इस आदर्श को वास्तविक रूप में सदस्यों को समझाने के लिये अपरिमित दायित्व अत्यन्त आवश्यक है। दायित्व का अर्थ है कि प्रत्येक सदस्य समिति के समस्त ऋण को सम्मिलित तथा व्यक्तिगत रूप में देने का ज़िम्मेदार है। रैफ़ीसन सहकारिता आन्दोलन का यह आधार-स्तम्भ है, जिस पर इतना बड़ा आन्दोलन खड़ा किया गया है।

शुल्ज़ सहकारी साख समितियां—सहकारिता साख आन्दोलन को जन्म देने का श्रेय जर्मनी को है । सहकारिता के के दो भक्त रैफ़ीसन तथा शुल्ज़ लगभग एक ही समय में एक ही देश में स्वतन्त्र रूप से कार्य कर रहे थे। किन्तु प्रारम्भ में वे एक दूसरे को बिलकुल न जानते थे और न उनको एक दूसरे के कार्य का ही परिचय मिला। एक पूर्व जर्मनी में सहकारिता आन्दोलन

का प्रचार कर रहे थे तो दूसरे सज्जन पश्चिम में सहकारिता आन्दोलन को चला रहे थे। रैफ़ीसन तथा शुल्ज़ दोनों ही के हृदय में अपने ग्राम-वासियों की दरिद्रता को देखकर सेवा भाव जागृत हुआ, और उसके फल-स्वरूप उन्होंने सहकारिता आन्दोलन चलाया। अस्तु, शुल्ज़ ने अपने मित्र डाक्टर बर्नहार्डी की सहायता से अपने गांव डैलिट्ज़ तथा अपने मित्र के गांव ईलनबर्ग में वहां के चमारों तथा अन्य कारीगरों के लिये कच्चा माल ख़रीदने के लिये दो सहकारी समितियां खोलीं। तबसे क्रमशः क्रय समितियों का प्रचार बढ़ता गया और अब वे जर्मनी में सर्वत्र पाई जाती हैं। क्रय समितियों की सफलता से उत्साहित होकर शुल्ज़ ने १८६० में पहली साख समिति स्थापित की। किन्तु वह पूर्णतया सहकारी समिति नहीं थी। इसी बीच में शुल्ज़ को कुछ समय के लिये कार्यवश बाहर जाना पड़ा और उसके मित्र डाक्टर बर्नहार्डी ने ईलनबर्ग में एक शुद्ध सहकारी साख समिति स्थापित की। १८५२ में जब शुल्ज़ डैलिट्ज़ को लौटा तो वह अपने मित्र द्वारा स्थापित समिति के शुद्ध सहकारी रूप को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उसने वही सिद्धान्त अपना लिया।

अब शुल्ज़ ने बड़े उत्साह से इस सिद्धांत का प्रचार करना प्रारम्भ किया। शुल्ज़ के व्यक्तित्व, उनकी धारा-प्रवाहिणी भाषण शक्ति, तथा उनकी सच्ची लग्न का फल यह हुआ कि साख समितियां बहुत बड़ी संख्या में स्थापित होगईं। किन्तु अभाग्यवश

जर्मन सरकार उसके इस कार्य से अप्रसन्न होगई और शुल्ज़ (जो कि न्यायाधीश था) को अपने पद से त्यागपत्र देना पड़ा। इसके उपरान्त शुल्ज़ ने अपना समय इस कार्य में लगा दिया ।

शुल्ज़ सहकारी समितियों का अध्ययन करते समय यह बात ध्यान में रखने की है कि शुल्ज़ ने यह आन्दोलन मध्य श्रेणी के मनुष्यों और विशेषकर कारीगरों के लिये चलाया था । और, अब भी इन समितियों से मध्य श्रेणी के मनुष्यों को ही लाभ होता है। शुल्ज़ ने अपने आन्दोलन को चरित्र सुधार का साधन नहीं बनाया, उसने केवल आर्थिक समस्या को ही सुलझाने का प्रयत्न किया। इन सहकारी समितियों में निर्धनों के लिये स्थान नहीं है क्योंकि शुल्ज़ समितियों में सदस्यों को हिस्सा अवश्य ख़रीदना पड़ता है, और हिस्से का मूल्य अधिक होता है। उसका मत था कि समिति को उधार ली हुई पूँजी पर निर्भर नहीं रहना चाहिये, सदस्यों को हिस्से ख़रीदने चाहियें और बैंक के पास निजी यथेष्ट पूँजी होनी चाहिये ।

जिस समय शुल्ज़ ने आन्दोलन चलाया उस समय परिमित दायित्व का सिद्धान्त जर्मनी में किसी को ज्ञात नहीं था और न राजकीय क़ानून ही उसको मानता था। इस कारण प्रारम्भ में यह समितियां अपरिमित दायित्व वाली थीं। किन्तु शुल्ज़ ने रैफ़ीसन की भांति अपरिमित दायित्व को आवश्यक नहीं माना। इसका फल यह हुआ कि उसकी मृत्यु के उपरान्त जब जर्मनी में परमित दायित्व का सिद्धान्त मान लिया गया तो बहुत सी समितियों

ने परिमित दायित्व के सिद्धान्त को अपना लिया । किन्तु इस समय भी यथेष्ट संख्या में शुल्ज़ समितियां अपरिमित दायित्व को अपनाये हुये हैं ।

शुल्ज़ समितियों की विशेषता यह है कि वे अपनी यथेष्ट पूँजी इकट्ठी करना चाहती हैं । इसी कारण सदस्यों के लिये हिस्सों का खरीदना आवश्यक समझा गया । इसके अतिरिक्त शुल्ज़ ने सुरक्षित कोष को जमा करने पर बहुत ज़ोर दिया है क्योंकि उसका उद्देश्य किसी प्रकार बैंक की निजी पूँजी को बढ़ाना था । किन्तु यह न समझ लेना चाहिये कि यह सहकारी साख समितियां लाभ नहीं बांटती । लाभ का कुछ भाग सुरक्षित कोष में जमा करने के उपरान्त, लाभ सदस्यों में बांट दिया जाता है ।

शुल्ज़ ने व्यक्तिगत ज़मानत पर क़र्ज़ देने के सिद्धान्त को अपनाया है, तथा क़र्ज़ को समय पर वसूल करने पर बहुत ज़ोर दिया है । इन समितियों में सदस्य अपनी वार्षिक बैठक में एक कमेटी का निर्वाचन करते हैं, और यह कमेटी अपने सदस्यों में से एक कार्यकारिणी समिति का निर्वाचन करती है । कार्यकारिणी समिति, समिति का कार्य चलाती है तथा कमेटी उसके कार्य का निरीक्षण करती है । शुल्ज़, कार्यकारिणी समिति के सदस्यों तथा पदाधिकारियों को वेतन देने के पक्ष में है ।

वास्तव में यह सहकारी साख समितियां विस्तृत क्षेत्र के लिये उपयुक्त हैं । इस कारण वे पूर्ण रूप से व्यापारिक संस्था

होती हैं। अस्तु, व्यापारिक काय सफलता-पूर्वक करने के लिये अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है और वेतन-भोगी कर्मचारी रखने पड़ते है।

लुज्ज़ती समितियां (पीपुल्स बैंक)—लुज्ज़ती ने शुल्ज़ प्रणाली का सुधार करके उसे अपनाया। आस्ट्रिया राज्य का कोप-भाजन बन कर भागा हुआ लुज्ज़ती इटली में अपनी योग्यता के कारण अर्थशास्त्र का अध्यापक बन गया और उसने शुल्ज़ के विचारों का अध्ययन करने के उपरान्त मिलन में बैंक स्थापित किया। किंतु लुज्ज़ती जैसा योग्य व्यक्ति यह भली भांति समझता था कि जर्मन संस्था इटली में सफल न होगी। इस कारण उसने शुल्ज़ समितियों का नवीन संस्कार करके उसका प्रचार किया।

लुज्ज़ती ने अपरिमित दायित्व के स्थान पर सिद्धांत रूप से परिमित दायित्व को अपनाया। इसके अतिरिक्त उसने शुल्ज़ की भांति अधिक मूल्य के हिस्से न रखकर बहुत थोड़े मूल्य के हिस्से रक्खे और बहुतसी किश्तों में हिस्सों के मूल्य चुकाने का नियम बनाया जिससे कि निर्धन मनुष्य समिति के सदस्य बन सकें। लुज्ज़ती ने यह नियम बनाया कि दस मास के अन्दर सदस्य को हिस्से का मूल्य चुका देना होगा। लुज्ज़ती का विचार यह था कि यह थोड़ीसी पूँजी बाहर की पूँजी को आकर्षित कर सकेगी, अर्थात् इसकी गारंटी पर बाहर से क़र्ज़ मिल सकेगा। साथही, उसने अधिकतर सेविंग्स डिपाज़िट लेकर अपनी कार्यशील पूँजी को बढ़ाने पर जोर दिया। उसका कहना था कि यदि कार्यशील

पूँजी की आवश्यकता हो तो सेविंग्स डिपाज़िट आकर्षित करो। यद्यपि हिस्सों की पूँजी तो बाहरी क़र्ज़ के लिये ज़मानत का काम देगी ही, किन्तु लुज्ज़ती के मतानुसार वास्तविक ज़मानत तो समिति के सदस्यों की ईमानदारी होगी। उसने कहा कि "ईमानदारी को पूँजी में परिणित करो"। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए उसने ऐसा संगठन बनाया कि जिससे सदस्यों को ईमानदार रहने में ही अपना हित दिखलाई दे और वे एक दूसरे को ईमानदार बनाने में सहायक हों। लुज्ज़ती ने इस बात को लक्ष्य में रखकर समिति के कार्य की ज़िम्मेदारी को बांट दिया जिससे कि प्रत्येक सदस्य को कुछ न कुछ ज़िम्मेदारी का कार्य करना पड़े। इस कारण लुज्ज़ती समितियों में सदस्यों को लेते समय उनके चरित्र पर विशेष ध्यान रक्खा जाता है। प्रत्येक सदस्य को समिति का थोड़ा बहुत कार्य करना पड़ता है, जो क़र्ज़ दिया जाता है वह बहुत जांच करने बाद दिया जाता है तथा कोई बात गुप्त नहीं रक्खी जाती जिससे कि प्रत्येक सदस्य समिति की दशा से पूर्ण परिचित रहे। लुज्ज़ती, प्रबन्धकारिणी समिति तथा अन्य पदाधिकारियों को वेतन देने के पक्ष में बिलकुल नहीं है।

लुज्ज़ती समितियों में प्रबन्ध का कार्य एक कमेटी करती है जिसका निर्वाचन साधारण सभा करती है। प्रबन्ध कमेटी के सदस्य संख्या में अधिक होते हैं और यह आवश्यकता समझी जाती है कि प्रबन्ध कमेटी में सब प्रकार के सदस्यों के प्रतिनिधि हों। किन्तु कमेटी बड़ी होने के कारण उसके सदस्य बैंक के

दैनिक कार्य का सुचारु रूप से नहीं चला सकते, इस कारण कमेटी अपने में से एक उप-समिति बना देती है जो इस कार्य को करती है। यह उप-समिति केवल एक वर्ष के लिए बनाई जाती है, फिर दूसरे वर्ष दूसरे सदस्यों की उप-समिति बनाई जाती है। उप-समिति का एक सदस्य प्रति दिन बैंक में रहता है और उसकी आज्ञा के बिना कार्य नहीं होसकता।

इटली की ग्रामीय साख समितियां—इटली में जिस प्रकार शुल्ज़ के विचारों को अपना कर लुज्ज़ती ने पीपुल्स बैंक स्थापित किये, ठीक उसी प्रकार इटली ने अपने रैफ़ीसन को भी ढूँढ निकाला। पीपुल्स बैंक छोटे व्यापारियों तथा सम्पन्न किसानों के लिये अत्यन्त उपयोगी प्रमाणित हुए, किन्तु निर्धन छोटे छोटे किसानों के लिये, जो गांवों में निवास करते हैं, उनका कोई उपयोग नहीं था। साथ ही गांव में निवास करने वाले छोटे छोटे किसानों को साख की अत्यन्त आवश्यकता थी। इटली के ग्रामों की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है, किसान निर्धन हैं, लगान अधिक है, भूमि की कमी है और खेती-बारी भी अधिक उन्नत नहीं है; इसका फल यह है कि छोटे किसान अधिकतर क़र्ज़दार हैं और महाजन उनका शोषण करते हैं।

डाक्टर वोलैम्बर्ग का हृदय गांवों की इस आर्थिक शोचनीय दशा को देखकर सिहर उठा और उन्होंने रैफ़ीसन सहकारी साख समितियों के ढंग की समितियां स्थापित करके देश की सेवा करने का निश्चय किया। उन्होंने सर्व प्रथम अपने गांव में एक समिति

की स्थापना की। प्रारम्भ में तो सदस्य बहुत कम थे और डिपाज़िट भी बहुत ही कम आई, किन्तु डाक्टर अथक परिश्रम से कार्य करते रहे। जब समिति को स्थापित हुए तीन महीने हो गये और समिति के मन्त्री ने सदस्यों को लिखा कि वे १॥ प्रति शत सूद, लिए हुये क़र्ज़ पर देजावें तो सदस्यों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। पहिले तो उन्होंने समझा कि लिखने में कुछ भूल होगई है, किन्तु जब उन्हें ज्ञात हुआ कि यह ठीक है तो यह खबर बड़ी तेज़ी से समीप के गांवों में फैलगई और धड़ाधड़ समितियां स्थापित होने लगीं।

डाक्टर वोलैम्बग ने अपनी समितियों का संगठन रैफ़ीसन के भांति ही रक्खा, भेद केवल इतना ही है कि इटली की ग्रामीण समिति जर्मनी की समिति से छोटी होती है। प्रत्येक कार्य में किफ़ायत पर अत्याधिक ध्यान दिया जाता है। इन समितियों में सदस्य समिति के कार्य में खूब भाग लेते हैं। प्रत्येक सदस्य जो कि साधारण बैठक में आने के योग्य होता है अवश्य आता है। साधारण बैठक जल्दी जल्दी होती हैं, और जो सदस्य बिना उचित कारण के सम्मिलित नहीं होता, वह और सदस्यों की दृष्टि में गिरजाता है, और उसको नाम मात्र का जुर्माना देना होता है। समिति का संचालन सब सदस्य मिलकर करते हैं। साधारण बैठक प्रबन्धकारिणी समिति के लिये आज्ञा देती है और प्रबन्धकारिणी समिति केवल उन आज्ञाओं का पालन करती है। साधारण बैठक का संचालन में अधिक हाथ रहता है।

तीसरा परिच्छेद

भारतीय ग्रामीण ऋण

भारतवर्ष में लगभग ६० प्रति शत जनता गांवों में निवास करती है और ग्रामीण जन संख्या अधिकतर खेती-बारी पर ही निर्भर रहती है। अधिकतर तो ग्रामीण किसान ही होते हैं और कुछ ग्रामीण उद्योग धन्धों में लगे रहते हैं। किन्तु गांव के धन्धे भी अप्रत्यक्ष रूप से खेती-बारी पर ही निर्भर हैं। यदि हम यह कहें कि समस्त ग्रामीण जन संख्या खेती-बारी पर निर्भर है तो अतिश्योक्ति न होगी। जो मनुष्य कि भारतीय ग्राम्य जीवन से परिचित नहीं है, वह सम्भवतः ग्रामीण जनता के विषय में धोखा खा जावे। जिस देश का अवलम्बन ही खेती-बारी है उस देश में किसानों की अत्यन्त शोचनीय दशा का कौन ध्यान कर सकता है। किन्तु बात उलटी है, आज भारतीय किसान की आर्थिक दशा जितनी पतित है सम्भवतः संसार के अन्य किसी देश के किसानों की नहीं है। भारतीय ग्रामीण आज क़र्ज के भयंकर बोझ से बहुत दबा हुआ है और क़र्ज़दार होने के कारण उसका राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा चरित्र-विषयक पतन हो रहा है। यह तो आगे के पृष्ठों में बतलाया जावेगा कि ऋणी होने का कैसा भीषण परिणाम किसान वर्ग को भुगतना पड़ रहा है किन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि देश की आर्थिक दशा को सुधारने के लिये इस समस्या को हल करना

होगा। जब तक कि देश की जन संख्या का एक बहुत बड़ा भाग आर्थिक दासता का जीवन व्यतीत करता रहेगा तब तक देश की आर्थिक स्थिति को सुधारने का प्रयत्न करना स्वप्न मात्र है।

१६३० में सैन्ट्रल बैंकिंग इनक्वायरी कमेटी के साथ सहयोग करने के लिये प्रत्येक प्रान्तीय सरकार ने प्रान्तीय बैंकिंग इनका-यरी कमेटी बैठाई। प्रांतीय बैंकिंग इनकायरी कमेटियों ने अपने अपने प्रान्तों में ग्रामीण ऋण का अनुमान लगाने का प्रयत्न किया है। यद्यपि प्रान्तीय कमेटियों का अनुमान बिलकुल सही नहीं होसकता फिर भी हमें कर्ज की भयंकरता का अनुमान भली भांति होसकता है।

यदि प्रान्तीय कमेटियों के अनुमान किये हुये कर्ज को जोड़ा जावे तो ब्रिटिश भारत का ग्रामीण ऋण ६०० करोड़ रुपया होता है। ध्यान रहे देशी राज्यों के अंक इसमें नहीं जोड़े गये हैं। ऋण का ब्यौरा इस प्रकार है:—

प्रान्त	ऋण
अमाम	२२ करोड़
बंगाल	१०० ,,
बिहार-उड़ीसा	१५५ ,,
बम्बई	८१ ,,
बर्मा	५०-६० ,,
केन्द्रीय सरकार द्वारा शासित प्रदेश	१८ ,,
मध्य प्रान्त	३६ ,,

कुर्ग	...	...	३५–५५ लाख
मद्रास	...	...	१५० करोड़
पंजाब	...	...	१३५ ,,
संयुक्त प्रान्त	...	...	१२४ ,,

अभी तक किसी भी कमेटी ने सारे देशी राज्यों के ग्रामीण ऋण को मालूम करने का प्रयत्न नहीं किया। किन्तु जिन्होंने राज्यों का आर्थिक स्थिति का कुछ भी अध्ययन किया है, वे जानते हैं कि देशी राज्यों के ग्रामीणों की आर्थिक दशा ब्रिटिश भारत के ग्रामीणों से कुछ अच्छी नहीं है। यदि हम सारे देशी राज्यों का ग्रामीण ऋण ब्रिटिश भारत का एक तिहाई मानलें तो कुछ भूल न होगी। इस हिसाब से समस्त देश का ग्रामीण ऋण १२०० करोड़ रुपये होता है।

अब प्रश्न यह होता है कि यह कर्जा घट रहा है अथवा बढ़ रहा है। प्रान्तीय कमेटियों की सम्मति में भारतीय ग्रामीण ऋण पिछले १०० वर्षों में बराबर बढ़ता गया है। सर ऐडवर्ड मैकलेगन ने १९११ में कहा था "यह तो स्पष्ट है कि ग्रामीण ऋण भारतवर्ष के लिये कोई नई बात नहीं है, इतिहास को देखने से ज्ञात होता है कि ब्रिटिश शासन के पूर्व भी यह समस्या उपस्थित थी। किन्तु यह भी मानना पड़ेगा कि यह ऋण ब्रिटिश शासन में और विशेषकर पिछले पचास वर्षों में, बहुत बढ़गया है।" शाही कृषि कमीशन की भी इस विषय में लगभग यही सम्मति है। कमीशन का कहना है कि प्रान्तों का ग्रामीण ऋण अवश्य ही

पिछले वर्षों में बढ़ गया है। पिछले दस वर्षों में तो इस की भयंकरता बहुत ही बढ़गई है। इसका अनुमान केवल अंकों से नहीं किया जासकता। १६२१ के बाद खेती की पैदावार का मूल्य लगभग ५० प्रति शत घटगया। अस्तु, किसानों के कर्ज़ का बोझ पहले से दुगना होगया है। इस भयंकर बोझ को किसान किस प्रकार संभाल सकेगा यह तो अर्थशास्त्र के विद्यार्थी के लिये भी एक समस्या है।

प्रान्तीय कमेटियों ने यह जानने का भी प्रयत्न किया है कि प्रति शत कितने लोग क़र्ज़दार नहीं हैं। निम्न लिखित चार प्रांतों में ऋण-मुक्त किसानों की संख्या इस प्रकार है:—

आसाम प्रान्त में ६ प्रति शत से लेकर ३८ प्रति शत किसान भिन्न भिन्न ज़िलों में मुक्त हैं।

बिहार उड़ीसा में १६ प्रति शत से लेकर २१ प्रति शत मुक्त हैं।

मध्य प्रान्त में १३ प्रति शत से लेकर ७० प्रति शत मुक्त हैं।

संयुक्त प्रान्त में ३३ प्रति शत से लेकर ६१ प्रति शत मुक्त हैं।

इन अंकों से यह स्पष्ट नहीं होता कि वास्तव में कितने किसान ऋण मुक्त हैं। अर्थशास्त्र के कतिपय विद्वानों का मत है कि लगभग ७५ प्रति शत किसान कर्ज़दार हैं।

प्रान्तीय बैंकिंग इन्कायरी कमेटियों ने विस्तार पूर्वक उन कारणों का विवेचन किया है जो किसान को कर्ज़दार बनाते हैं। ग्रामीण जन संख्या के कर्ज़दार होने के बहुत से कारण हैं।

किसान का पुराना ऋण उसको कर्जदार बनाने में बहुत सहायक है। किसान पुराने कर्ज्जे को चुकाने के लिये नया कर्ज्जा लेता है। भारतीय किसान को भयंकर सूद देना पड़ता है क्योंकि उसकी आर्थिक दशा अत्यन्त शोचनीय है। दूसरा मुख्य कारण यह है कि भारतीय किसान के पास इतनी भूमि नहीं है कि वह उस पर खेती करके अपने कुटुम्ब का पालन पोषण कर सके। कारण यह है कि देश के अन्य धन्धे विदेशी माल तथा देशी मिलों की प्रतिद्वन्दिता के कारण नष्ट हो गये और उनमें लगी हुई जन संख्या खेती बारी में लग गई। भारतवर्ष में खेती-बारी की भूमि का अकाल पड़ गया और प्रति किसान भूमि कम हो गई। यही नहीं, हिन्दुओं तथा मुसलमानों में पिता के मरने पर सब लड़कों में बराबर बराबर भूमि बांटने की प्रथा के कारण वह थोड़ी भूमि भी छोटे छोटे टुकड़ों में विभाजित होजाती है और एक स्थान पर सारे खेत न होकर खेत मीलों में बिखरे होते हैं, जिसके कारण खेती वैज्ञानिक ढंग से नहीं की जासकती और न इस धन्धे में लाभ ही होसकता है। इस कारण किसान साधारणतया बिना कर्ज्जा लिये अपना काम नहीं चला सकता। इसके अतिरिक्त बैलों की आक्समिक मृत्यु तथा अनिश्चित खेती भी किसान को कर्ज्जदार बनाती है। भारतवर्ष के किसान के पास पशुधन ही उसकी अत्यन्त मूल्यवान पूँजी है, किन्तु पशुओं की बीमारी इतनी भयंकर हैं और पशुओं की मृत्यु संख्या इतनी अधिक है कि किसान को उससे बहुत हानि होती है और कर्ज्जा लेकर नये

पशु खरीदने पड़ते हैं। भारतवर्ष में खेती अधिकतर वर्षा पर निर्भर है, किन्तु वर्षा यहां अनिश्चित होती है जिसके कारण फ़सल भी अनिश्चित होती है। यदि वर्षा आवश्यकता से बहुत कम हो, अथवा अति वर्षा हो तो फ़सल खराब होजाती है। कभी टीड़ीदल नष्ट करदेता है तो कभी कोई हवा अथवा कीड़ा फ़सल को नष्ट कर देता है। जिन वर्षों में फ़सल अच्छी होती है उनमें तो किसान किसी प्रकार अपना काम चला लेता है किन्तु फ़सल खराब होने पर तो उसको कर्ज़ ही लेना पड़ता है। कुछ अर्थशास्त्रज्ञों का मत है कि किसान विवाह, मृत्यु संस्कार, तथा अन्य सामाजिक कृत्यों में अपनी स्थिति को देखते बहुत अधिक व्यय कर देता है और उसे कर्ज़ लेना पड़ता है। हो सकता है कि इस में कुछ सत्य हो किन्तु इसमें अतिशयोक्ति की मात्रा अधिक है। कुछ प्रान्तीय बैंकिंग इनकायरी कमेटियों की भी इस विषय में यही सम्मति है। हां, जिस वर्ष फ़सल अच्छी होतीहै और किसान को कुछ अधिक रुपया मिलजाता है, तब बैंक इत्यादि न होने के कारण वह उसे सामाजिक तथा अन्य धार्मिक कार्यों पर खर्च कर डालता है। लेखक के मतानुसार मुक़द्दमेबाज़ी भी किसान के कर्ज़दार होने का एक मुख्य कारण है। किसान मुक़द्दमेबाज़ी में फंसकर कर्ज़दार बनजाता है। जो लोग भारतीय अदालतों से परिचित हैं वे जानते हैं कि किसान भूखे रहकर भी कर्ज़ लेकर मुक़द्दमे में व्यय कर देता है; मुक़द्दमेबाज़ी भारतीय किसान का जातीय खेल है वह उसमें अंधाधुन्ध धन फूँकता है।

इनके अतिरिक्त लगान और मालगुज़ारी* भी किसान के कर्ज़दार होने का एक मुख्य कारण है। सरकार तथा सरकारी वेतन-भोगी अर्थशास्त्र के विद्वान इस बात को मानने के लिये तैयार नहीं हैं कि लगान और मालगुज़ारी अधिक है। किन्तु लेखक का तथा अन्य बहुत से विद्वानों का मत यह है कि लगान तथा मालगुज़ारी उचित से अधिक है, क्योंकि खेती-बारी में लाभ बहुत कम है। लगान व मालगुज़ारी अधिक है अथवा कम, इस विषय में मतभेद है किन्तु इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि तीस वर्ष के लिये लगान और मालगुज़ारी पहले से निश्चित कर देने के कारण, जब कभी फ़सलें नष्ट होजाती हैं अथवा खेती की पैदावार की क़ीमत बहुत गिरजाती है तो किसानों को लगान या मालगुज़ारी देना कठिन होजाता है। यद्यपि ऐसे समय में छूट देने का प्रयत्न किया जाता है किंतु वह आवश्यकता से बहुत कम होती है। निर्धन किसान को कर्ज़ लेकर मालगुज़ारी या लगान देना पड़ता है, क्योंकि ज़मींदार तथा सरकारी कर्मचारी उसे बड़ी सख़्ती से वसूल करते हैं। यह तो पूर्व ही कहा जाचुका है कि खेती में लगे

* ज़मींदारी प्रथा वाले प्रांतों में किसान भूमि के उपयोग के लिये जो रक़म ज़मींदार को देता है वह लगान कहलाती है, और सरकार जो रक़म ज़मींदार से लेता है उसे मालगुज़ारी कहते हैं।

रैयतवारी प्रान्तों में किसान का सीधा सम्बन्ध सरकार से होता है और वह जो रक़म सरकार को देता है, उसे मालगुज़ारी कहते हैं। मालगुज़ारी, बन्दोबस्त करके सरकार ३० वर्ष के लिये निश्चित करती है।

हुए मनुष्यों की संख्या आवश्यकता से अधिक है, इस कारण खेती के योग्य भूमि का गांवों में अकाल है। अस्तु, किसान भूमि लेने के लिये लम्बे पट्टे लेता है और उचित से अधिक लगान देता है। कभी कभी कर्ज लेकर वह भूमि भी मोल लेलेता है। कहीं कहीं इन दो कारणों से भी वह क़र्ज़दार बना हुआ है। इन सब कारणों के होते हुए तथा महाजन के कर्ज़ देने के ढंग और भयंकर सूद को देखते हुए यह आश्चर्य की बात नहीं है कि किसान सदा क़र्ज़दार रहता है। किन्तु इन सब कारणों के अतिरिक्त एक कारण जिसके विषय में ऊपर के पृष्ठों में संकेत किया जा चुका है, मुख्य है; अर्थात् खेती में लगी हुई जन संख्या की वृद्धि। १८६१ की मनुष्य गणना में ६१ प्रति शत मनुष्य खेती-बारी में लगे हुए थे, यही संख्या १९०१ में ६६ प्रति शत, १९११ में ७१ प्रति शत, १९२१ में ७२ प्रति शत, तथा १९३१ में ७३ प्रति शत होगई। ग्रामीण उद्योग-धन्धों का नष्ट हो जाना भी इस बढ़ी हुई क़र्ज़दारी का एक कारण है।

इस बढ़ी हुई क़र्ज़दारी का फल बहुत भयंकर हो रहा है। किसान और कारीगर महाजन के क्रीत-दास बन गये हैं। वर्ष भर परिश्रम करने के उपरान्त भी उनको भर पेट भोजन नहीं मिलता, एक बार क़र्ज़ा ले लेने पर वह लोग महाजन के चँगुल से बचकर कभी निकल ही नहीं सकते। महाजन उनका दोहन करके आनन्द करता है, और निर्धन किसान परिश्रम करता है महाजन के लाभ के लिये। किसान किसी प्रकार अपनी आवश्यकताओं

को घटा कर गुज़ारा करता है। किसी वर्ष भी यदि फ़सल नष्ट होगई तो उसे महाजन की शरण जाना पड़ता है, और एक बार वह महाजन के पास गया नहीं कि चिर-दास बना नहीं।

क़र्ज़ लेना कोई बुरी बात नहीं है और न क़र्ज़दार होना ही आर्थिक-हीनता का सूचक है, यदि कर्ज़ उत्पादक कार्य के लिये लिया गया हो; किन्तु अनुत्पादक कार्य के लिये लिया हुआ कर्ज़ किसान की आर्थिक मृत्यु का कारण होता है। भारतीय किसान का ऋण अधिकतर अनुत्पादक कार्यों के लिये लिया गया है और जो ऋण उत्पादक कार्यों के लिये भी लिया जाता है, उस पर इतना अधिक सूद देना पड़ता है कि किसान दिवालिया हो जाता है। किसान को इतना अधिक सूद देना पड़ता है कि खेती बारी में उसे लाभ हो ही नहीं सकता। भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त में सूद की दर भिन्न भिन्न है,परन्तु २० प्रति शत से ले कर ३७ प्रति शत तक साधारण सूद की दर है। किन्तु कहीं कहीं ५० प्रति शत से लेकर १०० प्रति शत तक सूद देना पड़ता है। भारतीय अदालतों में ऐसे बहुत से मुक़दमे आये जिनमें सूद की दर १००० प्रति शत से भी अधिक थी। कभी कभी चतुर महाजन जितनी रक़म देता है उससे कई गुनी लिख लेता है और अशिक्षित किसान उस पर अंगूठा लगा देता है। महाजन किसान से मूलधन तो नहीं मांगता और सूद लेता रहता है। महाजन का सूद निकालना ही किसान के लिये कठिन हो जाता है, मूलधन की तो बात ही क्या। फल यह होता है किसान सदा के लिये क़र्ज़दार बन जाता

है और वर्ष भर परिश्रम करके महाजन की थैलियां भरता रहता है। किसी ने ठीक ही कहा है कि भारतीय किसान ऋणी जन्म लेता है, ऋणी ही मरता है और ऋण को भावी पीढ़ियों के लिये छोड़ जाता है। यह ऋण पीढ़ी दर पीढ़ी चलता है। क्रमशः भारतीय किसान के हृदय में यह बात बैठ गई है कि क़र्ज़दार होना अवश्यम्भावी है, इससे छुटकारा हो नहीं सकता और महाजन को अपने वर्ष भर के परिश्रम द्वारा उत्पन्न की हुई पैदावार सूद में देना अनिवार्य है। अस्तु, वह मुक्त होने का प्रयत्न करना भी छोड़ देता है। भारतीय किसान की मनोदशा इतनी दयनीय हो गई है कि आप चाहे कितना ही उसको समझावें उसकी समझ में यह आही नहीं सकता कि मैं इससे मुक्त भी हो सकता हूँ। जिस प्रकार जीवन होते हुए मरण अनिवार्य है वैसे ही भारतीय ग्रामीण के लिये क़र्ज़दार होना अनिवार्य है। यह उसका दृढ़ विश्वास है। फल यह होता है कि जब कभी सामाजिक रूढ़ियों तथा बिरादरी के दवाव के कारण उसको सामाजिक कार्यों में धन व्यय करना पड़ता है तो वह निश्चिन्त होकर और क़र्ज़ ले लेता है। वह जानता है कि क़र्ज़दार तो अवश्य रहूँगा फिर थोड़े से अधिक खर्चे के लिये बिरादरी से हँसी क्यों करवाऊँ। क़र्ज़दार होने के कारण भारतीय किसान तथा गृह उद्योग-धन्धों में लगे हुए कारीगर इतने हताश हो चुके हैं कि यदि आप किसान को वैज्ञानिक ढंग से खेती करके अधिक पैदावार प्राप्त करने का आदेश दें तो वह कदापि मानने को तैयार नहीं

होता, क्योंकि वह जानता है कि यदि अच्छा बीज, खाद और यन्त्रों का उपयोग करके मैंने अधिक पैदावार की भी तो वह महाजन के पास जावेगी; मैं तो जैसा पहले था वैसा फिर भी रहूँगा, मैं क्यों व्यर्थ में परिश्रम करूं। यदि हम चाहते हैं कि कृषि की उन्नति हो और भारतीय ग्रामीणों की आर्थिक दशा सुधरे तो हमें उनको इस भयंकर बोझ से मुक्त करना होगा। जब तक भारतीय किसान इस भयंकर बोझ से पिसा जारहा है तब तक देश की आर्थिक दशा का सुधारना स्वप्न-तुल्य है; केवल एक सुन्दर कल्पना है, इसमें तथ्य कुछ भी नहीं है।

किसान फ़सल बोने के समय महाजन से सवाये अथवा डयोढ़े पर बीज लाता है तथा खाद इत्यादि डालने के लिये कर्जा लेता है। फ़सल तैयार होनेपर अधिकतर उसे अपनी फ़सल शीघ्र ही बेच देना पड़ती है क्योंकि ज़मींदार लगान के लिये, सरकार आबपाशी के लिये, तथा महाजन अपने कर्ज के लिये जल्दी मचाते हैं। उस समय किसान महाजन के हाथ फ़सल बेचकर अपना पीछा छुड़ाता है। महाजन बाज़ार भाव से बहुत सस्ते दामों पर फ़सल मोल लेता है। कभी कभी तो कर्जा देने के समय यह निश्चय होजाता है कि किसान फ़सल महाजन के ही हाथ बेचेगा। यदि कोई किसान समीपवर्ती मंडी में फ़सल बेचने जाता है तो वहां दलाल, आढ़तिया तथा व्यापारी उसको लूटते हैं। साथ ही फ़सल कटने के थोड़े दिनों के बाद तक बाज़ार का भाव बहुत मन्दा रहता है और किसान को मन्दे भाव पर अपनी

फ़सल बेच देना पड़ती है। जूट, गन्ने तथा अन्य औद्योगिक कच्चे माल के किसान तो खड़सारियों तथा जूट के व्यवसायियों के चिरदास बने रहते हैं। खड़सारी फ़सल बोने के समय कुछ रुपया किसान को पेशगी देदेता है और उससे तय करलेता है कि इस क़ीमत पर तुम्हें गन्ना अथवा रस हमें देना होगा; गन्ने अथवा रस का मूल्य सालभर पहिले से ही निश्चित होजाता है। निर्धन किसान को गन्ने की फ़सल बोने के लिये रुपया चाहिये और उसे खड़सारियों से रुपया लेना ही पड़ता है। वास्तव में स्थिति तो यह है कि परिश्रम करता है किसान और उसका लाभ उठाते हैं महाजन। अधिकतर किसानों की स्थिति यह है कि फ़सल काट चुकने के उपरान्त, ज़मींदार सरकार तथा महाजन का देना चुकाने पर उसके पास कठिनता से आठ महीने का भोजन बच रहता है। पिछले चार महीनों के लिये उसे महाजन से सवाये डयोढ़े पर अनाज उधार लेना पड़ता है। कहीं कहीं तो कर्ज़दारों की स्थिति मोल लिये हुए दासों से भी गई बीती हो जाती है। विहार उड़ीसा के छोटा नागपुर प्रान्त में कम्यौती पद्धति प्रचलित है। ज़मींदार किसी मज़दूर को कुछ रुपया (१०० या २००) देदेता है, इस रुपये पर न तो सूद लिया जाता है और न यह रुपया वापिस किया जाता है। किन्तु इसके बदले कम्यौत को इक़रारनामा लिखना पड़ता है कि वह जब ज़मींदार को आवश्यकता होगी तब उसका काम करेगा। ज़मींदार को फ़सल बोने तथा काटने के समय कम्यौत की आवश्यकता पड़ती है, तब

वह उसे बुला लेता है और दो आना प्रति दिन के हिसाब से मज़दूरी देदेता है। गांवों में यही समय मज़दूरी का होता है। इन महीनों को छोड़कर और महीनों में कम्यौत को गांव में मज़दूरी नहीं मिल सकती। ठीक इन्हीं दिनों ज़मींदार भी कम्यौत को अपने यहां नहीं रखता। उन दिनों कम्योत को वे दो आने भी नहीं मिलते। कम्यौत जीवनभर इस दासता में रहता है क्योंकि जब तक वह लिया हुआ रुपया न लौटा दे तब तक उसका इस बन्धन से छुटकारा नहीं होता। कुछ वर्ष हुये बिहार सरकार ने एक एक्ट बनाकर इस प्रकार के इक़रारनामों को ग़ैर-क़ानूनी घोषित कर दिया, किन्तु अशिक्षित कम्यौत को इसका ज्ञान धीरे धीरे होगा।

इसी प्रकार कारीगर भी व्यापारियों और महाजनों के चंगुल में फंसे हुए हैं, और महाजन उनका शोषण कर रहे हैं। बुनकरों का ही धंधा ले लीजिये। निर्धन बुनकर कपड़े तथा दरी के व्यापारी से सूत उधार लाता है तथा कर्घे इत्यादि आवश्यक वस्तुओं के लिये भी रुपया लेता है। कपड़े का व्यापारी सूत का भी व्यापारी होता है। वह सूत का मूल्य अधिक लेता है। बुनकर को तैयार माल उसी व्यापारी के हाथ बेचना पड़ता है। कहीं कहीं व्यापारी बुनकरों को कुछ रुपया एक साथ देदेता है जिसे बाक़ी कहते हैं। बुनकर को उसके बदले उसी व्यापारी से सूत ख़रीदना पड़ता है और उसी व्यापारी के हाथ तैयार माल बेचना होता है। व्यापारी सूत का अधिक दाम लेकर तथा तैयार माल

का कम मूल्य देकर बुनकर को लूटता है। जब तक कि बुनकर बाक़ी का रुपया न चुका दे तब तक वह दूसरे व्यापारी के पास नहीं जासकता। इस प्रकार महाजन कारीगरों का शोषण करते हैं। जब तक कि पूँजी के उचित मूल्य पर मिलने का तथा तैयार माल के बिकने का प्रबन्ध सहकारी समितियों के द्वारा नहीं किया जाता तब तक गृह उद्योग-धन्धे पनप नहीं सकते।

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि साहूकार की ऋण देने की पद्धति तथा सूद की दर इतनी भयंकर है कि किसान कभी मुक्त नहीं हो सकता। भिन्न भिन्न प्रान्तीय बैंकिंग इनकायरी कमेटियों ने अपने अपने प्रान्तों में जो सूद की दर लिखी है वह इस प्रकार है:—

आसाम—१२ प्रति शत से ७५ प्रति शत तक।

बम्बई—१२ " ५० "

बंगाल—कम से कम १० से ३७½ तक, अधिक से अधिक ३७½ से ३०० तक।

बिहार उड़ीसा—१८¾ से ५० प्रति शत तक।

बर्मा—१८ से २४ प्रति शत तक। छोटे तथा बिना ज़मानत के कर्ज़ों पर ३८ से ६० प्रति शत तक।

मध्य प्रान्त—१२ से ३७½ प्रति शत तक। अनाज के ऋण पर २५ से १०० प्रति शत तक।

मद्रास—१२ से लेकर ४८ प्रति शत तक।

संयुक्त प्रान्त—व्यापारिक कार्यों के लिये ६½ से १२½ तक,
तथा अनाज के कर्ज़ पर २५ प्रति शत से ५०
प्रति शत तक।

पंजाब कमेटी ने केवल उन ऋणों के सूद की दर बतलाई है जिनके लिये कुछ सम्पत्ति बंधक रूप में रख दो गई है। वह सूद की दर ६ से १२ तक है।

क्रमशः इस भीषण ऋण के बोझ को न सह सकने के कारण किसानों को भूमि उनके हाथ से निकल कर महाजनों के हाथों में जाने लगी। इस भयंकर परिस्थित की ओर भारत सरकार का ध्यान किसान विद्रोह ने आकर्षित किया। दक्षिण भारत, अजमेर-मेरवाड़ा तथा मध्य प्रान्त के छोटा-नागपुर डिविज़न में किसान विद्रोही हो उठे, उन्होंने महाजनों के घर जला दिये और उन्हें मार डाला, तथा बही खातों को जला कर भस्म कर दिया। सरकार ने एक कमीशन दक्षिण के किसानों के विद्रोह के कारणों की जांच करने के लिये बिठाया। कमीशन की सम्मति में किसानों की गिरी हुई आर्थिक दशा और भयंकर सूद की दर ही इन विद्रोहों का कारण थी। शान्ति-प्रिय किसान जब महाजन का अत्याचार न सह सके तो वह विद्रोही हो उठे। सरकार ने किसान की रक्षा के लिये एक एक्ट बनाया जिससे अदालतों को यह अधिकार देदिया गया कि वे किसी भी नालिश के मुक़द्दमे में न्यायोचित सूद की ही डिगरी दें, फिर किसान ने महाजन को चाहे जितना अधिक सूद देने का इक़रार क्यों न किया हो। किंतु

इस एक्ट का कोई फल न हुआ, क्यों कि किसान निर्धन हैं और न्यायालयों में व्यय अधिक होता है, साथ ही अदालतों ने इस ओर विशेष ध्यान भी नहीं दिया। सरकार ने फ़सलों के नष्ट होने पर मालगुज़ारी तथा लगान में छूट करने की नीति को अपनाया, किंतु इससे भी किसान को कुछ विशेष लाभ नहीं हुआ। सरकार एक तो छूट बहुत कम करती है और उस छूट में भी यह शर्त लगाई जाती है कि यदि किसान एक निश्चित तारीख़ तक लगान नहीं दे देगा तो छूट नहीं मिलेगी। फल यह होता है कि किसान को महाजन से क़र्ज़ लेकर लगान देना पड़ता है। भारतीय सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित किया गया कि भारतीय किसानों में मितव्ययिता का भाव जागृत करना चाहिये। अस्तु, पोस्ट आफ़िस सेविंग बैंक खोले गये। किंतु इन बैंकों ने किसानों में मितव्ययिता का कितना प्रचार किया है यह पाठक भली भांति जानते हैं। अशिक्षित किसान भला उन पोस्ट आफ़िस सेविंग बैंकों से कैसे लाभ उठा सकता है जिनका कार्य विदेशी भाषा में होता है और जो अधिकतर शहरों और बड़े क़स्बों में होते हैं। जिस देश में किसानों को मनीआर्डर और तार की लिखाई दो आने और ख़त की लिखाई एक आना देनी पड़ती हो, वहां भला पोस्ट आफ़िस सेविंग बैंक किस प्रकार किसानों को अपनी ओर आकर्षित कर सकते हैं। सरकार ने कई बार क़ानून में सुधार इस दृष्टि से किये कि किसान को कुछ सुविधा दीजावे किंतु क़ानूनों के द्वारा सरकार किसानों को कुछ भी सहायता न पहुंचा सकी।

सरकार ने देखा कि किसान को खेती बारी का धंधा करने के लिये साख की आवश्यकता होती है। किसान को दो प्रकार की साख चाहिये अर्थात् थोड़े समय के लिये तथा अधिक समय के लिये। किसान को फ़सल तैयार करने के लिये जो क़र्ज़ लेना पड़ता है वह लगभग एक वर्ष के लिये लिया जाता है। फ़सल के लिये किसान को बीज, खाद, हल तथा अन्य औज़ारों और मज़दूरों की मज़दूरी का प्रबन्ध करना पड़ता है। किसान इनके लिये क़र्ज़ लेकर फ़सल कटने के उपरान्त अदा कर सकता है। किन्तु कुछ कार्य ऐसे हैं जिन में पूँजी लगाने से तुरन्त ही लाभ नहीं होता जैसे कुआ खोदना, खेती के मूल्यवान यन्त्र मोल लेना, तथा भूमि को अधिक उपजाऊ बनाना इत्यादि। इन कार्यों के लिये क़र्ज़ अधिक समय के लिये चाहिये। अस्तु, सरकार ने दो एक्ट बनाकर प्रान्तीय सरकारों को यह अधिकार दे दिया कि वे किसान की दोनों प्रकार की आवश्यकताएं पूरी करने के लिये कर्ज़ देसकती हैं। इस सरकारी क़र्ज़ को तक़ावी कहते हैं किन्तु तक़ावी से भी यह समस्या हल नहीं हुई और न किसानों ने तक़ावी का अधिक उपयोग ही किया। कारण यह है कि एक तो किसान को समय पर रुपया नहीं मिलता, उसको रुपये की इस समय आवश्यकता है किन्तु रुपया मिलता है देर में। इसमें सबसे बड़ा दोष यह है कि किसानों को तक़ावी पटवारी, क़ानूनगो, तथा नायब तहसीलदार इत्यादि रैवन्यूविभाग के कर्मचारियों की सिफ़ारिश से ही मिलती है। इस कारण किसान को तक़ावी मिलने में कठिनाई

होती है। आवश्यकतानुसार तक़ावी मिलने में कठिनाई होने से तथा वसूलयाबी में कड़ाई होने के कारण तक़ावी का अधिक प्रचार न होसका।

कर्ज़दार होने के कारण किसानों के हाथ से भूमि महाजनों के पास चली जाती है और किसान उस पर मज़दूर की भांति काम करता है। पंजाब में इस समस्या ने भीषण रूप धारण कर लिया था, इस कारण वहां एक एक्ट बना कर इसको रोक दिया गया। 'पंजाब लैंड एलीनियेशन एक्ट' के अनुसार कुछ जातियां किसान जातियां मान ली गई हैं और खेती की भूमि इन जातियों के अतिरिक्त अन्य जातियां नहीं ले सकतीं। इस एक्ट से यह लाभ हुआ कि महाजन कर्ज़ा के लिये डिगरी करा कर अब किसान की भूमि नहीं ले सकते। संयुक्तप्रान्त के बुन्देलखण्ड नामक प्रदेश में, तथा मध्यप्रान्त के कुछ भागों में इसी प्रकार का क़ानून लागू किया गया है।

किन्तु ऋण समस्या जैसी पहले थी वैसी ही बनी रही। इसी बीच में भारत सरकार का ध्यान सहकारिता आन्दोलन की ओर आकर्षित हुआ और सहकारिता आन्दोलन का श्रीगणेश सरकार के द्वारा भारतवर्ष में किया गया। जर्मनी और इटली में सहकारी साख समितियों ने वहां के किसानों की आर्थिक स्थिति सुधारने में आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त की थी। भारत सरकार ने भी ऋण की समस्या हल करने के लिये सहकारिता आन्दोलन की शरण ली।

इस देश में तीस वर्षों से ऊपर इस आन्दोलन को चलते हो गये। सहकारिता आन्दोलन कहां तक सफल हुआ है और भविष्य में उससे क्या आशा है यह तो आगे के पृष्ठों में लिखा जायगा किन्तु इन तीस वर्षों के अनुभव से यह तो स्पष्ट ही हो गया है कि किसानों का पिछला कर्ज चुकाने तथा अधिक समय के लिये किसान को कर्ज देने का कार्य सहकारी साख समितियां सफलता पूर्वक नहीं कर सकतीं। और जब तक किसान पुराने कर्ज के बोझ से दबा रहेगा तब तक उसकी आर्थिक उन्नति नहीं हो सकती। यदि किसान सहकारी साख समिति का सदस्य बनता है किन्तु महाजन का पुराना कर्ज नहीं चुका सकता तो महाजन उसको तंग करता है और किसान को पुराने कर्ज पर तो भयंकर सूद देना ही पड़ता है। फल यह होता है कि किसान की मुक्ति का कोई उपाय नहीं रहता। इसी समस्या को हल करने लिये भूमि बंधक बैंक (Land Mortgage Banks) स्थापित करने का आयोजन किया जारहा है। यह बैंक भी उन्हीं किसानों का पिछला कर्ज चुका सकेंगे जिनके पास भूमि है और जो उसे बैंक के पास बंधक स्वरूप रख सकेंगे। बैंक किसान से सूद सहित उस कर्ज को बीस अथवा पच्चीस वर्षों में किश्तें लेकर वसूल कर लेगा। यह प्रयोग अभी नया है, बहुत कम बैंक देश में स्थापित किये गये हैं, इस कारण इनकी सफलता के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। किन्तु इतना तो स्पष्ट है कि भूमि बंधक बैंक को कार्य-शील पूँजी (Working Capital)

इकट्ठा करने की समस्या हल करनी होगी और यदि इन बैंकों के डिबैंचर बेंच कर कार्यशील पूँजी इकट्ठी भी हो गई तो भी यह बैंक उन्ही किसानों को कर्ज दे सकेंगे कि जो भूमि को बंधक रख सकेंगे। बहुत से प्रान्तों में किसान का भूमि पर स्वामित्व ही नहीं है, वहां यह बैंक किसानों की सहायता न कर सकेंगे।

ऋण परिशोध—यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि पुराने कर्ज को चुकाने की समस्या बहुत कठिन है। अधिकतर यह ऋण पैतृक होता है, यह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी पर आता है। किसान की आर्थिक स्थिति इतनी शोचनीय हो गई है कि वह इस कर्ज को चुका ही नहीं सकता। जब साधारण रूप से फ़सल अच्छी होती है तब भी खेती-बारी का ख़र्चा काटकर, फ़सल तैयार करने के लिये महाजन अथवा सहकारी साख समिति से लिये हुए क़र्ज़ को देकर उसके पास वर्ष भर के लिये खाने को नहीं रहता, तब वह किस प्रकार पुराने कर्ज़ को चुका सकता है। जिस वर्ष फ़सल ख़राब हो जाती है, बैल मर जाते हैं, अथवा और कोई अनिवार्य खर्च आ जाता है, तो ऋण अधिक बढ़ जाता है। जब तक पुराने कर्ज़ को चुका नहीं दिया जाता अथवा इसको ग़ैर-क़ानूनी नहीं बना दिया जाता, तब तक किसानों की आर्थिक स्थिति सुधर नहीं सकती। शाही कृषि कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में इस विषय पर लिखा है कि इस ऋण की ओर से उदासीन रहना बहुत भयंकर होगा।

सेंट्रल बैंकिंग इनकायरी कमेटी की सम्मति में सरकार को

इस ओर ध्यान देना चाहिये और निम्नलिखित योजना के अनुसार कार्य करना चाहिये :—

प्रान्तीय सरकार इस कार्य के लिये विशेष कर्मचारी नियुक्त करे जो कि गांवों में दौरा करके महाराज को इस बात पर राज़ी करें कि वह किसानों से एक मुश्त अथवा क़िश्तों में रुपया लेकर उन्हें ऋण-मुक्त करदे। इन कर्मचारियों का यह भी कर्तव्य होगा कि वे किसानों को यह बतलावें कि क़ानून द्वारा निश्चित सूद की दर को घटवाया जा सकता है।

जब कर्मचारी महाजन से तय करले कि वह कम से कम कितना रुपया लेकर किसान को ऋण मुक्त कर देगा तब किसान को सहकारी साख समिति का सदस्य बनवा दिया जावे। समिति उसका कर्ज़ा इकठ्ठा अथवा किश्तों में चुका दे तथा खेती-बारी के लिये किसान को आवश्यक साख दे।

जब महाजन रुपया वार्षिक किश्तों में लेना स्वीकार करे तो जितना किसान स्वयं अदा कर सकता हो, करदे, और बाक़ी का ऋण समिति, सदस्य की जमा के रूप में, अपने यहां लिख लेगी और प्रति वर्ष जब किश्त का रुपया अदा करेगी तो जमा किया हुआ रुपया कम कर दिया जावेगा।

यदि महाजन एक मुश्त रुपया मांगे तो सरकार को उतना रुपया समिति को उधार देदेना चाहिये; समिति उस कर्ज़े को वार्षिक क़िश्तों में चुका देगी। तदुपरांत यह निश्चय किया

जावेगा कि किसान प्रति वर्ष कितनी किश्त अदा करे। यदि किसान रुपया अदा न कर सके और समिति को हानि हो जावे तो सरकार उस हानि को पूरा करदे।

यह भी सम्भव है कि महाजन कर्ज़ा के इस प्रकार चुकाये जाने के लिये तैयार न हों और समझौता न करें। ऐसी परिस्थिति में उन्हें क़ानून बना कर समझौते के लिये वाधित किया जावे।

शाही कृषि कमीशन ने भी पैतृक ऋण के विषय पर अपनी सम्मति दी है। कमीशन की सम्मति में ग्रामीण 'इन्सालवैंसी (दिवाला) ऐक्ट' बनाया जावे। इससे यह लाभ होगा कि जो ग्रामीण ऋण के बोझ से इतना दबा हो कि उसकी सम्पत्ति के बिक जाने पर भी वह कर्ज़ अदा न कर सके तो वह दिवालिया होने का प्रार्थना पत्र देदे और अपनी सम्पत्ति लेनदारों को देकर ऋण मुक्त हो जावे, और स्वतन्त्र रूप से आजीविका उपार्जन करे। चाहे उसकी सम्पत्ति से लेनदारों का आधा रुपया भी वसूल न हो सके, वे उस किसान से रुपया भविष्य में वसूल नहीं कर सकते। किसान सदा के लिये उस ऋण से मुक्त हो जावेगा। यह ऐक्ट पास हो गया है।

लेखक का मत—यदि देखा जावे तो यह सभी योजनाएं त्रुटिपूर्ण हैं। किसान को ऋण मुक्त करने की समस्या ने आज पचास वर्षों से सरकार तथा जनता का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करलिया है। बहुतसी योजनाएं तैयार की गईं, उनके अनुसार कार्य भी किया गया, किन्तु किसी से भी सफलता प्राप्त नहीं

हुई। सफलता प्राप्त न होने का एक कारण यह है कि किसी भी विद्वान ने इस समस्या पर स्वतन्त्र रूप से विचार नहीं किया।

यह तो पहले कहा जाचुका है कि जन संख्या के बढ़जाने से तथा गृह उद्योग-धन्धों के नष्ट होजाने से खेती बारी करने वालों की संख्या पिछले पचास वर्षों में बहुत बढ़ गई है। इस कारण प्रति किसान,भूमि बहुत कम रहगई है। भूमि का अकाल पड़गया है। किसान को बहुत अधिक लगान देकर भूमि लेनी पड़ती है। किसान के सारे खेत एक ही स्थान पर नहीं होते, भूमि के छोटे छोटे टुकड़े दूर दूर बिखरे होते हैं जिसके कारण व्यय अधिक, और पैदावार कम होती है। साधारणतः जब फ़सल अच्छी होती है तो भी किसान को वर्षभर के लिये खेती से यथेष्ट आय नहीं होती। फिर,हर तीसरे अथवा चौथे साल फ़सल नष्ट हो जाती है। उपर से धार्मिक, सामाजिक कार्यों के लिये तथा मुक़-दमेबाज़ी के लिये उसे ऋण लेना अनिवार्य होजाता है। वह ऋणी तो होता ही है;फ़सल के वास्ते,लिये हुए ऋण पर सूद तथा मूल चुकाने के अतिरिक्त उसे पुराने ऋण पर भयंकर सूद देना पड़ता है। परिस्थिति ऐसी बन गई है कि किसान को यह दृढ़ विश्वास होगया है कि वह कभी ऋण मुक्त नहीं हो सकता, और न उसकी भावी पीढ़ियां ही मुक्त हो सकती हैं। वह तो कहता है यह कर्ज़ा तो ऐसे ही चला आया है और ऐसे ही चलता रहेगा। उसकी मनोदशा निराशामय है। वह स्वप्न में भी ध्यान नहीं करता कि मैं कभी मुक्त हो सकता हूँ। यही कारण है कि उसमें मित-

व्ययिता का भाव जागृत नहीं होता, वह सोचता है कि क़र्ज़दार तो रहना ही है फिर किफ़ायत करने की चिन्ता क्यों !

यह समस्या तभी हल हो सकती है कि जब राज्य क़ानून बना कर किसान को ऋण मुक्त करदे। यह मानी हुई बात है कि जब तक क़र्ज़दारी की समस्या हल नहीं होगी तब तक ग्रामीण सुधार होना असम्भव है। आज तक जितनी भी योजनाएं सोची गईं उनमें कोई योजना ऐसी नहीं जो किसान को ऋण-मुक्त कर सके। प्रत्येक योजना किसान को ऋण चुकाने में सुविधाएं प्रदान करती है। सुविधाओं की आवश्यकता तो तब होती है जब कि देनदार में ऋण चुकाने की ताक़त हो। जहां चुकाने की ताक़त ही नहीं है, वहां सुविधाओं से क्या लाभ ! भला विचारिये तो सही कि जो किसान वर्ष भर परिश्रम करने के उपरान्त केवल आठ महीने का भोजन पाता हो, वस्त्र, औषधि तथा शिक्षा पर कुछ व्यय न कर सकता हो, वह किस प्रकार पुराने ऋण को अदा कर सकता है।

यदि हम चाहते हैं कि भारतीय किसान महाजनों की आर्थिक दासता से स्वतंत्र होकर अपने धंधे में उत्साह पूर्वक लग कर खेती-बारी की उन्नति करे, ग्रामीण उद्योग धन्धों की सहायता से अपनी आय को बढ़ावे, और मनुष्यों का सा जीवन व्यतीत करे तो उसे ऋण मुक्त करना होगा। इसके लिये एक क़ानून बना कर सारा ग्रामीण ऋण ग़ैर-क़ानूनी बना दिया जावे; किसान महाजन का देनदार न रहे और ऋण मुक्त हो जावे। जब एक

बार किसान मुक्त होकर स्वतंत्र वायु मण्डल में सांस लेगा तब उसकी मनोदशा में परिवर्तन होगा। उसका जीवन निराशामय न होकर आशामय बनेगा। खेती-बारी के लिये आवश्यक साख प्रति वर्ष सहकारी समितियों से मिल जावेगी, फिर वह कृषि विभाग द्वारा बतलाई हुई वैज्ञानिक ढंग की खेती करेगा और ख़राब सालों के लिये, अच्छे सालों में कुछ रुपया बचाकर रखने की भी बात उसकी समझ में आजावेगी। ग्रामीण उद्योग धंधे तभी पनप सकेंगे और किसान को अपनी फ़सल महाजन के हाथ कम दामों पर बेचने के लिये विवश नहीं होना पड़ेगा। सच बात तो यह है कि सहकारिता आन्दोलन तभी सफल होगा और ग्राम संगठन का कार्य तभी सम्भव हो सकेगा।

यदि आप किसान के पैतृक ऋण का इतिहास जानने का प्रयत्न करें तो आपको ज्ञात होजायगा कि उसने अथवा उसके पूर्वजों ने जितना क़र्ज़ा महाजन से लिया था, उसका कई गुना तो वह सूद रूप में देचुका है और मूल का कई गुना उसे देना बाक़ी है। लेखक ने इस विषय की खोज की है जिससे ज्ञात होता है कि अनेक दशाओं में मूल का चार गुना तो किसान सूद में देचुका है फिरभी चार पांच गुना देना बाक़ी है। ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं कि जिनमें किसान मूल का दस गुना देचुका है फिर भी, दस गुने से अधिक देना बाक़ी है। हिंदू धर्मशास्त्रों के अनुसार लेनदार क़र्ज़ा लेने वाले से मूल का दुगना ही वसूल कर सकता है।* दुगने

* मनुस्मृति; दाम दुपत का नियम।

से अधिक वह किसी भी अवस्था में वसूल नहीं कर सकता, चाहे सूद के हिसाब से रुपया कितना ही क्यों न होगया हो। उदाहरण के लिये यदि किसी किसान ने महाजन से १०० रु० क़र्ज़ लिये और २० प्रति शत सूद ठहरा, और किसान १० वर्ष तक रुपया नहीं देता तो भी महाजन किसान से २०० रु० से अधिक नहीं पासकता। प्राचीन समय में न्यायालय इसी नियम के अनुसार डिगरी दिया करते थे। अब भी कतिपय हिन्दू देशी राज्यों में यह नियम लागू है। जब किसान दुगने से बहुत अधिक दे चुका है फिर यदि उसका क़र्ज़ा ग़ैर-क़ानूनी कर दिया जावे तो कौनसा अन्याय होगा ? मुसलमान महाजन देश में बहुत कम हैं और उनके धर्मग्रंथ कुरान के अनुसार तो सूद लेनाही मना है। ऐसी दशा में उनके प्रति भी अन्याय नहीं होगा। सम्भव है कि कुछ नये महाजनों के प्रति इस योजना से अन्याय हो जावे। उन नये महाजनों को राज्य आधा या चौथियाई देकर किसान को ऋण मुक्त करदे। अधिकतर महाजन किसानों को वर्षों से चूस रहे हैं और दिये हुये क़र्ज़ से कई गुना वसूल करचुके हैं। अबभी उन्हें जो किसानों के दोहन का अधिकार मिला है वह क्या किसान वर्ग पर भीषण अन्याय नहीं होरहा है। फिर, यदि इस भयंकर अन्याय को हटाने से देश की लगभग तीन चौथियाई जन संख्या आर्थिक दासता से मुक्त होती है और राष्ट्र के लिये अधिकाधिक सम्पत्ति उत्पन्न करने का आयोजन हो सकता है तो क्यों न देश इस कार्य को विना विलम्ब करडाले !

चौथा परिच्छेद

सहकारिता आन्दोलन का श्रीगणेश और सहकारिता सम्बन्धी क़ानून

यह तो पिछले परिच्छेद में ही कहा जा चुका है कि १८७८ में बम्बई प्रान्त के पूना तथा अन्य जिलों में किसान विद्रोही हो उठे थे। उसके सम्बन्ध में एक जांच कमेटी बिठाई गई थी और उस कमेटी ने विद्रोह का मूल कारण ग्रामीण ऋण बतलाया था। इस पर बम्बई सरकार ने दक्षिण रिलीफ़ ऐक्ट बनाकर किसानों की रक्षा करने का प्रयत्न किया। १८८२ में सर विलियम वैडरबर्न तथा श्री० गोखले ने ग्रामीण ऋण की समस्या को हल करने के लिये कृषि बैंक की एक योजना सरकार के सामने उपस्थित की। योजना मोटे रूप में यह थी कि एक ताल्लुक़ा अथवा जिला ले लिया जावे, सरकार उस जिले के किसानों का सारा ऋण चुकादे और कृषि बैंक स्थापित करदे; बैंक सरकारी क़र्ज़ा अपने ऊपर लेले और प्रति वर्ष किश्तों में सूद सहित रुपया किसानों से वसूल करे। किन्तु भारत मन्त्री ने इस योजना को अस्वीकार कर दिया क्योंकि योजना व्यवहारिक नहीं थी। इसके उपरान्त १८८३ और १८८४ में तक़ावी ऐक्ट (Land Improvement Loans Act, and Agriculturists Loan Act) पास किये गये, जिनके द्वारा प्रान्तीय सरकारों को उचित सूद पर किसानों को क़र्ज़ देने का अधिकार मिल गया। इसी बीच में दुर्भिक्ष

कमीशन ने भी किसानों को शोचनीय दशा का वर्णन करते हुए अपनी रिपोर्ट में कृषि बैंक खोलने के विषय में सम्मति देदी। जर्मनी में इसी समय सहकारिता आन्दोलन बड़ी तेज़ी से बढ़ रहा था, मद्रास सरकार ने अपने एक कर्मचारी श्री० फ्रैडरिक निकलसन को जर्मनी में सहकारिता आन्दोलन का अध्ययन करने के लिये भेजा। श्री० निकलसन ने वहां की साख समितियों का अध्ययन करने के बाद एक रिपोर्ट लिखी और उसमें यह बतलाया कि किस प्रकार भारत में यह आन्दोलन उपयोगी हो सकता है। श्री निकलसन ने अपनी रिपार्ट में लिखा है कि यदि भारतीय किसान की आर्थिक दशा को सुधारना हो तो देश में रैफ़ीसन को ढूँढ निकालो। इसके उपरान्त संयुक्त प्रान्त के श्रीयुत ड्यूपरनैक्स ने इस आन्दोलन का अध्ययन करके पीपुल्स बैंक नामक पुस्तक लिखी। इन सब प्रयत्नों का फल यह हुआ कि भारत सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ और एक कमेटी इस विषय पर विचार करने के लिये बैठाई गई। इस कमेटी की रिपोर्ट प्रकाशित होने पर उसकी सम्मति के अनुसार १६०३ में प्रथम सहकारिता एक्ट पास होगया। इस कमेटी के सभापति सर एडवर्ड-ला थे जो उस समय भारत सरकार के अर्थ-सचिव थे।

२५ मार्च सन् १६०४ को भारतवर्ष में सहकारिता आन्दोलन का श्रीगणेश होगया। इस एक्ट के अनुसार किसानों, गृह उद्योग-धंधों, तथा नीची श्रेणी के लोगों के लिये साख समितियों के खोलने का आयोजन किया गया। एक्ट संक्षेप में इस प्रकार

था। अठारह वर्ष से अधिक के कोई दस मनुष्य सहकारी साख समिति स्थापित कर सकते हैं। सदस्यों को एक ही गांव तथा एक ही स्थान का होना आवश्यक है जिससे वे एक दूसरे के विषय में पूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकें। समितियां दो प्रकार की होंगी, ग्रामीण और नगर समितियां। ग्राम्य समिति में ८० प्रति शत सदस्यों का किसान होना, और नगर समितियों में ८० प्रति शत कारीगरों तथा अन्य पेशे वालों का होना आवश्यक है। ग्राम्य समितियों के सदस्यों का दायित्व, अपरिमित होगा, किन्तु नगर समितियों के सदस्यों का दायित्व यदि वे निश्चय करलें, परिमित भी हो सकता है। ग्राम्य समिति का सब लाभ सुरक्षित कोष में जमा करना आवश्यक है। हां, जब सुरक्षित कोष एक निश्चित रक़म से ऊपर पहुँच जावे तो तीन चौथियाई लाभ सदस्यों में बांटा जा सकता है। नगर समितियों में लाभ के बांटने पर कोई रुकावट नहीं लगाई गई, हां यह नियम बनाया गया कि २५ प्रति शत लाभ सुरक्षित कोष में जमा किया जावे। समितियां व्यक्तिगत ज़मानत पर रुपया दे सकती हैं, परन्तु चल सम्पत्ति की ज़मानत पर रुपया नहीं देसकतीं। समितियों का आय व्यय निरीक्षण रजिस्ट्रार के द्वारा भेजे हुए निरीक्षकों के द्वारा होगा। एक्ट ने समितियों को कुछ सुविधाएं भी प्रदान कीं। समितियों के लाभ पर आय-कर नहीं लिया जाता, समितियों को स्टाम्प फ़ीस नहीं देनी पड़ती, और किसी भी सदस्य के व्यक्तिगत ऋण के लिये उसका (समिति में) हिस्सा कुर्क नहीं कराया जा सकता।

सहकारिता एक्ट के पास होते ही सब प्रान्तों में प्रान्तीय सरकारों ने रजिस्ट्रार नियुक्त कर दिये जिन्होंने प्रान्तों में सहकारिता आन्दोलन की देख भाल प्रारम्भ करदी। रजिस्ट्रार आरम्भ में समितियों का संगठन, उनकी देख भाल, तथा उनको रजिस्टर करने का कार्य करता था। किन्तु थोड़े ही समय के उपरान्त रजिस्ट्रार तथा अन्य कार्यकर्त्ताओं को एक्ट के दोषों का अनुभव होने लगा। कई बार सब प्रान्तों के रजिस्ट्रारों के सम्मेलन हुए और उन्होंने एक्ट के संशोधन की आवश्यकता बतलाई। १९०४ के एक्ट के अनुसार साख समितियों के रजिस्टर करने की तो व्यवस्था होगई, किन्तु ग़ैर-साख समितियों, सैन्ट्रल बैंक, बैंकिंग यूनियन, तथा सुपरवायज़िंग यूनियन के रजिस्टर करने की सुविधा नहीं हुई। १९०४ के उपरान्त जब देश में साख समितियों की स्थापना होने लगी, उस समय यह आवश्यक समझा गया कि साख समितियों का निरीक्षण करने के लिये तथा उनको पूँजी देने के लिये सैन्ट्रल बैंक तथा बैंकिंग यूनियन की स्थापना की जावे, क्योंकि साख समितियों के पास सदस्यों की आवश्यकताओं को पूरी करने के लिये यथेष्ट पूँजी नहीं थी। सैन्ट्रल बैंकों की स्थापना कम्पनी एक्ट के अनुसार ही हो सकती थी, न कि सहिकारिता एक्ट के अनुसार। साथ ही इस बात का अनुभव हुआ कि देश को ग़ैर-साख समितियों की भी अत्यन्त आवश्यकता है, उदाहरणार्थ गृह-उद्योग धंधों को प्रोत्साहन देने के लिये, खेतों की पैदावार को उचित मूल्य पर बेचने के लिये,

तथा उपभोक्ताओं को उचित मूल्य पर वस्तुएं देने के लिये सहकारी समितियों को स्थापना की आवश्यकता प्रतीत हुई। किन्तु १६०४ के एक्ट में ग़ैर-साख समितियों के संगठन के लिये कोई भी सुविधा न थी। इन सब दोषों को देखते हुये यह आवश्यक समझा गया कि एक नया एक्ट बनाया जावे। अस्तु, १६१२ में दूसरा एक्ट बनाया गया जो अब तक भारतवर्ष में प्रचलित है। केवल बम्बई, (बम्बई एक्ट १६२५) और बर्मा, (बर्मा एक्ट १६२७) प्रान्तों ने अपने प्रान्तीय एक्ट बना लिये हैं। संयुक्त प्रान्त तथा मध्य प्रान्त में भी १६१२ के एक्ट में कुछ संशोधन कर दिये गये हैं। यह परिवर्तन प्रत्येक प्रान्त ने अपनी आवश्यकतानुसार कर लिये हैं। एक्ट के अतिरिक्त प्रत्येक समिति अपने कार्य को सुचारु रूप से चलाने के लिये उपानयम बनाती है।

एक्ट के अनुसार प्रत्येक प्रान्त सहकारिता आन्दोलन की देख भाल के लिये रजिस्ट्रार नियुक्त कर सकता है। रजिस्ट्रार का कार्य केवल समितियों को रजिस्टर करना ही नहीं है, वरन उनका निरीक्षण, तथा उनके आय-व्यय की जांच करना भी है। यदि वास्तव में देखा जावे तो सहकारिता आन्दोलन का सर्वे सर्वा रजिस्ट्रार ही होता है। सहकारिता के एक प्रसिद्ध विद्वान् के शब्दों में वह आन्दोलन का मित्र, पथ-प्रदर्शक, तथा उपदेशक है। रजिस्ट्रार की आधीनता में डिप्टी रजिस्ट्रार से लेकर आय व्यय निरीक्षकों तक बहुत से कर्मचारी होते हैं जो आन्दोलन की देख भाल करते रहते हैं। (धारा ३)

रजिस्ट्रार को पंचायत के भी अधिकार प्राप्त हैं, और समितियों के झगड़ों को या तो वह स्वयं सुनकर निर्णय दे देता है, अथवा और किसी को नियुक्त कर देता है। जब कभी कोई समिति टूट जाती है तो रजिस्ट्रार लिक्वीडेटर नियुक्त कर देता है। लिक्वीडेटर उस समिति की अन्तेष्टि क्रिया करता है।

एक्ट के अनुसार कोई भी समिति जो अपने सदस्यों की आर्थिक उन्नति का प्रयत्न, सहकारिता के सिद्धान्तों के अनुसार करने के लिए स्थापित की गई हो रजिस्टर की जा सकती है। बड़े बड़े व्यवसायी अथवा पूँजीपति इस एक्ट की आड़ में अपने धन्धों का संगठन सहकारी समितियों के रूप में न करलें, इस लिये वही सहकारी समितियां रजिस्टर की जा सकतीं हैं जिनके सदस्य किसान, कारीगर, अथवा छोटी हैसियत के आदमी हों। (धारा ४)

समितियों के सदस्यों का दायित्व परिमित तथा अपरिमित भी होसकता है। यदि समिति साख का काम करती है और उस के सदस्य समिति न होकर व्यक्ति हैं, अथवा अधिकांश सदस्य किसान हैं, तो ऐसी समिति के सदस्यों का दायित्व अपरिमित होगा। अपरिमित उत्तरदायित्व का अर्थ यह है कि प्रत्येक सदस्य केवल अपना क़र्ज़ा ही चुकाने का ज़िम्मेवार नहीं है वरन् उसको समिति का सारा क़र्ज़ा चुकाना होगा। उदाहरण के लिये यदि मान लिया जावे कि अनन्तपूर नामक गांव में एक सहकारी साख समिति स्थापित कीगई जिसके सदस्यों का दायित्व अपरिमित है;

कालान्तर में वह साख समिति दिवालिया होजाती है और उस की लेनी (assets) से देनी (Liabilities) अधिक हो जाती हैं। तो उस समय समिति का कोई भी लेनदार समिति के किसी एक सदस्य से अपना सारा ऋण वसूल कर सकता है । मान लीजिये कि अनन्तपूर साख समिति के और सब सदस्य अत्यन्त निर्धन हैं, केवल दो या तीन सदस्य ऐसे हैं जिनके पास अधिक सम्पत्ति है, तो समिति के सारे ऋण दाता समिति का सारा क़र्ज़ा उन धनी सदस्यों से वसूल कर सकते हैं, और उन सदस्यों को अपनी सारी सम्पत्ति भी बेचकर समिति का क़र्ज़ा चुकाना पड़ेगा।

यदि सहकारी समिति ऐसी है जिसके सदस्य व्यक्ति भी हैं, तथा अन्य समितियां भी हैं; या फिर समिति के सदस्य अधिकतर किसान नहीं हैं, तो उन समितियों के सदस्यों का दायित्व उनके हिस्सों के मूल्य से अधिक नहीं होगा। यदि किसी सदस्य ने किसी परिमित दायित्व वाली समिति में १०) रुपये का हिस्सा लिया है और उसने हिस्से का पूरा मूल्य चुका दिया है तो उसको किसी दशा में भी अधिक कुछ नहीं देना होगा। (धारा ४)

इस आशंका को दूर करने के लिये कि कहीं कोई व्यक्ति-विशेष, सहकारी समिति पर अपना एकाधिपत्य न जमाले यह नियम बना दिया गया है कि परिमित दायित्व वाली समितियों में कोई एक सदस्य अधिक से अधिक, मूल धन के बीस प्रति शत के हिस्से, (यदि कोई समिति चाहे तो उपनियम बनाकर इससे भी कम रक़म निश्चित कर सकती है) या एक हज़ार

रुपये के हिस्से (इनमें जो रक़म भी कम हो) ख़रीद सकता है। बम्बई प्रांतीय एक्ट के अनुसार साधारण समितियों के लिये यह रक़म ३ हज़ार रुपये, तथा गृह निर्माण समितियों के लिये दस हज़ार रुपये निश्चित की गई है। किन्तु यह पाबन्दी केवल व्यक्तियों के लिये है, समितियों के लिए कोई भी पाबन्दी नहीं है। सदस्य समितियां चाहे जितने भी मूल्य के हिस्से खरीद सकती हैं। (धारा पांच)

जिन समितियों के सदस्य केवल व्यक्ति हैं वे तभी रजिस्टर की जासकती हैं जब कि नीचे लिखी बातें पूरी हों (धारा ६):—

(अ) समिति के कम से कम दस सदस्य हों और उनकी आयु १८ वर्ष से कम न हो।

(ब) यदि समिति साख का काम करना चाहती है तो सदस्यों का एक ही गांव, समीपवर्ती गांवों के समूह, अथवा एक क़स्बे का निवासी होना आवश्यक है। यदि सदस्य एकही स्थान के निवासी नहीं है तो उनका एकही जाति, पेशे, अथवा क़ौम का होना आवश्यक है। किन्तु रजिस्ट्रार को यह अधिकार है कि यदि वह चाहे तो ऐसी समिति को भी रजिस्टर करले जिसमें भिन्न भिन्न जातियों के सदस्य हों।

(क) समिति का ध्येय अपने सदस्यों की आर्थिक स्थिति को सहकारिता के द्वारा सुधारना होना चाहिये।

जिन समितियां के सदस्य अन्य समितियां भी हैं, और व्यक्ति भी हैं, उनके लिये यह शर्तें लागू नहीं हैं।

जिन समितियों में केवल व्यक्ति ही सदस्य हों उसकी रजिस्ट्री के लिये कम से कम दस व्यक्तियों को अपने हस्ताक्षर सहित रजिस्ट्रार को प्रार्थना पत्र देना चाहिये। जिन समितियों में व्यक्ति तथा समितियां दोनों ही सदस्य हों उनको रजिस्ट्री के लिये व्यक्ति तथा समितियों के प्रतिनिधियों के हस्ताक्षर होना आवश्यक है। प्रार्थनापत्र के साथ ही समिति के उपनियमों को भी भेजना चाहिये। (धारा आठ) जब रजिस्ट्रार को यह निश्चय हो जाता है कि सब कार्य नियमानुसार हुआ है तो वह समिति को रजिस्टर कर लेता है, और समिति अपना कार्य आरम्भ कर सकती है। रजिस्ट्रार समिति को एक सर्टिफिकेट देता है जो समिति के रजिस्टर होने का प्रमाण होता है । (धारा ६ और १०) यदि रजिस्ट्रार किसी कारण वश समिति को रजिस्टर करने से इन्कार करता है तो समिति के सदस्य दो मास के अन्दर प्रान्तीय सरकार से इस विषय में अपील कर सकते हैं। (धारा ६)

समितियों के उपनियम समितियों की अन्दरूनी बातों से सम्बन्ध रखते हैं। समिति के सदस्यों से समिति का सम्बन्ध तथा अन्य भीतरी बातों को निर्धारित करने के लिये उपनियम बनाये जाते हैं। किन्तु इन उपनियमों से समिति तथा बाहर वालों के सम्बन्ध निर्धारित नहीं होते । मानलो कि समिति के उपनियमों में उधार पर कोई भी वस्तु बेचने की मनाही हो और यदि किसी बाहर वाले को कोई वस्तु साख पर देदी गई हो,तो इस नियम के होते हुए भी समिति अपना रुपया वसूल कर सकती है।

जो समितियां कि परिमित दायित्व वाली होंगी उनके नाम के आगे लिमिटेड लिखा रहेगा और रजिस्ट्रार किन्हीं दो समितियों को एकही नाम न रखने देगा।

समिति का सदस्य वही व्यक्ति होगा जो कि या तो रजिस्टर किये जाने के समय हस्ताक्षर करने वालों में से हो, अथवा उप-नियमों के द्वारा बनाया गया हो। भारतवर्ष के कुछ प्रांतों में ऐसी समितियां हैं जिनमें हिस्से होते हैं और कहीं कहीं हिस्से नहीं भी होते, केवल प्रवेश फ़ीस होती है।

सहकारी साख समितियों तथा अन्य प्रकार की समितियों में एक मनुष्य की एक ही वोट होती है। सहकारी समितियों में हिस्सों के मूल्य के अनुपात में वोट देने का अधिकार नहीं होता। जब कि कोई समिति किसी दूसरी समिति की सदस्य होती है तो वह अपने किसी प्रतिनिधि को उस समिति के कार्य में भाग लेने के लिये भेजती है। (धारा १३)

भूतपूर्व सदस्य, सदस्य न रहने के दो वर्ष उपरान्त तक सह-कारी साख समिति (अपारमित दायित्व) के ऋण के लिये उत्तरदायी होता है। वह केवल उस समय तक के लिये हुए ऋण का ही ज़िम्मेदार होता है जब तक कि वह सदस्य था। (२३)

स्वर्गीय सदस्य की सम्पत्ति, अथवा उनके उत्तराधिकारी, एक वर्ष तक मृत सदस्य के व्यक्तिगत ऋण को चुकाने के लिये उत्तरदायी हैं। किन्तु समिति का सम्मिलित वाहरी ऋण (जिसको अपरि-

मित दायित्व वाली समितियों के सदस्यों को चुकाना होता है) मृत सदस्य की सम्पत्ति, अथवा उसके उत्तराधिकारियों से उसी दशा में वसूल किया जासकता है, जब कि साधारण रूप से अदालत में मुक़द्दमा चलाकर डिगरी करवाई जावे। किन्तु बर्मा तथा बम्बई के प्रान्तीय एक्टों के अनुसार समिति का लिक्टीडेटर मृत सदस्य की रियासत से समिति के सम्मिलित ऋण का वह भाग कि जो सदस्य को देना है वसूल करसकता है। (धारा २४)

समितियों के हिस्से स्वन्त्रता पूर्वक बेचे नहीं जासकते। समिति के हिस्सों के बेचने के विषय में कुछ प्रतिबन्ध एक्ट ने लगाये हैं, और कुछ समितियां (उपनियम बनाकर) लगाती हैं। (धारा १४)

परिमित उत्तरदायित्व वाली समितियों में यह नियम है कि कोई भी बाहरी मनुष्य हिस्से उतने ही मूल्य के ख़रीद सकता है जितने मूल्य से अधिक के हिस्से ख़रीदने का किसी को अधिकार नहीं है। मानलो कि नियमानुसार कोई भी मनुष्य १०० रुपये से अधिक के हिस्से नहीं लेसकता, तो कोई भी बाहरी मनुष्य सदस्यों से १०० रुपये से अधिक के हिस्से नहीं ख़रीद सकेगा।

अपरिमित दायित्व वाली समितियों का कोई सदस्य तब तक अपना हिस्सा दूसरे को नहीं देसकता जब तक उसको हिस्सा लिये हुये एक वर्ष न होगया हो। फिर भी उसे हिस्सा समिति को, अथवा समिति के किसी सदस्य को ही देना होगा। किसी बाहरी आदमी को वह हिस्सा नहीं बेच सकता। (धारा १४)

रजिस्टर्ड समितियों को अपना आय व्यय रजिस्ट्रार द्वारा निश्चित किये हुये ढंग पर रखना होता है। रजिस्ट्रार द्वारा मनोनीत किया हुआ आय-व्यय निरीक्षक आय-व्यय निरीक्षण करता है। (धारा १७)

सहकारी समितियों को निम्न लिखित विशेष सुविधायें प्राप्त हैं:- सहकारी समितियों को अपना रुपया वसूल करने की कुछ सुविधायें प्रदान की गई हैं। यदि समिति ने किसी वर्तमान सदस्य अथवा भूतपूर्व सदस्य का बीज अथवा खाद उधार दिया है, अथवा बीज और खाद मोल लेने के लिये रुपया उधार दिया है, तो समिति को उस रुपये अथवा खाद और बीज के द्वारा उत्पन्न की हुई फ़सल से अपना रुपया वसूल करने का प्रथम अधिकार होगा। यदि वह सदस्य और किसी का भी क़र्जदार है, तो वह लेनदार उस फ़सल को, जो कि समिति के बीज या खाद से पैदा की गई है कुर्क नहीं करवा सकता। इसी प्रकार यदि समिति ने सदस्यों को बैल, चारा, खेती बारी तथा उद्योग धन्धों में काम आने वाले यंत्र, और उद्योग-धंधों के लिये कच्चा माल उधार दिया है, अथवा इन वस्तुओं को खरीदने के लिये रुपया उधार दिया है, तो उन वस्तुओं पर, तथा उस कच्चे माल के द्वारा तैयार किये हुये पक्के माल पर, समिति का प्रथम अधिकार होगा। किन्तु कलकत्ता हाईकोर्ट ने एक मुक़दमे में यह रूलिंग दे दी कि जब तक कि समिति अदालत से डिगरी न कराले तब तक वह और लेनदारों को डिगरी कराने से नहीं रोक सकती। इस

रूलिंग के कारण सहकारिता आन्दोलन में कार्य करने वालों को यह अनुभव होने लगा है कि एक्ट में इस आशय का सुधार होना चाहिये, बम्बई प्रान्तीय एक्ट में इस आशय का संशोधन कर दिया गया है। बम्बई प्रान्त में समिति का केवल ऊपर लिखी वस्तुओं के लिये,दिये हुए ऋण पर ही प्रथम अधिकार नहीं होता, वरन सब प्रकार की चीज़ों के लिये दिये हुए ऋण पर अधिकार होता है। किन्तु यह प्रथम अधिकार सरकारी मालगुज़ारी, ज़मींदार की लगान, तथा किसी ऐसे लेनदार के अधिकार को नष्ट नहीं करता जिसने यह न जानते हुए कि इस वस्तु पर समिति का अधिकार है उसको ख़रीद लिया हो। (धारा १९)

समिति के सदस्य का हिस्सा कोई भी लेनदार अपने ऋण के लिये कुर्क़ नहीं करवा सकता। किसी भी वर्तमान अथवा भूतपूर्व सदस्य के जमा किये हुए रुपये तथा उसके लाभ के हिस्से को ऋण के बदले में ले लेने का समिति को अधिकार है। बाहरी लेनदार कुर्की कराकर इस रुपये को नहीं लेसकता। (धारा २०-२१)।

किसी सदस्य के मरने पर अपरिमित दायित्व वाली समिति को यह अधिकार होगा कि वह चाहे तो मृत सदस्य के वारिस को हिस्सा दे दे अथवा उसका मूल्य चुका दे। किन्तु परिमित दायित्व वाली समिति को मृत सदस्य के उत्तराधिकारी को अवश्य ही हिस्सा देना होगा। (धारा २२)।

सहकारी समिति के लाभ पर इनकमटैक्स तथा सुपर-टैक्स

नहीं लिया जाता, और न सदस्यों के लाभ पर टैक्स लिया जाता है।

सहकारी समिति केवल अपने सदस्यों को ही कर्ज़ दे सकती है, किन्तु रजिस्ट्रार की आज्ञा लेकर समिति दूसरी समितियों को भी कर्ज़ दे सकती है। विना रजिस्ट्रार की आज्ञा के अपरिमित दायित्व वाली समिति चल जायदाद (moveable property) की ज़मानत पर कर्ज़ नहीं दे सकती (धारा २६)।

सहकारी समितियां अपने उपनियमों के द्वारा निश्चित रक़म से अधिक ऋण और डिपाज़िट नहीं ले सकतीं। इसी कारण प्रत्येक समिति प्रति वर्ष अपनी साख निर्धारित करती है। सहकारी साख समितियां उन व्यक्तियों का रुपया डिपाज़िट कर सकती हैं जो सदस्य नहीं हैं। (धारा ३०)।

समिति निम्न लिखित स्थानों में अपना धन जमा कर सकती है, अथवा लगा सकती है।

(१) सरकारी सेविंगस बैंक। (२) ट्रस्टी सिक्योरिटी। (३) किसी अन्य सहकारी समिति के हिस्सों में। (४) किसी भी बैंक में जिसमें रुपया जमा करने की अनुमति रजिस्ट्रार ने दे दी हो। (धारा ३२)।

साधारणतया समिति का लाभ तथा उसका जमा किया कोष बांटा नहीं जा सकता, केवल निम्न लिखित दशाओं में वह बांटा जा सकता है।

परिमित दायित्व वाली समितियों में एक चौथियाई लाभ रक्षित कोष (reserve fund) में जमा करने के उपरान्त सदस्यों में बांटा जा सकता है। किन्तु इसके लिये भी रजिस्ट्रार की अनुमति लेनी पड़ती है। यह प्रतिबंध इस कारण लगाया गया है कि कहीं सदस्यों का उद्देश्य केवल अधिकाधिक लाभ प्राप्त करना ही न हो जावे।

अपरिमित दायित्व वाली समितियों में लाभ प्रान्तीय सरकार की आज्ञा से ही बांटा जा सकता है। प्रान्तीय सरकार साधारण आज्ञा (जनरल परमिशन) भी दे सकती है। प्रत्येक प्रान्त ने यह नियम बना दिया है कि प्रत्येक समिति जिसके व्यापार में लाभ होता है लाभ का कुछ अंश रक्षित कोष में रक्खेगी। रक्षित कोष समिति के भंग होजाने पर भी सदस्यों में बांटा नहीं जा सकता।

रक्षित कोष या तो समिति के व्यापार में लगाया जाता है, या रजिस्ट्रार के पास रहता है अथवा रजिस्ट्रार की आज्ञा से और कहीं जमा कर दिया जाता है। समिति के भंग हो जाने पर समिति के ऋण को चुका कर जो रुपया बचे, उसका उपयोग समिति के निर्णय के अनुसार होगा। यदि समिति इसका निर्णय न कर सके तो रजिस्ट्रार जिस प्रकार उस धन का उपयोग करना चाहे कर सकता है। कुछ प्रान्तों में यह नियम है कि यदि समिति किसी अन्य सहकारी संस्था की सदस्य हो तो रक्षित कोष का बचा हुआ रुपया उसको दे दिया जावे।

ऐक्ट के अनुसार प्रत्येक समिति चौथियाई लाभ रक्षित कोष में रखने के उपरान्त लाभ का १० प्रति शत दान तथा सार्वजनिक कार्यों पर व्यय कर सकती है। वे कार्य निम्न लिखित हो सकते हैं:— निर्धनों को सहायता, सार्वजनिक शिक्षा, गांवों तथा उन स्थानों में जहां समितियां हैं। औषधि मुफ्त बटवाने का प्रबंध, तथा अन्य सार्वजनिक हित के कार्य। कोरी धार्मिक पूजा अथवा धार्मिक शिक्षा पर वह रुपया व्यय नहीं किया जा सकता। (धारा ३४)।

यदि उस ज़िले का ज़िलाधीश जिसमें कि समिति हो जांच के लिये प्रार्थना करे, यदि समिति की पंचायत प्रार्थनापत्र भेजकर जांच करवाना चाहे, अथवा समिति के एक तिहाई सदस्य जांच करवाना चाहें, तो रजिस्ट्रार को स्वयं या अपने किसी आधीनस्थ कर्मचारी से अवश्य जांच करवानी होगी। वैसे रजिस्ट्रार को अधिकार है कि वह जब चाहे समिति की जांच कर सकता है। (धारा ३५)।

समिति के किसी भी लेनदार को यह अधिकार है कि वह समिति के हिसाब का, रजिस्ट्रार, अथवा उसके द्वारा नियुक्त किसी कर्मचारी से निरीक्षण करवावे। किन्तु लेनदार को जांच करने का व्यय देना होगा और उतना रुपया उसको पहिले जमा करना पड़ेगा। (धारा ३६)

रजिस्ट्रार निम्न लिखित दशाओं में किसी भी समिति को भंग कर सकता है।

(१) यदि किसी लेनदार की प्रार्थना पर रजिस्ट्रार ने जांच करवाई हो और उससे यह प्रतीत हो कि समिति को भंग कर देना चाहिये, तो वह भंग कर सकता है।

(२) यदि समिति के तीन चौथियाई सदस्य समिति को भंग करदेने की प्रार्थना करें तो समिति भंग होजाती है। भंग करने की आज्ञा के विरुद्ध कोई भी सदस्य प्रान्तीय सरकार से प्रार्थना कर सकता है। किन्तु भंग होने के दो मास के उपरान्त अपील नहीं सुनी जाती। (धारा ३६)।

(३) यदि समिति के सदस्यों की संख्या १० से कम होजावे तो समिति स्वतः ही भंग होजाती है। (धारा ४०)

समिति के भंग होजाने के उपरांत वे सब सुविधायें जो कि समिति को प्रदान की गई हैं नहीं रहतीं। जब समिति भंग हो जाती है तब रजिस्ट्रार एक लिक्टोडेटर नियुक्त करता है जो उसका शेष कार्य करता है। लिक्टीडेटर का यह कर्त्तव्य होता है कि वह समिति की सम्पत्ति तथा देनी (Liabilities) का हिसाब बनावे, जिन लोगों पर समिति का रुपया बाक़ी है उनसे वसूल करे, जिनकी समिति ऋणी है उनका ऋण चुकावे, तथा सदस्यों के दायित्व को निश्चय करें, और उनसे रुपया वसूल करे। (धारा ४१ और ४२)।

इंडिया एक्ट ने प्रान्तीय सरकारों को यह अधिकार देदिया है कि वे सहकारो समितियों तथा उनके सदस्यों के झगड़ों को निबटाने

के लिये कुछ नियम बनादें। सभी प्रांतों ने इस आशय के नियम बना लिये हैं। सहकारी समितियों के लिये यह नियम अत्यन्त आवश्यक हैं। सहकारी समितियों का उद्देश्य निर्धन मनुष्यों की आर्थिक अवस्था का सुधार करना है, उनमें स्वावलम्बन का भाव जागृत करना, तथा उन्हें मितव्ययिता का पाठ पढ़ाना है। यह उद्देश्य तब तक कभी पूरा नहीं हो सकता जब तक कि यह लोग मुक़दमेबाज़ी में व्यय करते रहेंगे। रजिस्ट्रार निम्न-लिखित झगड़ों का निबटारा कर सकता है।

(१) जिससे समिति के व्यापार का सम्बन्ध है।

(२) जिसमें सदस्यों का आपस में किसी बात पर झगड़ा हो भूतपूर्व सदस्यों में कोई झगड़ा हो, अथवा समिति के पंचों में कोई झगड़ा हो। यदि सदस्य, भूतपूर्व सदस्य,होने वाले सदस्य पंचायत तथा समिति के कर्मचारियों के अतिरिक्त और किन्हीं में झगड़ा हो, तो रजिस्ट्रार अथवा उसके द्वारा नियुक्त मनुष्य तय नहीं कर सकते। उसके लिये साधारण अदालतों में जाना होगा।

रजिस्ट्रार या तो स्वयं इन झगड़ों को तय कर सकता है अथवा एक पंच या तीन पंच नियुक्ति कर सकता है जो झगड़ा तय कर दें।

प्रत्येक पेशी के लिये वादियों को उचित नोटिस दिया जाता

है। रजिस्ट्रार अथवा पंचों को शपथ लेने, तथा वादियों और गवाहों को उपस्थिति होने के लिये आज्ञा देने का, तथा काग़ज़ों को मंगवाने का अधिकार है। यदि एक वादी उपस्थिति नहीं होता तो उसकी अनुपस्थिति में फैसला किया जा सकता है। गवाही के लिये गवाह के उपस्थित न होने पर उसके विरुद्ध कार्यवाही की जा सकती है। रजिस्ट्रार तथा पंच ऐवीडैन्स ऐक्ट के नियमों को मानने के लिये वाध्य नहीं हैं।

यद्यपि रजिस्ट्रार तथा पंचों पर कानूनी बंधन लागू नहीं हैं फिर भी उनको यह प्रयत्न करना चाहिये कि वे दोनों वादियों एक को दूसरे के सामने भली भांति सुनें। प्राइवेट रूप से जो कुछ भी झगड़े के विषय में ज्ञात हुआ हो उसका उपयोग नहीं करना चाहिये। रजिस्ट्रार को तथा पंचों को यह भी अधिकार है कि केवल कानून को ही न देखें वरन् वस्तु परिस्थिति को भी देखें। फ़ैसला लिखित होना चाहिये उस पर स्टैम्प नहीं होता। वकीलों का इन मुक़द्दमों में आज्ञा मिलने पर ही आना हो सकता है। बम्बई में वकील इन मुक़द्दमों में किसी दशा में भी नहीं आ सकते।

यदि रजिस्ट्रार ने कोई पंच नियुक्त किया हो तो उसके फ़ैसले के विरुद्ध अपील रजिस्ट्रार से अपील की जा सकती है किन्तु रजिस्ट्रार के फ़ैसले के विरुद्ध अपील नहीं होती। बम्बई में रजिस्ट्रार के फ़ैसले के विरुद्ध अपील प्रान्तीय सरकार से हो

सकती है। रजिस्ट्रार के फैसले ठीक उसी तरह लागू होते हैं जिस तरह कि अदालत के। (धारा ४३ उपधारा यल)

रजिस्ट्रार के फ़ैसले के विरुद्ध केवल दो अवस्थाओं में प्रान्तीय सरकार से अपील की जा सकती है। (१) जब रजिस्ट्रार किसी समिति को रजिस्टर करने से इनकार करे। (२) जब रजिस्ट्रार किसी समिति को भंग करदे। आज्ञा से दो महीने तक अपील हो सकती है।

पांचवा परिच्छेद

कृषि सहकारी साख समितियां

१९०४ में जब सहकारिता आन्दोलन का श्री गणेश किया गया तो केवल यह लक्ष्य था कि ग्रामीण जनता की सम्मिलित साख का उपयोग करके ग्रामीण जनता के लिये साख की समस्या हल करदी जावे। अन्य धंधों की भांति खेती बारी में भी पूँजी उधार लेने की आवश्यकता पड़ती है। भारतीय कृषक की निर्धनता, उसका अशिक्षित होना, तथा महाजन का भयंकर ऋण उसको महाजन का क्रीत दास बना देता है। इसी कारण भारत सरकार ने सहकारी साख समितियों की स्थापना करवाई।

सहकारी कृषि साख समिति के सदस्य वे ही हो सकते हैं, जो खेती-बारी में लगे हों तथा एक ही गांव अथवा समीपवर्ती गांवों में रहते हों। प्रत्येक गांव का निवासी एक दूसरे की आर्थिक स्थिति से भली भांति परिचित होता है तथा एक दूसरे के चरित्र के विषय में भी जानकारी रखता है। रैफ़ीसन सहकारी साख समितियां अपरिमित दायित्व वाली होती हैं इस कारण यह नितान्त आवश्यक है कि सदस्य एक दूसरे के चरित्र तथा आर्थिक स्थिति से भलो भांति परिचित हों। यदि सदस्य एक दूसरे के चरित्र तथा आर्थिक स्थिति को भली भांति न जानते हों तथा एक दूसरे में विश्वास न करते हों तो वे अपरिमित दायित्व कभी स्वीकार न करेंगे। अपरिमित दायित्व के सिद्धान्त अनुसार

प्रत्येक सदस्य समिति के ऋण को सामूहिक तथा व्यक्तिगत रूप से चुकाने के लिये बाध्य है।

यही कारण है कि कोई नवीन सदस्य तभी समिति में लिया जा सकता है जब कि और सब सदस्य उसको सदस्य बनाने के पक्ष में हों। सहकारी साख समिति का सिद्धान्त यह है कि प्रत्येक सदस्य दूसरे सदस्य के कार्यों का उत्तरदायी बन जाता है, इस कारण सर्व सम्मिति से ही किसी नवीन सदस्य को चुना जाता है। अधिकतर एक गांव में एक ही साख समिति स्थापित की जाती है, किन्तु यदि गांव बहुत बड़ा हो जिसके कारण एक समिति सब वर्गों के लिये उपयोगी न हो सके तो एक से अधिक समितियां भी स्थापित की जा सकती हैं। भिन्न भिन्न जातियों, तथा भिन्न भिन्न धर्मावलम्बियों को पृथक समितियां स्थापित की जा सकती हैं। किन्तु सहकारिता आन्दोलन में कार्य करने वाले सरकारी तथा ग़ैर-सरकारी कार्यकर्त्ता इस प्रकार की समितियों को प्रोत्साहन नहीं देते। सैन्ट्रल बैंकिंग इनक्वायरी कमेटी की सम्मति में किसी विशेष जाति, पेशे, तथा धर्मावलम्बियों की साख समितियां स्थापित करना उचित नहीं है। गांव में जितने भी मनुष्य हों उन सब की एक ही समिति होना आवश्यक है। ऐसी साख समिति गांव के प्रत्येक मनुष्य को एक आर्थिक सूत्र में बांध कर उनमें प्रेम-भाव उत्पन्न करती है।

समिति का प्रबंध करने का अधिकार साधारण-सभा तथा प्रबंध कारिणी सभा अर्थात पंचायत को होता है। साधारण-सभा

सब महत्व पूर्ण प्रश्नों पर अपना स्पष्ट मत दे देती है और पंचायत साधारण सभा की आज्ञाओं का पालन करती है। वस्तुतः साधारण सभा केवल नीति निर्धारित करती है, और पंचायत सारा कार्य करती है।

प्रबंध कारिणी समिति निम्न लिखित कार्य करती है :—

(१) वह सदस्यों को हिस्से देती है तथा उनको समिति का सदस्य बनाती है।

(२) ग्राम से डिपाज़िट लेनेका प्रयत्न करतो है, तथा सैन्ट्रल बैंक से ऋण लेने का प्रबन्ध करतो है। पंचायत का सबसे महत्व पूर्ण कार्य यह है कि वह सदस्यों तथा अन्य ग्राम निवासियों को समिति में रुपया जमा कमा करने के लिये प्रोत्साहित करतो है।

(३) जब कभी आवश्यकता हो तो साधारण सभा का आयोजन करती है।

(४) पंचायत यह भी निश्चय करती है कि किन सदस्यों को कितने समय के लिए उधार दिया जावे। साथ ही पंचायत उस अवधि के अन्त में ऋण के रुपये को वसूल करती है।

(५) पंचायत समिति के आय व्यय का हिसाब रखती है।

(६) समिति सम्बन्धी कार्यों में रजिस्ट्रार से लिखा पढ़ी करती है।

(७) जो सदस्य कि सम्मिलित रूप से आवश्यक वस्तुओं

को खरीदना चाहते हैं तथा खेत की पैदावार को बेचना चाहते हैं उनके लिये दलाल का काम करती है।

सदस्यों में मितव्ययिता का प्रचार करती है तथा उन्हें अपनी बचत को जमा करने के लिये उत्साहित करती है।

पंचायत, सरपंच तथा मंत्री का निर्वाचन करती है। सरपंच समिति के सारे कार्य की देख भाल रखता है तथा मन्त्री समिति का हिसाब रखता है।

समिति प्रवेश फ़ीस, हिस्सों का मूल्य, डिपाज़िट, तथा ऋण के द्वारा कार्यशील पूँजी उगाहती है। समिति का रक्षित कोष भी समिति की कार्यशील पूँजी को बढ़ता है। प्रवेश फ़ीस नाम मात्र की होती है और प्रारम्भिक व्यय के लिये लीजाती है, जो समिति की स्थापना करते समय करना पड़ता है। कुछ प्रान्तों में सदस्यों को हिस्से खरीदने पड़ते हैं और कुछ प्रांतों में हिस्से नहीं होते। पंजाब, संयुक्त प्रांत, और बर्मा के अधिकतर भाग में, तथा मदरास में, समितियां हिस्से वाली होती हैं। अन्य प्रांतों में हिस्से तथा ग़ैर हिस्से वाली समितियां दोनों ही दृष्टिगोचर होती हैं।

भारतवर्ष में सहकारी साख समितियां हिस्से वाली होनी चाहिये अथवा ग़ैर हिस्से वाली यह विचारणीय विषय है। कुछ विद्वानों का मत है कि समितियां हिस्से वाली होनी चाहिये क्योंकि हिस्सों को बेचकर थोड़ी कार्यशील पूँजी इकट्ठी करली जाती है। समिति अपनी पूँजी सदस्यों को ऋण स्वरूप देकर

उस पर लाभ उठाती है और अप्रत्यक्ष रूप से रक्षित कोष की वृद्धि होती है। सदस्य समिति के कार्यों में विशेष चाव से भाग लेने लगते हैं क्योंकि वे उसे अपनी वस्तु समझते हैं। यह सब ठीक है, किन्तु भारतवर्ष में गांवों में रहने वाले इतने निर्धन हैं कि वे किसी प्रकार भी हिस्से का मूल्य नहीं चुका सकते, ऐसी अवस्था में यदि हिस्से वाली समितियां स्थापित की जावेंगी तो वे ईमानदार तथा परिश्रमी किसान जो कि निर्धन हैं सदस्य न बन सकेंगे। लेखक के विचार से ग़ैर हिस्से वाली समितियां ही उपयुक्त होंगी। यदि सदस्यों को सहकारिता के सिद्धान्तों की भली भांति शिक्षा दीजावे तो वे समिति के कार्य में अधिक भाग लेने लगेंगे और उन में मितव्ययिता के भाव जागृत हो सकेंगे। सदस्यों को सदस्य बनाते समय यह भी बतलाना चाहिये कि साख समिति केवल ऋण देने के ही लिये नहीं है, सदस्यों को उसमें रुपया भी जमा करना चाहिये।

साख समिति का कोई सदस्य एक निश्चित रक़म से अधिक के हिस्से नहीं खरीद सकता। प्रत्येक सदस्य को केवल एक वोट देने का अधिकार होता है। प्रवेश फ़ीस तथा हिस्सों के मूल्य से समिति के पास नाम मात्र को पूँजी इकट्ठी होती है इस कारण समितियां अधिकतर ऋण और डिपाज़िट के द्वारा अपना काम चलाया करती हैं। जितनी ही अधिक कोई समिति डिपाज़िट आकर्षित करे उतनी ही उसकी सफलता समझी जानी चाहिये क्यों-कि डिपाज़िट तभी अधिक जमा होंगी जब कि जनता को समिति

का भरोसा होगा, और उसकी आर्थिक स्थिति में विश्वास होगा। साख समितियों का आदर्श यह होना चाहिये कि वे अपनी आवश्यकता के लिये पूँजी का स्वयं ही प्रबन्ध करें। जब तक कि साख समितियां डिपाज़िट आकर्षित करके अपनी आवश्यकता के अनुसार पूँजी जमा नहीं कर सकतीं तब तक उन को निर्बल ही समझना चाहिये। जमा करने से ग्रामीण जनता तथा सदस्यों में मितव्ययिता का भाव जागृत होता है। भारतवर्ष में अभी तक बंबई प्रान्त को छोड़ और किसी प्रांत में समितियों ने डिपाज़िट आकर्षित नहीं कर पाई हैं। साख समितियां ग़ैर सदस्यों से भी डिपाज़िट लेती हैं, किन्तु सैन्ट्रल बैंकिंग इनकायरी कमेटी का यह मत है कि सहकारी साख समितियों को अधिक सूद देकर डिपाज़िट आकर्षित न करना चाहिये। क्योंकि यदि समितियां डिपाज़िट पर अधिक सूद देंगी तो सूद की दर गांवों में न घट सकेगी जिसकी अत्यन्त आवश्यकता है। जब तक कि सैन्ट्रल बैंक सुसंगठित न हों तब तक वे साख समितियों की पूँजी के सन्तुलन केन्द्र नहीं बन सकते। और जब तक कि सैन्ट्रल बैंक समितियों की आवश्यकता से अधिक पूँजी का उचित उपयोग करने के योग्य न हो जावें, तथा आवश्यकता पड़ने पर समितियों को शीघ्र ही पूँजी देने की योग्यता प्राप्त न करलें, तब तक ग़ैर सदस्यों से डिपाज़िट लेना जोखिम का काम है। क्योंकि तनिक भी सन्देह हो जाने पर ग़ैर सदस्य अपना रुपया लेने को दौड़ पड़ेंगे।

समिति के पंचों को कोई वेतन नहीं दिया जाता केवल मंत्री को

थोड़ासा वेतन दिया जाता है। मंत्री यदि उसी गांव का रहने वाला हो तो अच्छा है क्योंकि वह सदस्यों से भली भांति परिचित होगा परन्तु गांव के पटवारी को किसी भी अवस्था में मन्त्री न बनाना चाहिये, क्योंकि पटवारी का गांव में बहुत प्रभाव होता है इस कारण सम्भव है कि वह पंचायत के अनुशासन में न रहे और सदस्य उससे दबते रहें। यदि गांवकी समितिमें कोई शिक्षित सदस्य हो तो उसको मन्त्री बनाया जाना चाहिये परन्तु यदि कोई सदस्य न मिले तो गांव के शिक्षक को मन्त्री बनाना चाहिये।

यह तो पूर्व ही कहा जा चुका है कि सहकारी साख समितियों की स्थापना लाभ की दृष्टि से नहीं की जाती, इसी कारण अपरिमित उत्तर दायित्व वाली समितियों में तो लाभ बांटा ही नहीं जाता, और यदि बांटा भी जाताहै तो प्रान्तीय सरकार की आज्ञा लेकर। परिमित दायित्व वाली समितियां लाभ बांट तो सकतीं हैं परन्तु उनको भी यथेष्ट धन रक्षित कोष में जमा करना पड़ता है।

सहकारी साख समितियों का प्रबंध व्यय बहुत कम होने के कारण तथा लाभ न बांटने के कारण रक्षित कोष यथेष्ट जमा हो जाता है। प्रत्येक साख समिति के लिये रक्षित कोष अत्यन्त आवश्यक है। जब तक कि समिति के पास यथेष्ट कोष न हो जावे तब तक वह सबल नहीं बन सकती। रक्षित कोष किसी भी अवस्था में बांटा नहीं जासकता; उसका उपयोग समिति के कार्य में हानि होने पर उसे पूरा करने में होता है, यदि किसी देनदार से रुपया वसूल नहीं हुआ अथवा किसी वस्तु के बेचने

में हानि हो गई तो रक्षित कोष से उसको पूरा किया जाता है। यदि समिति भंग हो जावे तो भी या तो रक्षित कोष किसी अन्य सहकारी समिति को दे दिया जावेगा, या रजिस्ट्रार की अनुमति से किसी सार्वजनिक कार्य में व्यय कर दिया जावेगा। साधारणतया परिमित दायित्व वाली समितियां अपने रक्षित कोष को अपने व्यापार में न लगाकर बाहर किसी बैंक में रखती हैं किन्तु ऐसा वे ही समितियां करती हैं जो कि ग़ैर सदस्यों का रुपया भी जमा करती हैं। किन्तु अपरिमित दायित्व वाली समितियां रक्षित कोष के धन को अपने निजी कार्य में लगाती हैं; बाहर जमा नहीं करतीं।

यह तो पूर्व ही कहा जाचुका है कि कृषि साख सहकारी समितियां अपरिमित दायित्व वाली होती हैं और नगर साख समितियां, तथा जिन समितियों के अधिकतर सदस्य किसान नहीं होते वे चाहें परिमित चाहे अपरिमित दायित्व स्वीकार कर सकती हैं। किन्तु जिन सहकारी समितियों की सदस्य अन्य समितियां हों उनका दायित्व परिमित ही होगा। ऐसी समितियां प्रान्तीय सरकार से आज्ञा लेकर ही अपरिमित दायित्व वाली बन सकती हैं। भारतवर्ष में सब सैन्ट्रल बैंक, बैंकिंग यूनियन, तथा अधिकतर नगर सहकारी, तथा वैसी साख समितियां जिनमें, अधिकतर किसान सदस्य नहीं होते, परिमित दायित्व वाली होती हैं, तथा किसानों की साख समितियां अपरिमित दायित्व वाली होती हैं।

यदि किसी समिति को हानि होजावे तो सर्व प्रथम उस

सदस्य से रुपया वसूल किया जावेगा जिसने कि ऋण लिया है। यदि उससे वसूल न हुआ तो जमानत देने वाले से वसूल किया जावेगा। यदि उससे भी वसूल न हुआ तो रक्षित कोष से हानि भरदी जावेगी। यदि उससे भी हानि पूरी न हुई तो समिति की पूँजी का उपयाग किया जावेगा, यदि समिति की पूँजी देकर भी हानि पूरी न होसके तो समिति के सदस्यों को समिति के देनदारों को रुपया चुकाना होगा। प्रत्येक सदस्य को कितना रुपया देना होगा,लिक्टीडेटर इसका हिसाब लगाकर उनसे उतना रुपया वसूल कर लेगा। व्यवहारिक दृष्टि से अपरिमित दायित्व का यही अर्थ निकलता है, किन्तु सिद्धांतरूप से प्रत्येक सदस्य व्यक्तिगत रूप से सारे ऋण को चुकाने को बाध्य है। किन्तु यह उसी दशा में हो सकता है कि जब और सदस्यों से रुपया वसूल न होसके।

साधारण सभा अपनी मीटिंग में समिति की साख निर्धारित करती है उससे अधिक पंचायत ऋण नहीं ले सकती।

समिति की साख को निर्धारित करने के लिये यह आवश्यक है कि समिति के सदस्यों की सम्पत्ति का हिसाब लगाया जावे। भारतवर्ष के भिन्न भिन्न प्रान्तों में समिति के सब सदस्यों की सम्पत्ति की एक चौथियाई से आधी तक साख निर्धारित की जाती है। समिति एक हैसियत रजिस्टर रखती है जिसमें प्रत्येक सदस्य की हैसियत का लेखा रहता है। हैसियत रजिस्टर का प्रति वर्ष संशोधन होता है और प्रत्येक सदस्य की हैसियत का यथार्थ लेखा रखने का प्रयत्न किया जाता है।

इसके अतिरिक्त यह भी निश्चित कर दिया जाता है कि प्रत्येक सदस्य अधिक से अधिक कितना उधार ले सकता है । किसी अवस्था में भी सदस्य की सम्पत्ति का ५० प्रति शत से अधिक उधार नहीं दिया जासकता । रुपया उधार देते समय पंचायत क़र्ज़ा लेने का उद्देश्य तथा सदस्य की चुकाने की शक्ति का अनुमान लगा कर ही क़र्जा देना निश्चय करती है ।

सहकारिता आन्दोलन का सिद्धांत है कि ऋण अनुत्पादक कार्यों के लिये अथवा व्यर्थ--कार्यों के लिये न दिया जावे । किन्तु भारतवर्ष में सहकारी साख समितियां विवाह, श्राद्ध, तथा अन्य सामाजिक कार्यों के लिये भी उधार देती हैं, पंचायत का यह मुख्य कर्तव्य है कि वह इस बात की जांच करे कि सदस्य क़र्ज्ज किस कार्य के लिये लेरहा है। साथ ही पंचायत को इस बात का भी पता लगाना चाहिये कि सदस्य ने उसी कार्य में धन व्यय किया है कि जिसके लिये कर्ज्ज दिया गया था, अथवा किसी अन्य कार्य में । यदि सदस्य ने किसी काम में रुपया लगाया है तो पंचायत को रुपया वापिस ले लेना चाहिये ।

सहकारी साख समिति के सदस्यों को एक दूसरे पर दृष्टि रखनी चाहिये कि वे धन का दुरुपयोग तो नहीं करते, समय पर कर्ज्ज चुकाते हैं, अथवा किश्तों को टालने का प्रयत्न करते हैं ।

पंचायत ऋण देते समय ही सदस्य की स्थिति को दृष्टि में रखते हुए किश्तें बांध देती है क्यों कि सदस्यों को किश्तों के

द्वारा ऋण चुकाने में सुविधा होती है। पंचायत का यह मुख्य कर्तव्य है कि वह देखे कि सदस्य समय पर किश्तें चुकाता है। किन्तु किसी अनिवार्य कारण वश यदि वह किश्त न चुका सके (जैसे फ़सल नष्ट हो जाना) तो किश्त की मियाद बढ़ा देना चाहिये और सदस्य पर दवाव नहीं डालना चाहिये।

अधिकतर नीचे लिखे कार्यों के लिये समितियां ऋण देती हैं।

(१) खेती-बारी के लिये,मालगुज़ारी तथा लगान देने के लिये।
(२) भूमि का सुधार करने के लिये।
(३) पुराने ऋण को चुकाने के लिये।
(४) गृहस्थी के कार्यों के लिये।
(५) व्यापार के लिये।
(६) भूमि ख़रीदने के लिये।

जो आंकड़े सहकारी विभाग से हम को प्राप्त होते हैं उन से यह कहना अत्यन्त कठिन है कि किन कार्यों के लिये कितना रुपया लिया जाता है। सदस्य प्रार्थना पत्र में तो खेती बारी के लिये रुपया लेने की बात लिखता है और उस रुपये को व्यय करता है किसी सामाजिक कार्य पर। समितियों ने अभी तक इस ओर विशेष ध्यान ही नहीं दिया है।

समय की दृष्टि से दो प्रकार के ऋण होते हैं, अर्थात् थोड़े समय के लिये तथा अधिक समय के लिये। थोड़े समय के लिये

जो ऋण लिया जाता है, उसका उपयोग खेती-बारी के धंधे में (अर्थात् बीज, खाद, बैल, हल आदि वस्तुओं के खरीदने में) तथा अन्य आवश्यक खर्चों में होता है। अधिक समय के लिये लिया हुआ ऋण, भूमि खरीदने मूल्यवान यन्त्र लेने, तथा पुराना कर्ज़ा चुकाने के काम आता है। प्रान्तीय बैंकिंग इन-कायरी कमेटियों की यह सम्मति है कि कृषि सहकारी साख समितियां अपने सदस्यों को तीन वर्षों से अधिक ऋण नहीं दे सकतीं। लम्बे समय के लिये ऋण देने का कार्य सहकारी भूमि बंधक बैंक ही कर सकते हैं। सहकारिता आन्दोलन में कार्य करने वालों की भी यही धारणा है कि सहकारी कृषि साख समितियां अधिक समय के लिये ऋण देने का कार्य नहीं कर सकतीं।

सहकारी कृषि साख समिति की सफलता के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि सदस्य सहकारिता के सिद्धान्तों को समझें। अस्तु समिति का संगठन करते समय उन्हें सहकारिता के सिद्धान्तों की शिक्षा देनी चाहिये। भारतवर्ष में अभी तक ग्रामीण सदस्य यह समझता है कि सहकारी साख समितियां सरकार द्वारा खोले हुये बैंक हैं जो हम लोगों को ऋण देते हैं। वे कभी स्वप्न में भी यह नहीं सोचते कि यह हमारी ही समिति है और हम अपरिमित दायित्व के द्वारा उचित सूद पर पूँजी पा सकते हैं। जब तक स्वावलंबन का यह भाव सदस्यों में जागृत नहीं होता तब तक सहकारिता आन्दोलन सफल नहीं हो सकता। इस कमी के ही कारण साख आन्दोलन अभी तक सफल नहीं हो सका।

समितियों का आय व्यय निरीक्षण रजिस्ट्रार की अधीनता में होता है। रजिस्ट्रार या तो सहकारी विभाग के आय-व्यय निरीक्षकों से जांच कराता है और यदि आय-व्यय निरीक्षक का कार्य किसी ग़ैर-सरकारी संस्था को दे दिया गया हो तो रजिस्ट्रार उस संस्था के आडिटरों को लायसैंस देता है तभी वह आय व्यय निरीक्षण का कार्य कर सकते हैं।

आडिटर समिति के आय व्यय की जांच तो करता ही है साथ ही वह इस बात की भी जांच करता है कि कितना रुपया सदस्यों पर उधार है जिसके चुकाने की अवधि समाप्त होगई किन्तु चुकाया नहीं गया। इसके अतिरिक्त वह समिति की लेनी देनी का भी हिसाब देखता है। आय व्यय निरीक्षक का कर्तव्य केवल आय-व्यय देखना ही नहीं है किन्तु उसको यह भी देखना चाहिये कि समिति का कार्य सहकारिता के सिद्धान्तों के अनुसार हो रहा है अथवा नहीं। आय व्यय निरीक्षक को समिति की आर्थिक स्थिति की पूरी जांच करना चाहिये। उसे देखना चाहिये कि ऋण उचित समय के लिये तथा उचित कार्यों के लिये दिये गये हैं, तथा आवश्यक ज़मानत ली गई है अथवा नहीं। इसके अतिरिक्त उसे यह भी देखना चाहिये कि सदस्य ठीक समय पर ऋण चुकाते हैं कि नहीं। कहीं ऐसा तो नहीं होता कि सदस्य ठीक समय पर न चुकाते हों किन्तु हिसाब में उनका रुपया जमा कर लिया जाता हो और उतना ही ऋण फिर दे दिया जाता हो। कहने का तात्पर्य यह है कि निरीक्षक को पूरी जांच करना चाहिये।

भारतवर्ष में आय व्यय निरीक्षण का कार्य भली भांति नहीं हो रहा है। सहकारिता आन्दोलन में कार्य करने वालों, तथा सैन्ट्रल बैंकिंग इनकायरी कमेटी की यह राय है कि आय व्यय निरीक्षण का कार्य अत्यन्त त्रुटि पूर्ण है।

यद्यपि प्रत्येक प्रान्त में आय व्यय निरीक्षण का कार्य रजिस्ट्रार की देख रेख में होता है परन्तु प्रत्येक प्रान्त में भिन्न भिन्न संस्थायें इस कार्य को कर रही हैं। पंजाब में प्रांतीय सहकारी इन्स्टिट्यूट के कर्मचारी तथा बिहार उड़ीसा में प्रान्तीय फ़ैडेरेशन के कर्मचारी रजिस्ट्रार की देख रेख में यह कार्य करते हैं। कुछ प्रान्तों में रजिस्ट्रार के कर्मचारी आय व्यय निरीक्षण का कार्य करते हैं, तथा कुछ स्थानों में समितियों ने आय व्यय-निरीक्षक यूनियन स्थापित की हैं जो इस कार्य को करती हैं।

अप्रैल १९३१ में आल इण्डिया कोआपरेटिव कानफ्रैंस का अधिवेशन हैदराबाद में हुआ था। उस सम्मेलन में समस्त भारत में आय व्यय निरीक्षण की एक ही पद्धति चलाने का निश्चय हुआ और और उसके अनुसार एक योजना भी तैयार की गई।

उस योजना के अनुसार समितियों का निरीक्षण कार्य सैन्ट्रल बैंक, तथा बैंकिंग यूनियन के हाथ में ही रहना चाहिये। आय-व्यय निरीक्षण प्रान्तीय संस्थाओं के हाथ में रहना चाहिये। प्रान्तीय संस्था प्रत्येक ज़िले में ज़िला आडिट यूनियन स्थापित करे उस ज़िले की सहकारी समितियां तथा सैन्ट्रल बैंक उस

आडिट यूनियन से सम्बन्धित हों, तथा सब जिला यूनियन प्रान्तीय संस्था से सम्बन्धित हों । प्रान्तीय इन्स्टिट्यूट तथा जिला आडिट यूनियन के कर्मचारियों की नियुक्ति तथा अनुशासन प्रान्तीय इन्स्टिट्यूट करे ।

प्रारम्भिक सहकारी समतियों का आय व्यय निरीक्षण जिला आडिट यूनियन के आडिटर करें, और सैन्ट्रल बैंक तथा प्रान्तीय बैंकों का आय व्यय निरीक्षण प्रान्तीय इन्स्टिट्यूट के आडिटर करें ।

प्रान्तीय इन्स्टिट्यूट तथा जिला आडिट यूनियन के आडिटर वही लोग नियत किये जावेंगे कि जिन्होंने इस कार्य की शिक्षा पाई है और जिनको रजिस्ट्रार ने लायसैंस दे दिया है । यदि कोई आडिटर इस कार्य के योग्य न हो तो रजिस्ट्रार उसका लायसैन्स जब्त करसकता है । इसके अतिरिक्त रजिस्ट्रार आडिट यूनियन तथा प्रान्तीय इन्स्टिट्यूट के कार्य में हस्तक्षेप नहीं कर सकता ।

प्रान्तीय इंस्टिट्यूट नगर बैंक तथा सेंट्रल बैंकों से आडिट फ़ीस वसूल करेगी, किन्तु कृषि सहकारी साख समितियों का आय व्यय निरीक्षण निश्शुल्क होना चाहिये इस कारण प्रान्तीय सरकार प्रान्तीय इन्स्टिट्यूट को आर्थिक सहायता प्रदान करें। अभी तक प्रारम्भिक समितियों से थोड़ी आडिट फ़ीस ली जाती है ।

समितियों की देख रेख तथा उनका नियन्त्रण रजिस्ट्रार तथा प्रान्तीय सहकारी संस्था दोनों ही करते हैं।

सहकारी साख समितियां अपने कार्य में सफल हो रहीं हैं अथवा नहीं इसमें कुछ मतभेद हो सकता है किन्तु इसमें संदेह नहीं कि वे अभी वहुत निर्बल हैं और वे वास्तव में सहकारी नहीं हैं। इम्पीरियल बैंक के मैनेजिंग गवर्नर ने सैंट्रल बैंकिंग इनकायरी कमेटी के सामने गवाही देते हुए कहा था "इन समितियों में सहकारिता के सिद्धान्तों की नितान्त अवहेलना की जाती है। ऋण ठीक समय पर कभी नहीं चुकाये जाते, आय व्यय निरीक्षण ठीक नहीं होता, तथा इन समितियों की देख भाल भी उचित रीति से नहीं होती"। इसमें कोई संदेह नहीं कि ऊपर लिखे हुये दोष इन समितियों में अवश्य हैं। इम्पीरियल बैंक के मैनेजिंग गवर्नर का तो यहां तक कहना है कि अधिकतर सहकारी समितियों की आर्थिक दशा अच्छी नहीं है, किन्तु जो लोग इस आन्दोलन को चला रहे हैं उनका कहना है कि यह कथन सत्य नहीं है। शाही कृषि कमीशन की सम्मति है कि आन्दोलन की आर्थिक स्थित अच्छी है, हां समितियों का कार्य दोष पूर्ण है।

सहकारी साख समितियों की संख्या देश के विस्तार तथा जन संख्या को देखते हुए बहुत कम है, किन्तु फिर भी साख समितियों का लाभकारी प्रभाव हमें दृष्टिगोचर होता है। समितियों ने क्रमशः बहुत राशि में कार्यशील पूँजी जमा करली है और वह पूँजी उचित सूद पर किसानों को दीजाती है और जहां

साख समितियां अधिक संख्या में खुलगई हैं, वहां सूद की दर महाजनों ने भी घटादी है। आशा है कि वहां भविष्य में किसान को साहूकार के चँगुल से बचाया जासकेगा। साधारण किसानों में सहकारिता का ज्ञान बढ़ रहा है। सदस्यों में मित-व्ययिता का भाव जागृत होरहा है, तथा उनको व्यापार सम्बन्धी शिक्षा मिल रही है। यदि प्रत्येक गांव में एक सहकारी साख समिति की स्थापना हो जावे और वह सफलता पूर्वक कार्य करने लगे तो ग्रामीण जनता का उद्धार हो सकता है।

भारतवर्ष में कृषि सहकारी समितियों का ही प्रधान्य है। १९३० के जून मास के अन्त में देश में ९४,५०० सहकारी साख समितियां थीं। जिनमें से ७४५०० सहकारी साख समितियां थीं। १९३०-३१ में भारतवर्ष के अन्तरगत सब प्रकार की सहकारी समितियों की संख्या केवल १,०६,१६६ थी।

१९३०-३१ में भिन्न भिन्न समितियों की संख्या इस प्रकार थी-

सैन्ट्रल बैंक, बैंकिंग यूनियन, तथा प्रान्तीय बैंक	६०७
सुपरवायज़िंग तथा गारंटी यूनियन	१२५६
कृषि तथा पशु बीमा समितियां	९३,७७३
ग़ैर कृषि समितियां	१०,५३०

कृषि सहकारी साख समितियों की पूँजी अब थोड़ी नहीं है। ३० जून १९३१ में इनकी कार्यशील पूँजी ३६ करोड़ रुपये के

लगभग थी और अब इससे अधिक है। ३० जून १९३१ को कृषि सहकारी साख समितियां की कार्यशील पूँजी इस प्रकार थी।

हिस्सों की पूँजी	रु० ४,३६,६०,०००
रक्षित कोष	६,५३,६३,०००
डिपाज़िट	३,२६,३१,०००
ऋण	२१,७३,७०,०००
कुल जोड़	३५,९३,५३,०००

भारतवर्ष में ग्रामीण ऋण की समस्या इतनी भयंकर है कि प्रारम्भ में सहकारी विभाग की दृष्टि केवल साख समितियों पर ही रही और इस समय भी अधिकतर उनकी ओर ही अधिक ध्यान दिया जाता है। किन्तु जो लोग इस आन्दोलन में लगे हुए हैं उनका कहना है कि यही आन्दोलन की निर्बलता है। जब तक कि साख समितियों के अतिरिक्त क्रय-विक्रय समितियां स्थापित करके किसान को सहायता न दीजावेगी तब तक उसकी आर्थिक स्थिति संभल न सकेगी।

छटा परिच्छेद

नगर सहकारी साख समितियां

शहरों की जनसंख्या आर्थिक दृष्टि से तीन विभागों में बांटी जासकती है। (१) उत्पादन कार्यों में लगे हुए मनुष्य, (२) व्यापारी अर्थात् दलाल (३) उपभोक्ता समुदाय। वैसे तो प्रत्येक मनुष्य उपभोक्ता है किन्तु सहकारिता के द्वारा अपनी स्थिति को सुधारने का प्रयत्न केवल श्रमजीवी समुदाय तथा नियमित वेतन पाने वाले मध्यम श्रेणी के मनुष्य ही करते हैं। इस कारण हम इन्हें ही उपभोक्ता वर्ग में रखते हैं। उत्पादक वर्ग में अनन्त धन राशि के स्वामी मिल मालिकों से लेकर छोटे से छोटे जुलाहे अथवा अन्य कारीगर सभी आते जाते हैं। पूँजी पतियों को साख देने का कार्य सहकारी साख समितियां नहीं कर सकतीं। उनके लिये व्यापारिक बैंक मौजूद हैं। सहकारिता आन्दोलन तो केवल निर्बल तथा निर्धनों को ही सहायता पहुंचा सकता है। हां, गृह उद्योग धन्धों में लगे हुए कारीगरों को सहकारी साख समितियां अवश्य सहायता पहुंचा सकती हैं। व्यापारी वर्ग में छोटे बड़े सभी व्यापारी आजाते हैं। बड़े बड़े व्यापारियों को सहकारिता आन्दोलन कोई सहायता करही नहीं सकता। छोटे बड़े व्यापारियों के लिये भी व्यापारिक बैंक खुले हुए हैं तथा वे अधिक निर्बल नहीं हैं। अस्तु, सहकारिता आन्दोलन व्यापारियों के लिये नहीं है। यदि वह थोड़ी बहुत सहायता कर सकता है तो केवल छोटे छोटे निर्धन व्यापारियों की।

साधारणतः उपभोक्ताओं को साख की आवश्यकता न होनी चाहिये क्योंकि वह तो अन्तिम ख़रीदार होता है। वह किसी भी वस्तु को बेचने के लिये नहीं ख़रीदता वह तो वस्तु का उपभोग करता है, इस कारण उसको नक़द दाम ही चुकाना चाहिये। उपभोक्ता अपनी आय से अधिक व्यय नहीं करसकता। यदि उपभोक्ता उधार मांगता है तो इसका अर्थ है कि वह आय से अधिक व्यय कर रहा है। ऐसी अवस्था में वह क़र्ज़ को नहीं चुका सकेगा। अस्तु साधारणतः उपभोक्ताओं को उधार देना जोखिम का काम है। किन्तु किसी किसी अवस्था में उपभोक्ताओं को भी उधार की आवश्यकता पड़ जाती है। मान लीजिये किसी मनुष्य के पास यथेष्ट सम्पत्ति अथवा धन है किन्तु वह धन कहीं लगा हुआ है, उस समय नहीं मिल सकता; किन्तु ठीक ऐसे समय ही उसको किसी आवश्यक कार्य के लिये रुपये की आवश्यकता है। ऐसे समय में उसे क़र्ज़ा के सिवा कोई चारा नहीं रहता। किन्तु कुछ लोग ऐसे भी होसकते हैं कि जिनके पास न तो सम्पत्ति ही है और न उन्होंने कुछ बचाया ही है परंतु उन्हें क़र्ज़ा की आवश्यकता पड़ती है। नौकरी छूट जाने पर तथा घर में लम्बी बीमारी हो जाने के कारण उन्हें क़र्ज़ा लेना पड़ता है, किन्तु इन लोगों के पास ज़मानत कुछ नहीं होती। व्यापारिक बैंक तो थोड़ा ऋण देते ही नहीं फिर बिना ज़मानत के तो वह कदापि ऋण नहीं देसकते। ऐसे लोगों के लिये नगर सहकारी बैंक आवश्यक हैं। नगर सहकारी बैंक मज़दूरी पाने वालों तथा थोड़ा

वेतन पाने वालों को महाजन के पंजों से बचाते हैं, नहीं तो यह निर्धन मजदूर तथा थोड़ा वेतन पाने वाले अवश्य ही उनके जाल में फंसते हैं। इसके अतिरिक्त यह बैंक मजदूरों तथा साधारण स्थिति के लोगों में मितव्ययिता का भाव जागृत करते हैं और उन की थोड़ीसी बचत को जमा करते हैं। आड़े समय पर यह बैंक निर्धन मजदूरों को सहायता पहुँचा सकते हैं। मिश्रित पूँजी वाले बैंक इन लोगों की समस्या को हल नहीं कर सकते।

नगर सहकारी साख समितियां तीन प्रकार की होती हैं। (१) वेतन पाने वालों की समितियां (२) मिल मजदूरों की समितियां (३) जातीय समितियां।

भिन्न भिन्न दफ्तरों तथा कारखानों में कार्य करने वाले वेतन भोगी कर्मचारियों की समितियां पृथक होती हैं। इस प्रकार की साख समितियां अधिकतर सफल हो जाती हैं। उसका कारण यह होता है कि सदस्यगण शिक्षित होते हैं तथा उनमें नियमों के पालन करने का जो अभ्यास होता है उसके कारण समिति का कार्य सुचारु रूप से चलता है। इसके अतिरिक्त यदि उस दफ्तर के प्रधान आफ़ीसर की भी सहनिभूति साख समिति को मिल जावे तो फिर कहना ही क्या है। दिये हुए ऋण को वसूल करने में प्रधान आफ़ीसर की सहानिभूति बहुत लाभदायक सिद्ध होती है। सहकारी साख समिति को प्रत्येक मास में सदस्यों को वेतन मिलने पर कुछ न कुछ जमा करने के लिये उत्साहित करना चाहिये जससे कि उनमें मितव्ययिता का भाव जागृत हो।

मिल मज़दूरों की सहकारी साख समितियां भी ऊपर लिखी जैसी ही होती हैं। केवल अंतर इतना ही है कि इनके सदस्य अशिक्षित होते हैं तथा वे ऋण भी थोडा लेते हैं। ऐसी साख समितियों के लिये मिल मालिकों की सहानिभूति लाभदायक सिद्ध होती है। कुछ विद्वानों का कथन है कि मिल मालिको के द्वारा सदस्यों को दिया हुआ ऋण वसूल किया जावे, किन्तु लेखक का मत इसके विरुद्ध है। यदि मिल मालिक मज़दूर के वेतन में से काट कर ऋण चुकावेंगे तो मज़दूर समिति को मिल मालिक का बैंक समझेगा, और इस प्रकार मज़दूर कभी भी सहकारिता आन्दोलन को न समझ सकेगा। अस्तु, जहां तक हो ऋण वसूल करने में मिल मालकों की सहायता न ली जावे। फिर भी मिल मालिकों की सहानुभूति अत्यन्त आवश्यक है। मिल मज़दूरों की सहकारी साख समितियों के निरीक्षण की अत्यन्त आवश्यकता है। बिना उचित निरीक्षण तथा देख भाल के उनका सफल होना कठिन होता है। इस लिये जो पूँजीपति अपने मज़दूरों की आर्थिक स्थिति को सुधारना चाहते हों वे एक सुपरवायज़र नियुक्त करदें जो उन मिलों के मज़दूरों की साख समितियों की देख भाल करता रहे। बम्बई तथा अन्य औद्योगिक केन्द्रों के कुछ विवेकशील मिल मालिकों ने अपने मज़दूरों के हितार्थ साख समितियां स्थापित की हैं। किन्तु मिल मज़दूरों को साख से भी अधिक सहकारी स्टोर्स की आवश्यकता है, जिससे कि वे अपने दैनिक जीवन की वस्तुएं उचित मूल्य पर खरीद सकें। इसके अतिरिक्त

सहकारी गृह निर्माण तथा सहकारी श्रम समितियां भी मज़दूरों के लिये उपयोगी होंगी।

जातीय सहकारी साख समितियां भी भारतवर्ष में स्थापित की गई हैं किन्तु वे अधिक सफलता प्राप्त न कर सकीं। कारण यह है कि जातीय सहकारी साख समितियों में प्रारम्भ में बहुत जोश होता है, किन्तु आगे चल कर जोश ठंडा पड़ जाता है और कार्यकर्त्ता शिथिल हो जाते हैं। ऋण देते समय इस बात का ध्यान नहीं रखा जाता कि ऋण कितना दिया जावे क्योंकि जाति भाई से कठोरता का बर्ताव नहीं किया जा सकता, न उससे वसूल करने में ही कड़ाई की जा सकती है। यद्यपि जातीय समितियों में ऊपर लिखे दोष होते हैं फिर भी कुछ समितियां अपनी जातियों की अच्छी सेवा कर रही हैं।

इनके अतिरिक्त नगरों में गृह उद्योग धन्धों में लगे हुए कारीगरों को भी साख की आवश्यकता होती है। किन्तु कारीगरों को भी मिश्रित पूँजी वाले बैंक उधार नहीं देते। कारण यह है कि एक तो कारीगरों को थोड़ी पूँजी की आवश्यकता होती है जो कि बैंकों के लिये लाभदायक नहीं होती दूसरे कारीगरों के पास कोई ज़मानत भी नहीं होती। बिना ज़मानत के बैंक किसी को भी ऋण नहीं देते। इस कारण बेचारे कारीगर उन थोक व्यापारियों के चंगुल में फँस जाते हैं जो कि उनके तैयार माल का व्यापार करते हैं। यह व्यापारी या तो कारीगरों को कच्चा माल उधार दे देते हैं अथवा उन्हें कच्चा माल लेने के लिये रुपया उधार दे देते हैं।

शर्त यह होती है कि उन्हें तैयार माल उसी व्यापारी के हाथ बेचना होगा। फल यह होता है कि निर्धन कारीगर व्यापारी का चिर दास बन जाता है और व्यापारी के लिये माल तैयार करता रहता है। व्यापारी उसको कम से कम मज़दूरी देता है, और इस प्रकार व्यापारी कारीगर का शोषण करता है। कारीगर को इस प्रकार के शोषण से बचाने के लिये नगर सहकारी साख समितियों की अत्यन्त आवश्यकता है। इस प्रकार की साख समितियां प्रत्येक धंधे के लिये पृथक होंगी। जैसे जुलाहों के लिये बुनकर साख समिति की स्थापना की जावे और अन्य धंधे वालों के लिये पृथक पृथक साख समितियां चलाई जावें।

अभी तक इस देश में उत्पादक सहकारी साख समितियां अधिक संख्या में नहीं खोली गई और न इस आन्दोलन को अधिक सफलता ही मिली है। इसका कारण यह है कि साख समिति केवल पूँजी का प्रबंध करती है। कारीगर को कच्चे माल के लिये, उसी व्यापारी के शरण में जाना पड़ता है। अस्तु, जब तक समिति यह तीनों ही कार्य अपने हाथ में नहीं ले लेती, तब तक सफलता नहीं मिल सकती। कारीगर अपने धंधों में कुशल होता है किन्तु कच्चा माल खरीदने तथा तैयार माल बेचने की कला वह नहीं जानता। इस कारण समिति को यह सब कार्य अपने हाथ में ले लेना चाहिये।

नगरों में एक तीसरा समूह है, वह है व्यापार करने वालों का। व्यापारियों के लिये मिश्रित पूँजी वाले व्यापारिक बैंक हैं, किन्तु

नगरों तथा क़स्बों में छोटे छोटे खोंमचे वाले, दूकानदार, तथा छोटे व्यापारी भी होते हैं जिन्हें साख की आवश्यकता होती है । इन दूकानदारों के लिये पीपुल्स बैंक (लुञ्जती प्रणाली पर) स्थापित किए जाना चाहिये। भारतवर्ष में अभी तक बहुत थोड़े पीपुल्स बैंक स्थापित किये गये हैं।

पीपुल्स बैंक :—मिश्रित पूँजी वाले बैंक बड़े बड़े केन्द्रों में व्यापारियों की सुविधा के लिये अपनी शाखायें रखते हैं और वे निर्धन कारीगर तथा छोटे दूकानदारों को पूँजी नहीं देते। इस कारण तहसीलों क़स्बो तथा छोटे छोटे शहरों में इन लोगों के लिये पीपुल्स बैंक स्थापित करना अत्यन्त आवश्यक है।

पीपुल्स बैंक गृह उद्योग धन्धों को प्रोत्साहित करने के लिये कारीगरों को ऋण देते है, तथा गांव की पैदावार को मंडियों तक पहुँचाने का प्रयत्न करनेवालों को साख देते हैं। यद्यपि भारतवर्ष में इन बैंकों की अत्यन्त आवश्यकता है फिर भी अभी तक बहुत कम बैंक खोले जासके हैं। अन्य जो भी नगर सरकारी बैंक खोले गयेहैं वे या तो जातीय बैंक हैं अथवा किसी एक पेशे में लगे हुए लोगों के बैंक हैं। बम्बई तथा बंगाल में अवश्य कुछ ऐसे बैंक सफलता पूर्वक कार्य कर रहे हैं।

बम्बई प्रान्त में जिन सहकारी साख समितियों की कार्यशील पूँजी ५०००० रु० से अधिक होती है उन्हें नगर सहकारी बैंक कहते हैं। १९३८ में बम्बई प्रान्त में ७६ नगर सहकारी बैंक थे।

नगर सहकारो बैंक तथा व्यापारिक बैंक में अधिक भेद नहीं है। नगर सहकारी बैंकों में भी सेविंगस, चालू, तथा मुद्दई जमा होती हैं नगर सहकारी बैंक भी केवल सदस्यों को ही ऋण देते हैं। नगर सहकारी बैंक बिल तथा हुँडो को भुनाने का काम भी करते हैं। बंगाल तथा बम्बई के अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रान्त में नगर सहकारी बैंकों ने हुँडो का काम अभीतक प्रारम्भ नहीं किया है।

नगर सहकारो बैंक शुल्ज़ डैलिट्ज़ प्रणाली पर चलाये गये हैं। इन बैंकों की कार्यशील पूँजी, डिपाज़िट तथा हिस्सा पूँजी होती है, तथा दायित्व परिमित होता है। नगर सहकारी बैंक का संगठन कृषि साख समिति जैसा ही होता है, केवल यही भेद होता है कि नगर सहकारी बैंकों में २५ प्रति शत लाभ रक्षित कोष में रख कर बाक़ी का बांट दिया जाता है।

नगर सहकारी बैंक की सफलता के लिये यह आवश्यक है कि कर्मचारी बैंकिंग के कार्य में दक्ष हों, तथा बैंक के प्रबन्धकर्ता भी अनुभवी पुरुष हों। बम्बई के सहकारी नगर बैंकों की सफलता का कारण यह है कि वहां सर लल्लू भाई सांमलदास, तथा स्वर्गीय सर विट्ठलदास थैकरसे जैसे सुयोग्य और अनुभवी व्यवसायियों ने इनको सफल बनाने में सहयोग दिया था।

बम्बई तथा सिन्ध में कुछ जातीय बैंकों को भी अच्छी सफलता मिली है। इनमें शमरा विट्ठल सहकारी बैंक लिमिटेड का नाम उल्लेखनीय है। इस बैंक को सारस्वत ब्राह्मणों ने १९०६ में

स्थापित किया था । इस समय इस बैंक की कार्यशील पूँजी १८ लाख रुपये के लगभग है।

बम्बई में मिल मज़दूरों की भी सहकारी साख समितियां * हैं। नगर सहकारी बैंकों में एक दोष शीघ्र प्रवेश करजाता है। वे अपने मुख्य कर्तव्य अर्थात सदस्यों में मितव्ययिता के भाव का प्रचार न करके केवल सदस्यों को ऋण देने का कार्य करने लगते हैं। इस दोष की ओर अब ध्यान आकर्षित हुआ है और यह प्रयत्न किया जारहा है कि सदस्य बैंक में रुपया जमा भी करें।

नगर सहकारी बैंकों में ऋण लेने वाले को व्यक्तियों की ज़मानत देनी होती है। समिति का प्रबन्ध एक प्रबन्ध कारिणी समिति करती है। एक बात ध्यानमें रखने की है कि मिल मज़दूरों के बैंकों में यदि मिल मालिक का कोई भी प्रतिनिधि होता है, तो जो कुछ भी वह करता है वही होता है। साधारण सदस्य को ध्यान भी नहीं होता कि समिति उनकी है।

मदरास प्रान्त में एक हज़ार से अधिक नगर सहकारी साख समितियां हैं। १९३० में इनकी संख्या १,१४४ थी। पंजाब प्रान्तमें लगभग १ हज़ार ग़ैर कृषि सहकारी साख समितियां हैं। बिहार उड़ीसा तथा अन्य प्रान्तों में भी थोड़ीसी नगर साख सहकारी समितियां खुलगई हैं।

---

* इन्हें नगर सहकारी बैंक भी कहते हैं।

सातवां परिच्छेद

सैन्ट्रल बैंक तथा बैंकिंग यूनियन*

आरम्भ में जब रैफ़ीसन सहकारी साख समितियां भारतवर्ष में स्थापित की गईं तब यह आशा कीजाती थी कि योरोप की ही भांति यहां भी इन समितियों में ग्रामीण जनता रुपया जमा करेगी और उस रुपये से ऋण देने का काम चल जावेगा। कुछ लोगों का यह विचार था कि नगर सहकारी बैंक ग्रामीण समितियों के लिये भी रुपया इकट्ठा कर सकेंगे। इस कारण १६०४ के एक्ट के अनुसार केवल वे दो प्रकार की साख समितियां ही स्थापित की गईं। किन्तु यह आशा कि ग्रामीण जनता इन समितियों में रुपया जमा करेगी पूरी नहीं हुई। क्योंकि एक तो किसान ऋणी है दूसरे वह बैंक में रुपया रखने का अभ्यस्त नहीं है। प्रारम्भ में सहकारी समितियां संख्या में कम थीं इस कारण उनके लिये कार्यशील पूँजी इकट्ठी करने में अधिक कठिनाई प्रतीत नहीं हुई। समितियों में जो रुपया जमा होता था उसके अतिरिक्त रजिस्ट्रार, प्रान्तीय सरकार, तथा धनी व्यक्तियों से रुपया लेकर काम चलाते थे। इस प्रकार अधिक दिनों काम नहीं चल सकता था और इस कारण आरम्भ में आन्दोलन की गति बहुत धीमी रही।

अस्तु, यह आवश्यकता प्रतीत हुई कि ऐसे सहकारी बैंक

---

* ज़िला या ताल्लुक़े की साख समितियों को साख देने वाली संस्थाओं को सैन्ट्रल बैंक या बैंकिंग यूनियन कहते हैं।

खोले जावें जो कि नगरों में प्रारम्भिक सहकारी समितियों के लिये धन इकट्ठा करें। १६१२ में दूसरा एक्ट पास हुआ और उसके अनुसार सैन्ट्रल बैंक खोलने को सुविधा होगई। १६१० और १६१५ बीच में सब प्रकार की सहकारी समितियों की संख्या बहुत बढ़ गई तथा सैन्ट्रल बैंकों की भी स्थापना की गई। सन् १६१२ में द्वितीय सहकारिता एक्ट पास होजाने के उपरान्त संयुक्त प्रान्त, पंजाब, बङ्गाल, तथा मध्य प्रान्त में बहुत से सैन्ट्रल बैंकों की स्थापना हुई। १६१५ से १६२० तक सैन्ट्रल बैंकों का औसत ३०१ था और प्रारम्भिक सहकारी समितियों की संख्या २७,५३५, थी। १६२० से १६२५ तक सैन्ट्रल बैंकों की संख्या ५०० थी तथा समितियों की संख्या ५५,८६६ थी।

सैन्ट्रल बैंक तीन प्रकार के होते हैं। (१) ऐसे सैन्ट्रल बैंक जिनके सदस्य केवल व्यक्ति ही होते हैं। (२) दूसरे प्रकार सैन्ट्रल बैंक वह हैं जिनके सदस्य केवल समितियां हीं हो सकती हैं। (३) तीसरे प्रकार के बैंक वह हैं जिनके सदस्य व्यक्ति तथा समितियां दोनों ही होते हैं।

पहले प्रकार के बैंक केवल हिस्सेदारों के बैंक होते हैं जो कि सहकारिता के सिद्धांतों के विरुद्ध है इस कारण अब ऐसे बैंक नहीं रहे। दूसरे प्रकार के बैंक जिनके सदस्य केवल समितियां होती हैं आदर्श सहकारी सैन्ट्रल बैंक हैं। समितियां इन बैंकों की नीति को निर्धारित करती हैं तथा बैंक का प्रबन्ध भी उन्हीं के हाथ में रहता है। ऐसे बैंक को बैंकिंग यूनियन कहते हैं। इन बैंकिंग

यूनियनों का सम्बन्ध ग्रामीण समितियों से होता है, तथा ग्रामीण समितियां ही इनका प्रबन्ध करती हैं। इन बैंकिंग यूनियनों की सफलता के लिये यह आवश्यक है कि समितियों के सदस्य योग्य तथा प्रभावशाली व्यक्ति हों। यही कारण है कि बैंकिंग यूनियन संख्या में अधिक नहीं हैं। तीसरे प्रकार के सैन्ट्रल बैंक ही अधिक देखने में आते हैं। उत्तर भारत में बैंकिंग यूनियन संख्या में यथेष्ट हैं और दक्षिण भारत में बहुत कम।

सैन्ट्रल बैंक का क्षेत्र प्रत्येक प्रान्त में भिन्न होता है। उस क्षेत्र की सहकारी समितियां उसी बैंक से ऋण लेती हैं। दक्षिण तथा पश्चिमीय भाग में सैन्ट्रल बैंक का क्षेत्र एक ज़िला होता है, परन्तु उत्तर भारत में सैन्ट्रल बैंक का क्षेत्र तहसील होती है, इस कारण इन प्रांतों के सैंट्रल बैंकों से सम्बंधित समितियों की संख्या तथा पूँजी कम होती है।

साधारण सभा—सैन्ट्रल बैंक के हिस्सेदारों की सभा को साधारण सभा कहते हैं। साधारण सभा के सदस्यों को केवल एक वोट देने का ही अधिकार होता है। मिश्रित पूँजी वाली कम्पनियों की भांति जिसने अधिक हिस्से खरीदे हैं उसको एक से अधिक वोट देने का अधिकार नहीं है। साधारण सभा डायरैक्टरों का निर्वाचन करती है।

बोर्ड-आफ़-डायरैक्टर्स बैंक का प्रबन्ध करता है। साधारणतः सैन्ट्रल बैंक के डायरैक्टर संख्या में अधिक होते हैं क्योंकि बहुत

से स्वार्थों का प्रतिनिधित्व होना आवश्यक होता है। भिन्न भिन्न प्रान्तों में डायरैक्टरों की संख्या १० से २४ तक है। इससे यह कठिनाई तो अवश्य होती है कि पूरे बोर्ड को मीटिंग का आयोजन कठिन हो जाता है, इस कारण बोर्ड अपने सदस्यों में से कार्यकारिणी समितियों का निर्वाचन करता है जो बैंक का कार्य चलाती हैं। बैंक का दैनिक कार्य अवैतनिक मन्त्री, चेयरमैन, तथा कोई एक डायरैक्टर, मैनेजर की सलाह से करता है। डायरैक्टरों को फ़ीस अथवा वेतन कुछ नहीं मिलता है। कहीं कहीं डायरैक्टर समितियों की आवश्यकता को जानने के लिये समितियों का निरीक्षण करते हैं तथा रिपोर्ट करते हैं कि उनको कितना ऋण देना चाहिये। डायरैक्टर बदलते रहते हैं। चेयरमैन तथा मन्त्री व्यक्तियों में से चुने जाते हैं। उत्तरीय तथा पूर्वीय भारत में चेयरमैन कहीं कहीं सरकारी कर्मचारी होता है किन्तु अधिकतर वह ग़ैर सरकारी ही होता है। सैन्ट्रल बैंकों में व्यक्तियों के प्रतिनिधियों की बोर्ड में संख्या निश्चित करदी जाती है। अधिकतर डायरैक्टर समितियों के प्रतिनिधि ही होते हैं।

प्रत्येक बैंक एक मैनेजर नियुक्त करता है। मैनेजर प्रत्येक प्रान्त में एक ही कार्य नहीं करता। कुछ प्रान्तों में मैनेजर केवल बैंक के सुचार रूप से चलाने का ही ज़िम्मेदार नहीं होता वरन सम्बन्धित साख समितियों के लिये भी ज़िम्मेदार होता है। इस लिये उसको सैन्ट्रल बैंक के दौरा करने वाले कर्मचारियों को भी देख भाल करनी पड़ती है। अन्य प्रान्तों में मैनेजर केवल साख

समितियों के लिये ज़िम्मेदार होता है इस कारण वह केवल दौरा करता है और साख समितियों का निरीक्षण करता है, वह बैंक का प्रबन्ध नहीं करता। बहुत बड़े बैंकों में दो मैनेजर नियुक्त किए जाते हैं। जहां मैनेजर दौरे का काम करता है वहां अवैतनिक मन्त्री बैंक के कर्मचारियों की सहायता से बैंक का कार्य करता है। बैंक में मैनेजर के अतिरिक्त क्लर्क, तथा आय व्यय लेखक नियुक्त किये जाते हैं। अधिकतर बैंक अपने खज़ांची रखते हैं और रुपये का लेन देन स्वयं करते हैं। किन्तु कुछ बैंक अवैतनिक खज़ांची रखते है अथवा सरकारी खज़ाने तथा किसी अन्य बैंक में अपना रुपया रखते हैं।

सैंट्रल बैंक को कार्यशील पूँजी, हिस्सा पूँजी, रक्षित कोष, डिपाज़िट, तथा ऋण के द्वारा प्राप्त होती है।

बैंकिंग यूनियन में केवल समितियां ही हिस्से ख़रीद सकती हैं किंतु मिश्रित बैंकों में व्यक्ति भी हिस्से ख़रीद सकते हैं। साधारणतः सैन्ट्रल बैंकों के हिस्से ५० रु० से लेकर १०० रु० तक के होते हैं,किंतु कहीं कहीं १० से लेकर १००० रु० तक के हिस्से हैं। समितियां अपने ऋण के अनुपात में हिस्से लेती हैं। बम्बई, बर्मा देहली, कुर्ग, ग्वालियर, तथा इन्दौर में हिस्सों का मूल्य पूरा चुका दिया गया है परन्तु अन्य प्रान्तों तथा देशी राज्यों में हिस्सों का पूरा मूल्य नहीं चुकाया गया है। साधारण हिस्सेदारों का दायित्व हिस्से के मूल्य तक ही सीमित है किन्तु कुछ प्रान्तों में हिस्सेदारों

का दायित्व चार गुने से लेकर १० गुने तक है। १६१२ के एक्ट के अनुसार प्रत्येक परिमित-दायित्व वाली समिति को २५ प्रति शत लाभ रक्षित कोष में जमा करना होता है। सैन्ट्रल बैंक इस २५ प्रति शत के अतिरिक्त अन्य कार्यों के लिये विशेष रक्षित कोष जमा करते हैं।

हिस्सा पूँजी, तथा रक्षित कोष, बैंक की निजी पूँजी होती है और डिपाज़िट तथा ऋण, उधार ली हुई पूँजी होती है। भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त में निजी पूँजी तथा ऋण ली हुई पूँजी का अनुपात १ : ८ है।

सदस्यों तथा ग़ैर सदस्यों की डिपाज़िट ही कार्यशील पूँजी का बड़ा भाग होती है। सैन्ट्रल बैंकों में दो प्रकार की डिपाज़िट होती हैं, मुद्दती, तथा सेविंगस। अधिकतर सैंट्रल बैंक चालू खाता नहीं रखते। हां, कुछ बैंक कहीं कहीं चालू खाता भी रखते हैं, चालू खाता जोखिम का काम है उसके लिये संचालकों में यथेष्ट व्यापारिक कुशलता होनी चाहिये। इस कारण यह बैंक चालू खाता नहीं रखते। सैन्ट्रल बैंकों के पास पूँजी भी बहुत कम होती है इस कारण भी यह बैंक चालू खाता सफलता पूर्वक नहीं रख सकते। कहीं कहीं सेविंगस डिपाज़िट भी नहीं लीजाती किन्तु अधिकतर बैंक सेविंगस डिपाज़िट लेते हैं। इन बैंकों में अधिकतर मुद्दती जमा लीजाती है। सैन्ट्रल बैंक अधिकतर एक वर्ष के लिये डिपाज़िट लेते हैं। प्रत्येक प्रान्त में यही प्रथा प्रचलित है। केवल बिहार उड़ीसा में कुछ भेद है। वहां

चाहे जब रुपया जमा किया जावे किन्तु ३१ मई को प्रति वर्ष रुपया वापिस दे दिया जाता है। सैन्ट्रल बैंकमें अधिकतर नौकरी करने वाले, ज़मीदार, तथा संस्थायें ही रुपया जमा करती हैं।

डिपाज़िट के अतिरिक्त आवश्यकता पड़ने पर बैंक ऋणभी ले लेते हैं। सैन्ट्रल बैंक इम्पीरियल आदि दूसरे बैंको से,तथा प्रांतीय सरकार से ऋण लेते हैं। पंजाब के अतिरिक्त अन्य प्रान्तों में में सैन्ट्रल बैंक प्रान्तीय सरकार से सीधे ऋण नहीं लेते। किन्तु देशी राज्यों में सैन्ट्रल बैंक राज्य से ही ऋण लेते हैं केवल मैसूर में बैंक राज्य से ऋण नहीं लेते।

सैन्ट्रल बैंक सरकारी काग़ज़ तथा प्रारम्भिक सहकारी साख समितियों के प्रामिसिरी नोट की ज़मानत पर ऋण लेते हैं। किन्तु कुछ दिनों से इम्पीरियल बैंक ने प्रारम्भिक सहकारी समितियों के प्रामिसिरी नोट पर ऋण देना बन्द कर दिया है, और केवल सरकारी काग़ज़ पर ही ऋण देता है। सहकारिता आन्दोलन में कार्य करने वालों से इम्पीरियल बैंक के मैनेजिंग-गवर्नर ने सैन्ट्रल बैंकिंग इनकायरी कमेटी के सामने गवाही देते हुए कहा है कि सहकारी समितियों की आर्थिक दशा अत्यन्त शोचनीय है इस कारण उनके प्रामिसरी नोट पर बैंक ऋण नहीं दे सकता। अन्य मिश्रित पूँजी वाले बैंको से सैन्ट्रल बैंक ऋण नहीं लेते इस कारण अधिकतर यह प्रान्तीय सहकारी बैंको से ही ऋण लेते हैं। ब्रिटिश भारत में इस समय सात प्रान्तीय सहकारी बैंक हैं, संयुक्त प्रांत में अभी प्रांतीय बैंक की स्थापना ही

नहीं हुई* तथा बर्मा का प्रांतीय बैंक दिवालिया हो गया। इनके अतिरिक्त दो प्रान्तीय बैंक देशी राज्यों में भी हैं। जहां प्रान्तीय बैंक स्थापित हो चुके हैं वहां सैन्ट्रल बैंक, इम्पीरियल बैंक, अन्य मिश्रित पूँजी वाले व्यापारिक बैंको तथा दूसरे सैन्ट्रल बैंकों से सीधा सम्बन्ध नहीं रख सकते। किन्तु यह नियम मद्रास और पंजाब में कड़ाई के साथ उपयोग में नहीं लाया जाता। संयुक्त प्रान्त में एक सैन्ट्रल बैंक दूसरे सैन्ट्रल बैंक को रजिस्ट्रार की अनुमति लेकर ऋण दे सकता है।

सैन्ट्रल बैंक अधिकतर सहकारी साख समितियों तथा ग़ैर साख समितियों को ही ऋण देते हैं, पंजाब, मैसूर, ग्वालियर, तथा मद्रास में अब भी सैन्ट्रल बैंक व्यक्तियो को ऋण देते हैं, किन्तु यह रिवाज़ अब बन्द की जारही है। सहकारी समितियों के पास जमा करने के लिये अधिक पूँजी तो होती नहीं इस कारण बैंक समितियों को ऋण देने का ही कार्य अधिक करते हैं। १६२६ के अन्त में सैन्ट्रल बैंकों ने रु० २२,५४,६३,००० ऋण में दिया। इसका अधिक भाग साख समितियों को ही दिया गया।

सैन्ट्रल बैंक व्यक्तियों, विशेष प्रकार की समितियों, तथा कृषि सहकारी समितियों को, नोट अथवा बांड पर ऋण दे देते हैं। किन्तु व्यक्तियों और विशेष प्रकार की समिवियों से इसके अतिरिक्त कुछ जायदाद अथवा सम्पत्ति गिरवी रखवाई जाती है।

*इस समय संयुक्त प्रान्तीय सहकारी बैंक की स्थापना का प्रयत्न किया जा रहा है।

कृषि सहकारी समितियों के अपरिमित दायित्व के कारण उनका प्रो-नाट ही यथेष्ट ज़मानत समझी जाती है। जब सहकारी साख समिति किसी सदस्य के पुराने ऋण को चुकाने के लिये लम्बा ऋण लेती है तो प्रो--नोट के अतिरिक्त सैन्ट्रल बैंक उन काग़ज़ों को, जो सदस्य ने समिति को लिख दिये हैं, अपने नाम करवा लेता है।

यह जानने के लिये कि प्रत्येक सहकारी साख समिति को अधिक से अधिक कितना ऋण देना उचित होगा, सैन्ट्रल बैंक अपने से सम्बन्धित साख समितियों की साख का अनुमान लगाते हैं।

जो ऋण कि समितियों को दिया जाता है वह निश्चित वर्षों में वसूल कर लिया जाता है। कुछ प्रान्तों में कम और अधिक समय के लिये भी ऋण दिया जाता है, किन्तु कुछ प्रान्तों में केवल कम समय के लिये ही ऋण दिया जाता है। ऋण की स्वीकृति देने में बहुत सी क़ानूनी कार्यवाही करनी पड़ती है इस कारण ऋण मिलने में देर हो जाती है। इस दोष को दूर करने के लिये कुछ सैन्ट्रल बैंक एक रक़म निश्चित कर देते हैं जिस तक समितियों को बिना किसी देरी के ऋण दे दिया जाता है, अधिक के लिये नियमित कार्यवाही करनी पड़ती है। कुछ प्रान्तों में समितियों की सामान्य साख--निर्धारित करदी जाती है। समिति की सामान्य साख तय करने से पूर्व उसके सदस्यों की सामान्य साख का लेखा तैयार किया जाता है, जिसमें

सदस्यों की सम्पत्ति, उनकी आवश्यकता, उनकी आय, तथा उनको बचाने की शक्ति का ब्योरा रहता है। इस लेखे के आधार पर बैंक समिति की अधिकतम साख निश्चित कर देता है। अर्थात् यह निश्चित कर देता है कि इस रक़म तक ऋण दिया जा सकता है। हैसियत के अनुसार ही सदस्यों की सामान्य साख का लेखा प्रति वर्ष तैयार किया जाता है।

सैन्ट्रल बैंक भिन्न भिन्न प्रान्तों में भिन्न भिन्न समय के लिये ऋण देते हैं। फ़सल उत्पन्न करने के लिये जो ऋण लिया जाता है वह एक दो वर्षों के लिये होता है, और जो ऋण भूमि में सुधार करने के लिये, अथवा पुराने कर्ज़ों को अदा करने के लिये लिया जाता है, वह पांच से दस वर्ष के लिये दिया जाता है। पहिले लोगों की यह धारणा थी कि बैंक अधिक समय के लिये ऋण दिया करें। किन्तु अब प्रत्येक प्रांत में यह धारणा ज़ोर पकड़ रही है कि सैन्ट्रल बैंक यह कार्य नहीं कर सकते। इसके लिये भूमि बन्धक बैंक स्थापित करना चाहिये। किसी किसी प्रांत में सैन्ट्रल बैंक अधिक समय के लिये ऋण बिल्कुल नहीं देते

सैन्ट्रल बैंक अभी तक ८ से १२ प्रति शत सूद समितियों से लेते रहे हैं। हाल में जब कि बाज़ार में सूद की दर बहुत घटगई है तब कहीं इन बैंकों ने दर घटाई है। अब यह प्रयत्न किया जा रहा है कि सूद की दर और घटाई जावे। भारतीय सहकारिता आन्दोलन की सबसे बड़ी कमी यह है कि समितियां ऋण को

उचित समय पर नहीं दे पातीं और बहुत सा रुपया बाक़ी रह जाता है। इसका मुख्य कारण यह है कि सदस्य अशिक्षित हैं, सहकारिता के सिद्धान्तों का उन्हें ज्ञान नहीं है, और कभी फसल के नष्ट हो जाने के कारण भी वे क़र्ज़ को अदा नहीं कर पाते। यदि फ़सल के नष्ट हो जाने से समितियां अपना ऋण नहीं दे पातीं तो उन्हें अधिक समय दे दिया जाता है। जब कोई समिति अपना ऋण नहीं देती तो बैंक जहां तक हो सकता है रुपया वसूल करता है। यदि रुपया किसी भी प्रकार वसूल नहीं होता तब बैंक रजिस्ट्रार से समिति को तोड़ देने के लिये कहता है अथवा अदालत से डिगरी कराता है।

जब कि समितियां बैंक को ऋण का रुपया चुकाती हैं उस समय बैंक के पास आवश्यकता से अधिक रुपया जमा हो जाता है। यह स्थिति वर्ष में दो से चार महीने तक रहती है। इस समय बैंक प्रांतीय बैंकों में रुपया जमा कर देते हैं, जहां प्रांतीय बैंक नहीं हैं वहां रुपया इम्पीरियल बैंक में जमा कर दिया जाता है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक बैंक के पास कुछ रुपया स्थायी रूप से अधिक होता है जो समितियों को ऋण देने में नहीं लगाया जा सकता। यह कोष प्रांतीय बैंक में अधिक समय के लिये जमा कर दिया जाता है, अथवा ट्रस्टी सिक्यूरिटी में लगा दिया जाता है। इस समय सैन्ट्रल बैंकों की नीति यह है कि वह आवश्यकता से अधिक डिपाज़िट नहीं लेना चाहते इस कारण डिपाज़िट पर सूद की दर बहुत घटा दी गई है।

मैकलेगन कमेटी ने प्रत्येक सैन्ट्रल बैंक को कुछ नक़दी रखने की आवश्यकता बतलाई है क्योंकि किसी समय ऐसा सम्भव है कि डिपाज़िट निकाल ली जावें और लोग रुपया जमा न करें। ऐसे समय पर जमा करने वालों को उनका रुपया देसकने के लिये यह आवश्यक है कि प्रत्येक सैन्ट्रल बेंक कुछ न कुछ नक़दी अवश्य रखे। मैकलेगन कमेटी ने इस विषय में अपनी निम्न-लिखित सम्मति दी है।

जिन बैंकों में चालू खाता, तथा सेविंगस बैंक खाता दोनों ही हों उनमें चालू खाते की सारी रक़म तथा सेविंगस बैंक, खाते की ७५ प्रति शत रक़म नक़दी तथा ऐसी सिक्यूरिटी में रखनी चाहिये जो तुरन्त ही नक़दी में परिणित की जा सके। मुद्दती जमा के लिये कमेटी की यह राय है कि जो डिपाज़िट अगले बारह महीनों में देनी हो उसकी आधी रक़म नक़दी में रहे। किन्तु कहीं भी इस नियम के अनुसार कार्य नहीं होता प्रत्येक प्रान्त ने अपने नियम बना रखे हैं। अधिकतर नक़दी इससे कम ही रहती है।

सैन्ट्रल बैंक प्रति वर्ष वार्षिक लाभ का २५ प्रति शत रक्षित कोप में जमा करते हैं और शेप हिस्सेदारों में बांट दिया जा सकता है, किन्तु सैन्ट्रल बैंकों के उपनियमों में अधिक से अधिक लाभ की दर निश्चित करदी जाती है जिससे अधिक लाभ हिस्सेदारों में नहीं बांटा जा सकता।

सैन्ट्रल बैंक ६ प्रति शतसे १० प्रति शत तक लाभ बांटते हैं किन्तु अधिकतर प्रान्तों में ६ प्रति शत ही बांटा जाता है।

साधारण रक्षित कोष के अतिरिक्त कोई कोई सैन्ट्रल बैंक, इमारत, बट्टा खाता, तथा लाभ हानि सन्तुलन के लिये विशेष कोष जमा करते हैं। रक्षित कोष का रुपया या तो सिक्यूरिटी में या प्रान्तीय बैंक में लगा दिया जाता है, अथवा वह बैंक में ही रहता है और कार्यशील पूँजी की वृद्धि करता है।

सैन्ट्रल बैंकों की सूद की दर भिन्न भिन्न प्रान्तों में भिन्न है। किन्तु डिपाज़िट पर सूद की दर, तथा प्रारम्भिक समितियों से जो सूद लिया जाता है उसमें, २ से ५ प्रति शत का अन्तर रहता है। बिहार, उड़ीसा, संयुक्तप्रांत, मध्यप्रान्त, तथा ग्वालियर में यह अन्तर ४ से ५ प्रति शत तक होता है। किन्तु अन्य प्रान्तों में केवल दो या तीन प्रति शत है। जिन बैंकों का लेन देन कम होता है, उनका प्रबन्ध व्यय अपेक्षाकृति अधिक होने के कारण उन्हें मार्जिन अधिक रखना पड़ता है। कुछ प्रान्तों में विशेष प्रकार की लेंड टैन्योर होने के कारण रुपया अधिक मारा जाता है, इस कारण भी मार्जिन अधिक रखना पड़ता है।

सैन्ट्रल बैंक अपने से संबन्धित समितियों की देख भाल रखते हैं, तथा उन पर अपना नियन्त्रण भी रखते हैं। इस कार्य के लिये उन्हें कुछ कर्मचारी रखने पड़ते हैं। यह कर्मचारी ऋण के प्रार्थनापत्रों की जांच करते हैं और सम्पत्ति का लेखा तैयार करते हैं। जो समितियां अपने पुराने ऋणको चुकाने के लिये अधिक समय मांगती हैं उनके प्रार्थनापत्रों के विषय में भी जांच करते हैं, और समिति को सदस्यों से रुपया वसूल कराने में सहायक होते हैं।

कहीं कहीं ऐसी बुरी रिवाज़ पड़ गई है कि सैन्ट्रल बैंक के कर्मचारी ही सदस्यों से रुपया वसूल कर लेते हैं, ऐसी परिस्थिति में सदस्य समिति को कुछ नहीं समझता और समिति का कोई प्रभाव नहीं रहता। किसी किसी प्रांत में यह कर्मचारी समितियों का हिसाब रखते हैं, तथा वार्षिक सभा का आयोजन भी करते हैं। जहां नई समितियों की स्थापना करने के लिये सहकारी विभाग विशेष कर्मचारी नियुक्त नहीं करता वहां यह कर्मचारी नवीन समितियों की स्थापना भी करते हैं। इसके अतिरिक्त यह लोग सहकारिता संबंधी प्रचार कार्य भो करते हैं। किन्तु अब इनमें से कुछ कार्य प्रांतीय इंस्टिट्यूट करने लगी हैं। कुछ प्रान्तोंमें समितियोंकी देख भाल का कार्य सुपरवाइजिंग यूनियनस को दिया गया है।

सैन्ट्रल बैंकों का आय व्यय निरीक्षण सरकार द्वारा नियुक्त आय व्यय निरीक्षकों के द्वारा होता है। यह आय-व्यय निरीक्षक हिसाब की जांच के अतिरिक्त न वसूल हुए रुपये के विषय में भी जांच करते हैं तथा सैन्ट्रल बैंकों की आर्थिक स्थिति को भो देखते हैं। रजिस्ट्रार कुछ प्रश्न निश्चित करता है जिनका उत्तर तथा आय व्यय निरीक्षक की रिपोर्ट रजिस्ट्रार के पास जाती है।

सैन्ट्रल बैंक का निरीक्षण रजिस्ट्रार तथा सहकारी विभाग के कर्मचारी करते हैं। जहां प्रांतोय बैंक हैं, वहां प्रांतीय बैंक के मैनेजर तथा डायरैक्टर भी निरीक्षण करते हैं। किन्तु यह सर्वमान्य बात है कि सैन्ट्रल बैंकों का निरीक्षण उचित रूप से नहीं होता है, क्योंकि रजिस्ट्रार तथा उनके कर्मचारी कुछ ही बैंकों का

निरीक्षण कर पाते हैं। प्रत्येक बैंक वार्षिक बैलेंस शीट तैयार करके उसको आय-व्यय निरीक्षक की रिपोर्ट के सहित रजिस्ट्रार तथा हिस्सेदारोंके पास भेजताहै। बैलेंस शीट (लेनी देनीका लेखा) के अतिरिक्त प्रत्येक बैंक को लाभ और हानि का व्योरा, तथा आमदनी और खर्चका व्योरा भी सरकार को भेजना पड़ताहै। सैन्ट्रल बैंक रजिस्ट्रार को तिमाही रिपोर्ट भेजते हैं जिसमें उनकी आर्थिक स्थिति का व्योरा रहता है। सैन्ट्रल बैंक अधिकतर अपनी शाखाएं नहीं खोलते, किन्तु उन सैन्ट्रल बैंकों को जिनका क्षेत्र बहुत बड़ा है, तथा उनसे सम्बन्धित समितियों की संख्या अधिक है, शाखाएं खोलने की आज्ञा दे दी गई है।

आठवां परिच्छेद

प्रान्तीय बैंक

सहकारिता आन्दोलन के क्रमशः देश में फैलने पर यह बात अनुभव होने लगी कि यद्यपि सैन्ट्रल बैंक सहकारी समितियों का निरीक्षण तथा उनकी देख भाल करने में रजिस्ट्रार का हाथ तो बँटाते हैं, किन्तु आन्दोलन में जितनी पूँजी की आवश्यकता होती है उसका उचित प्रबन्ध नहीं कर सकते। इसके अतिरिक्त सैन्ट्रल बैंकों का नियन्त्रण तथा उनके द्वारा साख समितियों की पूँजी की आवश्यकताओं का उचित प्रबन्ध करने के लिये भी प्रांतीय बैंकों की आवश्यकता प्रतीत हुई। मैकलेगन कमेटी (जो कि १६१५ में सहकारिता आन्दोलन की जांच के लिये बिठलाई गई थी) ने प्रत्येक प्रांत में प्रांतीय बैंक स्थापित करने की आवश्यकता बतलाई। वास्तव में सैन्ट्रल बैंकों का आपस में सम्बन्ध स्थापित करने के लिये एक ऐसी संस्था की अत्यन्त आवश्यकता थी। प्रान्तीय बैंकों से पूर्व यह कार्य रजिस्ट्रार करता था। यदि किसी सैन्ट्रल बैंक को पूँजी की अधिक आवश्यकता होती तो रजिस्ट्रार को सूचना देने पर रजिस्ट्रार प्रत्येक सैन्ट्रल बैंक को गश्ती चिट्ठी लिख देता था। यह कार्य रजिस्ट्रार भली भांति नहीं कर पाता था और साथ ही उसका बहुत सा समय इस कार्य में लग जाता था। कुछ सैन्ट्रल बैंक ऐसे थे जो अपनी आवश्यकता से अधिक पूँजी आकर्षित कर लेते थे और कुछ ऐसे भी थे जिनको

यथेष्ट पूँजी नहीं मिलती थी, इस कारण ऐसे प्रान्तीय बैंकों की नितान्त आवश्यकता प्रतीत हुई जो पहले प्रकार के बैंकों की अतिरिक्त पूँजी को जमा करें और दूसरे प्रकार के बैंकों को दे दें। इसके अतिरिक्त द्रव्य बाज़ार (money market) तथा सहकारिता आन्दोलन के बीच में सम्बन्ध स्थापित करने के लिये भी प्रान्तीय बैंकों की आवश्यकता प्रतीत हुई।

भारतवर्ष में इस समय १२ प्रान्तीय बैंक हैं, ८ ब्रिटिश भारत में तथा ४ देशी राज्यों में। ब्रिटिश भारत में संयुक्त प्रान्त को छोड़कर सभी बड़े प्रान्तों में प्रान्तीय बैंक हैं। देशी राज्यों में हैदराबाद तथा मैसूर आदि में प्रान्तीय बैंक हैं।

यद्यपि इन बारह प्रांतीय बैंकों का संगठन भिन्न है परन्तु इन का कार्य एकसा ही है। प्रान्तीय बैंकों के संगठन के विषय में दो बातें विचारने की हैं। एक तो यह कि प्रान्तीय बैंकों को भली भांति चलाने के लिये व्यापारिक बुद्धि, तथा बैंकिंग की योग्यता चाहिये, इस कारण बैंक के डायरैक्टर व्यवसायी होने चाहिये। किन्तु व्यापारियों तथा व्यवसायियों को बैंक के बोर्ड आफ़-डायरैक्टर्स में प्रधानता देने से हो सकता है कि सहकारिता के हितों की रक्षा न होसके। अस्तु, होना यह चाहिये कि डायरैक्टरों में सहकारिता वादियों का तो प्रधान्य हो किन्तु कुछ ऐसे व्यापारी अथवा बैंकिंग को समझने वाले लोगों को भी ले लिया जावे कि जिससे बैंक कार्य सुचारु रूप से चलता रहे। यह तो

हुई सिद्धान्त की बात। अब यह देखना यह है कि हमारे प्रान्तीय बैंकों का संगठन कैसा है।

अधिकतर प्रान्तीय बैंक मिश्रित ढंग के हैं, अर्थात् साधारण सभा तथा बोर्ड आफ़ डायरैक्टरस दोनों ही में हिस्सेदारों सहकारी समितियों, तथा सैन्ट्रल बैंकों के प्रतिनिधि रहते हैं। मैकलेगन कमेटी के बैठने से पहिले ही, बम्बई, मदरास, तथा बर्मा में ऐसे बैंक स्थापित होचुके थे कि जो नियमानुसार तो प्रान्तीय बैंक नहीं थे ,किन्तु प्रान्तीय बैंकों का कार्य करते थे। यह बैंक हिस्सेदार व्यक्तियों के थे और सैन्ट्रल बैंक, तथा प्रारम्भिक सहकारो समितियों को पूँजी देते थे।

मैकलेगन कमेटी ने मिश्रित प्रान्तीय बैंक स्थापित करने की राय दी थी इस कारण अधिकतर प्रांतीय बैंकों ने अपना संगठन वैसा ही बना लिया है। किन्तु पंजाब और बंगाल के प्रान्यीय बैंकों में व्यक्ति हिस्सेदार नहीं हो सकते,केवल सैन्ट्रल बैंक और सहकारी समितियां ही उनकी हिस्सेदार हो सकती हैं। इनके अतिरिक्त और सब बैंक मिश्रित बैंक हैं।

यह तो पहले ही कहा जाचुका है कि प्रान्तीय बैंक सैन्ट्रल बैंकों के अभिभावक का कार्य करता है। सहकारिता आन्दोलन का द्रव्य-बाज़ार से निकट सम्बन्ध स्थापित हो जावे इसके लिये आवश्यक है कि सहकारी सैन्ट्रल बैंक बाहरी बैंकों से प्रान्तीय बैंक के द्वारा काम करें। यद्यपि प्रत्येक प्रान्त में यह सिद्धान्त मान्य है, किन्तु सब प्रान्तों में इसके अनुसार कार्य नहीं होता।

उदाहरण के लिये पंजाब, बंगाल, और मदरास में सैन्ट्रल बैंक सीधे इम्पीरियल बैंक से सम्बन्ध रख सकते हैं। किन्तु बम्बई में वे केवल प्रान्तीय बैंक से ही सम्बन्ध रख सकते हैं। इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि प्रान्तीय बैंक सैन्ट्रल बैंकों को आपस में एक दूसरे से ऋण न लेने दें, क्योंकि इससे प्रान्तीय बैंक सैन्ट्रल बैंकों का अनुशासन ठीक प्रकार से नहीं कर सकते।

प्रान्तीय बैंकों को प्रारम्भिक समितियों से भी सीधा संबन्ध नहीं रखना चाहिये,केवल उनसे सैन्ट्रल-बैंकों के द्वारा ही सम्बन्ध रखना चाहिये। कुछ प्रान्तों में प्रान्तीय बैंक प्रारम्भिक समितियों से सम्बन्ध नहीं रखते, किन्तु कुछ प्रांतीय बैंक ऐसे भी हैं जो उन क्षेत्रों में जहां कि सहकारी सैन्ट्रल बैंक नहीं हैं, प्रारम्भिक समितियां को पूँजी देते हैं।

प्रांतीय बैंक अपनी कार्यशील पूँजी के लिये सहकारी समितियां, सैन्ट्रल बैंकों, और जनता पर निर्भर रहते हैं। जब प्रान्तीय बैंक सर्व साधारण से डिपाज़िट स्वीकार करते हैं तो उन्हें जमा करने वालों को मांगने पर, देने के लिये नक़द रुपया रखना पड़ता है। कुछ प्रान्तों में प्रांतीय सरकारों ने नियम बनाकर कम से कम नक़द रुपया कितना रखना चाहिये यह निश्चित कर दिया है। किन्तु अन्य प्रान्तों में मैकलेगन कमेटी की सम्मति के अनुसार ही कार्य होता है। जितने दिनों के लिये प्रांतीय बैंक को डिपाज़िट मिलती हैं उससे अधिक के लिये वे ऋण नहीं देते

हैदराबाद, बिहार, तथा मदरास प्रांतीय बैंक अधिक से अधिक दो वर्ष के लिये डिपाज़िट लेते हैं। मध्यप्रांत, बम्बई, तथा पंजाब के बैंक अधिक से अधिक पांच वर्ष के लिये डिपाज़िट लेते हैं। बंगाल बैंक तीन वर्ष तथा मैसूर बैंक अधिक से अधिक दस वर्ष के लिये जिपाज़िट लेते हैं। ऊपर लिखे हुए बैंक कम से कम एक मास से लेकर १२ मास तक लिये डिपाज़िट स्वीकार करते हैं। कुछ प्रांतीय बैंक चालू खाता भी रखते हैं। पंजाब प्रांतीय बैंक को छोड़ अन्य प्रांतीय बैंक साधारण बैंकिंग भी करते हैं वे जनता की चालू जमा रखते हैं, हुंडियों का रुपया वसूल करते हैं, तथा अन्य कार्य करते हैं।

बम्बई, मदरास, तथा पंजाब प्रान्तीय बैंकों ने लम्बे समय के लिये डिबैंचर* बेचे हैं। भारत सरकार ने इन डिबैंचरों को ट्रस्टी सिक्यूरिटी मान लिया है। बम्बई ने ६.८ लाख, मदरास ने २.१८ लाख, तथा पंजाब बैंक ने पांच लाख रुपये के डिबैन्चर बेचे हैं। प्रान्तीय बैंकों के सामने भी कार्यशील पूँजी के बाहुल्य तथा कमी की समस्या उपस्थित रहती है। अस्तु, प्रान्तीय बैंक जब कभी उनके पास कार्यशील पूँजी का बाहुल्य होता है एक दूसरे को कर्जा देते हैं, जब पूँजी की कमी होती है तो अधिक सूद देकर डिपाज़िट बढ़ाने का प्रयत्न किया जाता है।

प्रान्तीय बैंक का हिसाब सहकारिता विभाग को जांचना चाहिये, क्योंकि सहकारिता एक्ट के अनुसार रजिस्ट्रार का यह

---

* डिबैंचर वह रक़म है जो कि कम्पनियां या बैंक सर्व साधारण से लेती हैं और जिसके लिये ऋण पत्र दे देती हैं।

मुख्य कार्य है। बहुत से प्रान्तों में रजिस्ट्रारों ने पेशेवर आडिटरों द्वारा प्रांतीय बैंक के हिसाब का आय-व्यय निरीक्षण करवाने की आज्ञा दे दी है। किसी किसी प्रांत में पेशेवर आडिटरों द्वारा आडिट हो जाने पर प्रान्त का सहकारिता विभाग फिर आडिट करता है। आय-व्यय निरीक्षण के अतिरिक्त इन बैंकों को अपनी आर्थिक स्थिति का तिमाही लेखा रजिस्ट्रार के द्वारा अपनी प्रांतीय सरकार को भेजना पड़ता है। प्रान्तीय सरकार उस पर अपना मत प्रकट करती है। प्रान्तीय बैंक वर्ष के अंत में बैलेंस-शीट भी तैयार करके छापता है। कुछ प्रान्तीय बैंक छमाही बैलेंस शीट तैयार करते हैं।

कुछ समय हुआ जबकि, "अखिल भारतवर्षीय प्रान्तीय सहकारी बैंक एशोसियेशन" नामक संस्था को जन्म दिया गया है। इस एशोसियेशन का मुख्य कार्य यह है कि वह प्रत्येक सदस्य बैंक की कार्यशील पूँजी के बाहुल्य तथा कमी के आंकड़ों को जमा करे और सब सदस्यों की सूचना के लिये भेज दे, जिससे कि सदस्यों को यह ज्ञात हो जावे कि किस बैंक को पूँजी की आवश्यकता है और कौन बैंक कर्जा दे सकता है। इसके कार्य के अतिरिक्त एशोसियेशन की बैठक दो साल में एक एक बार होती है जिसमें बैंकिंग सम्बन्धी, तथा आन्दोलन सम्बन्धी प्रश्नों पर विचार होता है। और जब कभी प्रांतीय बैंकों का सरकार का ध्यान किसी विशेष बात की ओर आकर्षित करना होता है तो यही संस्था सरकार से लिखा पढ़ी करती है।

कुछ प्रान्तों में प्रांतीय बैंक अपने से सम्बन्धित सैन्ट्रल बैंकों का नियन्त्रण करते हैं। इन प्रान्तों में सैन्ट्रल बैंक डिपाज़िट पर कितना सूद देंगे, तथा समितियों से कितना सूद लेंगे, इसका नियन्त्रण प्रान्तीय बैंकों द्वारा होता है। कुछ प्रान्तों में प्रान्तीय बैंक सैन्ट्रल बैंकों से उनकी आर्थिक स्थिति को जानने के लिये एक लेखा मांगते हैं। किन्तु अन्य प्रान्तों में प्रान्तीय बैंक ऐसा कोई नियन्त्रण नहीं रखते।

प्रत्येक प्रान्त में प्रान्तीय बैंकों ने अपना सम्बन्ध इम्पीरियल बैंक से स्थापित कर रक्खा है और वे सिक्यूरिटी देकर नक़द-साख ले लेते हैं। अभी तक इम्पीरियल बैंक, प्रान्तीय बैंकों को सहकारी क़ाग़ज़* (cooperative paper) अपने नाम करा कर उसकी ज़मानत पर ऋण दे देता था। किन्तु अभी कुछ दिनों से इम्पीरियल बैंक ने अपनी नीति बदल दी है और वह सहकारी काग़ज़ की ज़मानत पर कर्ज़ा देना स्वीकार नहीं करता। इम्पीरियल बैंक अब केवल गवर्नमेंट आफ़ इण्डिया-प्रामिसरी नोट की सिक्यूरिटी पर ही सहकारी प्रान्तीय बैंकों को कर्ज़ा देता है। प्रान्तीय बैंक सैन्ट्रल बैंकों की मौसमी मांग को पूरी करने के लिये इम्पीरियल बैंक से नक़द साख लेते थे किन्तु अब जब कि इम्पीरियल बैंक ने साख देना बन्द कर दिया

* सहकारी क़ाग़ज़ अर्थात् वह ऋण पत्र जो कि सैन्ट्रल बैंक प्रान्तीय बैंक को, तथा समितियां सैन्टल बैंकों को कर्ज़ लेने पर लिख देतीं हैं।

है तब वे भी सैन्ट्रल बैंकों की मौसमी मांग को पूरा करने में असमर्थ हैं। इस नीति परिवर्तन का आन्दोलन पर क्या प्रभाव पड़ेगा यह अभी नहीं कहा जा सकता क्योंकि यह परिवर्तन अभी हाल में ही हुआ है। प्रान्तीय बैंकों का रुपया एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजने के लिये सरकार कोई फ़ीस नहीं लेती।

सहकारी प्रान्तीय बैंकों तथा इम्पीरियल बैंक का सम्बन्ध–सैन्ट्रल बैंकिंग इनक्वायरी कमेटी के सामने भी यह प्रश्न आया था। सहकारिता आन्दोलन में लगे हुए कार्यकर्ताओं ने इम्पीरियल बैंक की इस विषय में कड़ी आलोचना की। सैन्ट्रल बैंकिंग इनक्वायरी कमेटी ने इस प्रश्न पर अपना मत निम्न लिखित शब्दों में दिया है। "इम्पीरियल बैंक ने सहकारी बैंकों को पूँजी देने के सम्बन्ध में अपनी नीति में विशेष परिवर्तन कर दिया है। इम्पीरियल बैंक जिस प्रकार पहले सहकारी बैंकों को सहायता पहुंचाता था उस प्रकार अब सहायता पहुँचाने को तैयार नहीं है"। कमेटी के सामने इम्पीरियल बैंक के प्रतिनिधियों ने गवाही देते समय इस बात पर विशेष जोर दिया कि सहकारी बैंकों को चल पूँजी (fluid resources) के लिये इम्पीरियल बैंक पर अवलम्बित न रहना चाहिये, उन्हें चल पूँजी का प्रबन्ध स्वयं करना चाहिये। क्योंकि संकट के समय इम्पीरियल बैंक को भी कठिनाई उपस्थित हो सकती है। इसके अतिरक्त इम्पीरियल बैंक के अधिकारीवर्ग ने कहा कि सहकारी काग़ज़ की ज़मानत का मूल्य प्रारंभिक सहकारी साख समितियों की आर्थिक

स्थिति पर ही अवलंबित है। किन्तु सहकारी साख समितियों की आर्थिक दशा अत्यन्त हीन है इस कारण यह जमानत प्रथम श्रेणी की जमानत नहीं है। इसका विचार न करके यदि इम्पीरियल बैंक समितियों के प्रो-नोट की ज़मानत पर ऋण दे दे तो ऋण के न चुकाये जाने पर बैंक के लिये यह आवश्यक हो जावेगा कि बैंक समितियों के सदस्यों की भूमि को बेचदे, जो कि न तो उचित ही होगा और न व्यवहारिक ही होगा।

" इसके विपरीत सहकारिता आन्दोलन में लगे हुए कार्यकर्ताओं का मत है कि ग्रामीण साख समितियों के प्रो-नोट से अधिक सुरक्षित ज़मानत और दूसरी हो ही नहीं सकती। क्योंकि सदस्यों का दायित्व अपरिमित है। साधारणतः प्रांतीय बैंक तथा सैन्ट्रल बैंक अच्छी सहकारी समितियों के प्रो-नोट इम्पीरियल बैंक के पास ज़मानत के रूप में रखते हैं। इस कारण यह कहना ग़लत है कि रुपया वसूल करने के लिये भूमि को बेचने की आवश्यकता होगी। चल पूँजी के विषय में उन लोगों का यह कहना है कि यदि प्रान्तीय सहकारी बैंक चल पूँजी का प्रबन्ध स्वयं करेंगे तो कुछ रुपया बेकार पड़ा रहा करेगा, क्योंकि उसका उपयोग सर्वदा नहीं होता, इससे व्यय अधिक बढ़ेगा और लाभ बहुत कम होगा। जिसका फल यह होगा कि भविष्य में सूद की दर न घटाई जा सकेगी। उनका यह भी कहना है कि समितियों के प्रो-नोट पर इम्पीरियल बैंक—७२ लाख से अधिक की साख नहीं देता था, यह इम्पीरियल बैंक के लिये कुछ अधिक

नहीं है, फिर जब कि इम्पीरियल बैंक के पास सरकार बहुत सा रुपया बिना सूद लिये ही रखती है उस दशा में इम्पीरियल बैंक का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह सहकारिता आन्दोलन की सहायता करे"। सैन्ट्रल बैंकिंग इनकायरी कमेटी ने इम्पीरियल बैंक के अधिकारियों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया है और साथ ही इस बात पर जोर दिया है जहां तक हो सके इम्पीरियल बैंक को आन्दोलन की सहायता करना चाहिये।

इसके अतिरिक्त सहकारिता आन्दोलन के कार्यकर्ताओं को इम्पीरियल बैंक के विरुद्ध एक शिकायत यह भी थी कि इम्पीरियल बैंक सहकारी बैंकों का रुपया सहकारिता के कार्य के लिये एक स्थान से दूसरे स्थान पर बिना फ़ीस नहीं भेजना चाहता। भारत सरकार का यह मत है कि जो रुपया सहकारिता आन्दोलन के उपयोग के लिये एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजा जावे उस पर इम्पीरियल बैंक फ़ीस न ले, यदि सहकारी बैंक यह कह दें कि यह आन्दोलन के उपयोग के लिये है। इम्पीरियल बैंक का कहना है कि यह न्यायोचित नहीं है कि अन्य व्यापारिक बैंकों को यह सुविधायें न दी जावें और सहकारी बैंकों को यह सुविधा दीजावें कि जिनको कर दाताओं के द्वारा आर्थिक सहायता मिलती है। इस पर सैन्ट्रल बैंकिंग इनकायरी कमेटी ने अपना स्पष्ट मत दे दिया है कि सहकारी बैंकों का रुपया बिना फ़ीस के भेजना अत्यन्त आवश्यक है, हां,

जो रुपया कि सहकारी कार्य के लिये न भेजा जावे उस पर उतनी ही फ़ीस लीजावे कि जितनी मिश्रित पूँजी वाले बैंकों से लीजाती है।

मिश्रित पूंजी वाले व्यापारिक बैंक तथा सहकारी बैंकों की स्पर्धाः—मिश्रित पूँजी वाले बैंकों तथा सहकारी बैंकों में कोई अनुचित स्पर्धा नहीं है। वास्तव में इन दोनों प्रकार के बैंकों का कार्य क्षेत्र इतना भिन्न है कि अनुचित स्पर्धा का तो कोई प्रश्न ही नहीं उपस्थित होता। कुछ लोगों का ऐसा मत है कि सहकारी बैंक सरकार की सहायता पाकर डिपाज़िट आकर्षित करने में अन्य बैंकों से अनुचित स्पर्धा कर रहे हैं। प्रान्तीय सहकारी बैंक तथा सैन्ट्रल बैंकों की डिपाज़िट रेट के आंकड़े देखने से ज्ञात होता है कि सूद की दर मिश्रित पूँजी वाले बैंकों से अधिक नहीं है, इस कारण प्रतिस्पर्धा का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

सैन्ट्रल बैंकिंग इनकायरी कमेटी के सामने गवाही देते हुए इम्पीरियल बैंक के गवर्नर ने कहा था कि सहकारी बैंको को केवल सहकारिता आन्दोलन तक अपने कार्य की सीमा बना लेनी चाहिये और मिश्रित पूँजी वाले बैंकों तथा अन्य बैंकिंग कार्य करने वालों से प्रतिद्वन्दता न करनी चाहिये। यद्यपि अभी तक सहकारी बैंक केवल सहकारी बैंकिंग में लगे हुए हैं किन्तु सहकारिता आन्दोलन में लगे हुए लोगों का यह मत है कि सहकारी बैंकों को सब प्रकार का कार्य करना चाहिये। इम्पीरियल

बैंक के गवर्नर का यह भी मत था कि सहकारी बैंकों को बैंकिंग का इतना ज्ञान नहीं होता कि वे चालू खाता, बिल, हुंडी तथा रुपया एक स्थान से दूसरे स्थान पर आसानी से भेजने का काम कर सकें। सहकारिता आन्दोलन के कार्यकर्ता इसको मानने के लिये तैयार नहीं हैं और सैन्ट्रल बैंकिंग इनकायरी कमेटी ने भी अपनी सम्मति सहकारी बैंकों के पक्ष में दी है।

इस सम्बन्ध में एक प्रश्न बार बार उठाया जाता है कि सरकार तथा सहकारिता आन्दोलन का क्या सम्बन्ध है। सिद्धांत की दृष्टि से तो सरकार का सहकारी विभाग केवल प्रचार तथा निरीक्षण कार्य के लिये ही उत्तरदायी है, किन्तु वास्तव में सरकार का उत्तरदायित्व कुछ अधिक है। जब जब सहकारी बैंकों को आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा है तब तब सरकार ने सहकारी बैंकों को सहायता की है, इस कारण द्रव्य बाज़ार में यह धारणा बन गई है कि जब कभी इन बैंकों पर आर्थिक संकट आवेगा, सरकार उनकी सहायता करेगी। इसी आश्वासन के कारण द्रव्य-बाज़ार में सहकारी बैंकों की प्रतिष्ठा तथा साख है। वास्तव में बात भी ऐसी ही है। जब बर्मा तथा मध्य प्रान्त के प्रान्तीय बैंकों की आर्थिक स्थिति अत्यन्त डंवांडोल थी तब प्रान्तीय सरकारों ने उनकी सहायता की।

व[illegible] स्थिति यह है कि सरकार किसी सहकारी बैंक अथवा समिति टूटने पर कोई आर्थिक ज़िम्मेदारी नहीं लेती है। सैन्ट्रल बैंकिंग इनकायरी कमेटी का मत है कि जब किसी विशेष

कारण वश इन बैंकों पर आर्थिक संकट आ जावे तो सरकार थोड़े समय के लिये सहायता दे दिया करे किन्तु यह सहायता साधारणतः न दी जावे। साधारणतः प्रान्तीय बैंक यथेष्ट पूँजी आकर्षित करलेते हैं, किन्तु कभी कभी पूँजी की अधिक आवश्यकता होती है। ऐसे समय पर प्रान्तीय सरकार को उन्हें ऋण दे देना चाहिये।

सैन्ट्रल बैंकिंग इनक्वायरी कमेटी के सामने प्रांतीय सहकारी बैंकों ने अपनी निम्न लिखित मांगें पेश की थीं।

(१) जो पूँजी सम्बन्धी सुविधाएं इम्पीरिल बैंक अभी तक प्रान्तीय बैंकों को देता आया है वह एक नियम बनाकर उसे देने के लिये बाधित किया जावे। एक वर्ष से लेकर दो वर्ष तक के लिये इम्पीरियल बैंक, बैंक रेट पर प्रान्तीय बैंकों को उनके प्रो-नोट पर ऋण दे, तथा किश्तों में वसूल करले। एक वर्ष से कम के लिये प्रो-नोट पर बैंक रेट से एक प्रति शत कम सूद पर ऋण दे।

(२) खेती बारी के लिये इम्पीरियल बैंक प्रान्तीय सहकारी बैंकों को नक़द साख दे तथा उनकी हुँडियों (बिल्स) को भुनादे।

(३) जहां इम्पीरियल बैंक की ब्रांच नहीं हैं वहां सहकारी सेन्ट्रल बैंक सरकारी खज़ाने का काम करें।

(४) देश के अन्तरगत रुपये को एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजने के लिये सरकारी खज़ाने अधिक सुविधाएं दें और

देश के अन्तरगत विनिमय-व्यापार सहकारी बैंकों के लिये उचित समझा जावे।

(५) प्रांतीय बैंक ग्रामीण क्षेत्रों में खेती की उपज को सुरक्षित रखने के लिये अन्न भण्डार बनवाने की आवश्यकता समझते हैं। इसके बिना सहकारी विक्रय समितियां देश में स्थापित नहीं की जा सकतीं। इन भण्डारों के बनवाने के लिये सरकार प्रान्तीय बैंकों को सूद पर पूँजी दे।

(६) यदि सहकारी समतियां अपनी पूँजो सरकारी ऋण में अथवा भूमि बन्धक बैंको के डिबैन्चर खरीदने में लगावें तो उनकी आय पर इनकम टैक्स न लिया जावे।

सैन्ट्रल बैंकिंग इनक्वायरी कमेटी ने पहिली दो मांगों के विषय में जो सम्मति दी है वह तो पहिले ही लिखी जा चुकी है किन्तु इम्पीरियल बैंक से तो सहकारिता आन्दोलन का सम्बन्ध तभी तक रहा जब तक रिजर्व बैंक स्थापित नहीं हुआ था। रिज़र्व बैंक के स्थापित होने पर तो सहकारिता आन्दोलन का सीधा सम्बन्ध रिज़र्व बैंक से हो गया है। इस लिये यह जानना आवश्यक है कि रिज़र्व बैंक का सहकारिता आन्दोलन के प्रति क्या कर्तव्य होगा। कमेटी के मतानुसार रिज़र्व बैंक, प्रान्तीय सहकारी बैंकों को निम्न लिखित सुविधाएं दे।

(१) प्रान्तीय बैंक भी अन्य बैंकों के साथ सदस्य-बैंक बना लिये जावें, और उन्हें भी हुंडी भुनाने की सुविधा दी जावे।

(२) प्रान्तीय बैंकों को खेती-बारी की मौसमी पूँजी की आवश्यकता पूरी करने के लिये अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है इस बात को ध्यान में रखते हुए रिज़र्व बैंक को यह अधिकार दिया जावे कि वह प्रान्तीय बैंकों की ६० दिन में चुकने वाली हुंडियों को भुनादे, जिससे कि प्रान्तीय बैंक आवश्यकता के समय किसानों की मांग को पूरा कर सकें।

रिज़र्व बैंक को यह भी अधिकार दिया जाना चाहिये कि वह प्रान्तीय बैंकों को सहकारी काग़ज़ को साख पर ऋण दे सके। साथ ही यह अधिकार भी होना चाहिये कि वह चल पदार्थ, सौदागरी सामान, तथा गोदामों की रसीद की ज़मानत पर ऋण दे सके।

कमेटी की सम्मति में यदि सहकारी बैंकों को ख़ज़ाने का काम दे दिया जावे तो सम्भवतः उनकी प्रतिष्ठा बढ़ जावेगी। किन्तु वर्तमान स्थिति में सहकारी बैंकों को आन्दोलन सम्बन्धी कार्य के अतिरिक्त और कुछ भी न करना चाहिये नहीं तो उनकी शक्ति बंट जावेगी। कमेटी ने यह भी शिफ़ारिश की है कि प्रान्तीय बैंकों को गोदामों के बनवाने के लिये कम सूद पर रुपया दिया जावे।

अब केवल एक मांग शेष रहती है— कि सहकारी समितियों को इनकम टैक्स से मुक्त कर दिया जावे। सहकारी

समितियों का लाभ इनकम-टैक्स से मुक्त है, किन्तु सुपरटैक्स से मुक्त नहीं है। कमेटी की राय में लाभ सुपर टैक्स से भो मुक्त कर देना चाहिये। गवर्नमेंट सिक्यूरिटी तथा भूमि बन्धक वैंक के डिबैन्चरों में जो रुपया लगाया जावे उसकी आय पर जो टैक्स लिया जाता है वह भी न लिया जावे, किन्तु यह उतने ही रुपये की आय पर छोड़ा जावेगा कि जितना रुपया रक्षित कोष, तथा चल पूँजी के लिये गवर्नमेन्ट सिक्यूरिटी तथा भूमि बन्धक बैंकों में लगाना नियमानुसार सहकारी समितियों तथा बैंकों को आवश्यक है।

नवां परिच्छेद

सहकारी भूमि बंधक बैंक

यह तो पहिले ही कहा जा चुका है कि किसान को साधारण खेती बारी के कारबार को चलाने के लिये थोड़े समय के लिये ऋण की आवश्यकता पड़ती है। इसके अन्तर्गत वह सभी ऋण आजावेगा जो कि पशु, बीज, खाद, हल तथा अन्य यन्त्र ख़रीदने के लिये, लगान देने के लिये, तथा अपने कुटुम्ब के पालन के लिये लिया जाता है। इसके अतिरिक्त किसान को पुराने ऋण को चुकाने के लिये, भूमि की चकबन्दी करने, उसको उपजाऊ बनाने के लिये, कूआं खोदने के लिये तथा क़ीमती यन्त्र ख़रीदने को अधिक समय के लिये ऋण चाहिये।

ग्राम्य सहकारी साख समितियां किसानों को थोड़े समय के लिये ऋण देती हैं। आरम्भ में जब कि सहकारिता आन्दोलन का श्री गणेश हुआ था उस समय लोगों की यह धारणा थी कि साख समितियां अधिक समय के लिये भी ऋण दे सकेंगी। यह केवल धारणा ही नहीं थी वरन साख समितियों ने अधिक समय के लिये ऋण दिया और अब भी देती हैं। किन्तु एक तो साख समितियों के पास इतनी पूँजी नहीं थी कि वे सदस्यों के पुराने ऋण चुका सकें और न ऐसा उनके हित में ठीक ही था, इस कारण साख समितियां अधिक समय के लिये ऋण बहुत कम देती हैं। अधिकतर प्रन्तीय बैंकिंग इन-

कायरी कमेटियों की यह सम्मति है कि स्थिर- सम्पत्ति को वन्धक रख कर अधिक समय के लिये ऋण देना ग्रामीय साख समितियों के लिये ठीक नहीं है। एक तो साख समितियों को स्थिर सम्पत्ति की ज़मानत पर ऋण देने से व्यक्तिगत साख के महत्व का विस्मरण हो जाने की सम्भावना है, जो कि सहकारिता के सिद्धांतों के विरुद्ध है। सहकारी साख समितियां तो केवल व्यक्तिगत साख पर ही ऋण देती हैं। दूसरा कारण यह है कि सैन्ट्रल बैंक तथा ग्रामीय साख समितियों में डिपाज़िट थोड़े समय के लिये होती हैं अस्तु, थोड़े समय के लिये जमा किये हुये रुपये से अधिक समय के लिये ऋण देना जोखिम से खाली नहीं है तथा यह बैंकिंग के सिद्धान्त के भी विरुद्ध है। तीसरे अधिक समय के लिये ऋण देने में सम्पत्ति की ज़मानत लेते समय उस के मूल्य को आंकने तथा उसके स्वामित्व के विषय में जांच करने के लिये अनुभवी कार्यकर्ताओं और कर्मचारियों की आवश्यकता होगी जो कि ग्रामीय समितियों के पास नहीं हैं। इसके अतिरिक्त एक कठिनाई यह भी है कि भूमि वन्धक रखने पर उसके सम्बन्ध के काग़ज़ ग्रामीय समितियों के पास रखने में जोखिम है, और अन्तिम सबसे बड़ी कठिनाई यह उपस्थिति होगी कि सदस्यों के ऋण न चुकाने पर समिति की पूँजी फंस जावेगी और समिति को सदस्य के विरुद्ध डिगरी करा कर उस भूमि को नीलाम करवाना होगा। यह सब क़ानूनी काम समिति सफलता पूर्वक नहीं कर सकेगी।

केवल प्रान्तीय बैंकिंग इनकायरी कमेटियों की ही यह राय नहीं है कि समितियां भूमि बन्धक रखकर अधिक समय के लिये ऋण न दें, वरन सैन्ट्रल बैंकिंग इनकायरी कमेटी के सामने गवाही देते हुए प्रान्तीय बैंकों के प्रतिनिधियों ने भी यही सम्मति दी थी।

यदि प्रान्तीय बैंकिंग इनक्वायरी कमेटियों की रिपोर्टों का अध्ययन किया जावे तो ज्ञात होगा कि प्रान्तीय सहकारी बैंक, सैन्ट्रल बैंक, तथा साख समितियां, किसान के पुराने ऋण को चुकाने में असमर्थ हैं। यहां हम प्रान्तीय बैंकिंग इनकायरी कमेटियों की अपने अपने प्रान्तों के विषय में सम्मति लिखते हैं।

आसाम—यद्यपि कुछ ऋण अधिक समय के लिये दिया जाता है किन्तु थोड़े समय के लिये जमा किये हुए रुपये से अधिक समय के लिये ऋण देना नीति के विरुद्ध समझा जाता है।

बङ्गाल—अधिकतर सैन्ट्रल बैंक समितियां को पुराना ऋण चुकाने के लिये तीन वर्ष के लिये रुपया उधार देते हैं, कुछ बैंक पांच वर्ष के लिये भी उधार देते हैं।

बिहार उड़ीसा—बिहार उड़ीसा में सहकारी समितियां पुराने ऋण को चुकाने के लिये ऋण देती हैं किन्तु सहकारी विभाग ने इस प्रकार के ऋण की रक़म निश्चित कर दी है जिससे अधिक

ऋण, लम्बे समय के लिये नहीं दिया जा सकता। यह ऋण दो साल से लेकर दस साल तक के लिये दिया जाता है। बिहार उड़ीसा कमेटी की राय में ऋण कमसे कम पांच साल के लिये देना चाहिये। कमेटी की यह भी राय है कि सहकारी साख समितियां कभी भी सफलता पूर्वक इस समस्या को हल न कर सकेंगी।

बम्बई—बम्बई प्रान्त में समितियां सदस्यको ७५० रुपये तक पुराना क़र्ज़ चुकाने के लिये ऋण देती हैं, किन्तु बहुत थोड़ी समितियां ही यह सुविधा प्रदान करती हैं।

बर्मा—बर्मा में चार वर्षों के लिये ऋण दिया जाता है।

मध्यप्रान्त— मध्य प्रान्त में साख समितियों ने सदस्यों के पुराने ऋण को चुका देने का प्रयत्न किया किन्तु सदस्यों से किश्तें वसूल न की जा सकीं। अब आन्दोलन की नीति यह है कि अधिक लम्बे समय के लिये ऋण न दिया जावे।

मदरास—मदरास में पांच वर्षों के लिये ऋण मिल सकता है

पंजाब—पंजाब में सहकारी साखसमितियां बहुत कम पुराने ऋण को चुकाने के लिये ऋण देती हैं, यह कार्य वहां सहकारी भूमि बन्धक बैंक करते हैं।

ऊपर लिखे हुये विवरण से यह स्पष्ट है कि सहकारी साख समितियां अधिक समय के लिये किसान को पूँजी नहीं देसकतीं। इसके लिये भूमि बन्धक बैंक अधिक उपयुक्त हैं। सैन्ट्रल बैंकिंग इनकायरी कमेटी की भी यही सम्मिति है।

भूमि बन्धक बैंक तीन प्रकार के होते हैं। (१) सहकारी

(२) ग़ैर सहकारी, (३) अर्ध सहकारी। सहकारी भूमि बन्धक बैंक के सदस्य ऋण लेने वाले होते हैं, बैंक की पूँजी नहीं होती। जो भूमि बन्धक रखदी जाती है उसकी जमानत पर बन्धक बांड (Mortgage bond) बेचे जाते हैं और उनसे पूँजी प्राप्त की जाती है। यह बैंक लाभ को लक्ष्य करके कार्य नहीं करते वरन सूद की दर घटाने का प्रयत्न करते हैं।

ग़ैर सहकारी भूमि बन्धक बैंक मिश्रित पूँजी के होते हैं। जिस प्रकार कि अन्य व्यापारिक बैंक लाभ को दृष्टि से स्थापित किये जाते हैं वैसे ही यह बैंक भी हिस्सेदारों को सम्पत्ति होते हैं और लाम की दृष्टि से चलाये जाते हैं। किसान इत्यादि अपनी भूमि बन्धक रख कर उनसे ऋण लेते हैं। इस प्रकार के बैंक योरोपीय देशों में सर्वत्र ही स्थापित किये गये हैं किन्तु राज्य उन पर नियन्त्रण रखता है कि जिससे वे ऋण लेने वालों को तंग न करें। अर्ध सहकारी भूमि बन्धक बैंक न तो पूर्ण रूप से सहकारी होते हैं और न ग़ैर सहकारी।

भारतवर्ष में बड़े ज़मींदारों के लिये ग़ैर सहकारी तथा किसानों के लिये सहकारी भूमि बन्धक बैंक उपयुक्त होंगे। किंतु जो कुछ भी भूमि बन्धक बैंक भारतवर्ष में स्थापित किये गये हैं वे अर्ध सहकारी हैं, कोई भी पूर्ण सहकारी नहीं कहा जा सकता। इस समय जो भी बैंक कार्य कर रहे हैं वे परिमित दायित्व वाली संस्थायें हैं उनके सदस्य अधिकतर ऋण लेने वाले ही होते हैं। किन्तु कुछ सदस्य ऐसे भी ले लिये जाते हैं कि जो ऋण लेने वाले

नहीं होते। इन सदस्यों को बैंक के प्रबन्ध में सहायता पहुंचाने तथा पूँजी को आकर्षित करने के उद्देश्य से लिया जाता है। यह लोग प्रांत के प्रसिद्ध व्यापारी होते हैं। क्रमशः ऐसे सदस्योंको हटा देने की नीति है कि जिससे बैंक पूर्ण रूप से सहकारी संस्था बन जावे। किन्तु यह बात सबों को स्वीकार करनी पड़ती है कि जिस प्रकार रैफीसन सहकारी समितियों में सदस्यों का समिति के कार्य से घनिष्ट सम्बन्ध होता है वैसा इन बैंकों में नहीं होता।

१९२६ में रजिस्ट्रार सम्मेलन ने एक प्रस्ताव द्वारा भूमि बंधक बैंकों की एक योजना तैयार की थी, वह इस प्रकार है।

बैंक के उद्देश्य—(१) किसानों की भूमि तथा मकानों को छुड़ाना, (२) खेती की भूमि तथा खेती बारी के धन्धे की उन्नति करना तथा किसानों के मकानों को बनवाना, (३) पुराने ऋण को चुकाना, (४) भूमि खरीदने के लिये रुपया देना।

भूमि बंधक बैंक का कार्य क्षेत्र छोटा होना चाहिये, किन्तु इतना छोटा भी न हो कि उसका ठीक प्रबन्ध न होसके। यह नियम न बनाया जावे कि ऋण केवल साख समितियों को ही दिया जावेगा, हां यदि ऋण लेने वाला साख समिति का सदस्य हो तो उसके विषय में समिति का मत ले लिया जावे, किन्तु समिति पर उस ऋण का कोई उत्तर-दायित्व न रहे।

सदस्य को उसकी सम्पत्ति के मूल्य के आधे से अधिक ऋण नहीं दिया जासकता। प्रत्येक सदस्य को बैंक का हिस्सा

खरीदना होगा कि जिससे बैंक के पास अपनी निज की पूँजी हो जावे और जिसकी जमानत पर बैंक को बाहर से पूँजी मिल सके। ऋण लेने वाले के हिस्से का मूल्य जितना ऋण वह लेना चाहता है, उसका बीसवां हिस्सा होना चाहिये। प्रत्येक बैंक अपनी आर्थिक स्थिति को देखते हुये एक रक़म निश्चित करले जिससे अधिक ऋण किसी भी सदस्य को न दिया जावे। प्रान्त के सब भूमि बन्धक बैंक अपना एक संगठन करें और एक केन्द्रीय संस्था स्थापित कीजावे। केवल केन्द्रीय संस्था ही डिबैंचर बेचे, पृथक पृथक भूमि बन्धक बैंक डिबैंचर न बेचे।

शाही कृषि कमीशन ने भी रजिस्ट्रार सम्मेलन के प्रस्ताव का अनुमोदन किया है और उसकी सम्मति में सहकारी भूमि बंधक अधिक उपयुक्त हैं। कृषि कमीशन के सामने यह प्रश्न उपस्थित किया गया था कि सरकार भूमि बन्धक बैंक के डिबैंचरों को खरीदे अथवा नहीं। कमीशन का मत है कि सरकार को इन बैंकों के डिबैंचरों पर सूद की गारंटी दे देना चाहिये, और उन को ट्रस्टी सिक्यूरिटी बना देना चाहिये। डिबैंचर केन्द्रीय संस्था बेचे। कुछ वर्षों तक एक सरकारी कर्मचारी बैंक की प्रबन्ध कारिणी समिति में अवश्य रक्खा जावे।

१६२८ में रजिस्ट्रार सम्मेलन ने कृषि कमीशन की रिपोर्ट पर विचार किया। सम्मेलन ने कृषि कमीशन की सम्मति का अनुमोदन किया केवल एक बात पर सम्मेलन ने कृषि कमीशन से मत भेद प्रकट कियाथा। रजिस्ट्रार सम्मेलन ने यह प्रस्ताव पास किया

कि सरकार को इन बैंकों के डिबैंचर खरीद कर तथा इनको ऋण देकर सहायता देनी चाहिये।

इस समय कुछ भूमि बन्धक बैंक भारतवर्ष के भिन्न भिन्न प्रांतों में स्थापित किये गये हैं और उनका संगठन सहकारिता ऐक्ट के अनुसार हुआ है। पंजाब, मदरास, वम्बई, आसाम, तथा बंगाल में यह पाये जाते हैं। अन्य प्रान्तों में भूमि बन्धक बैंक नहीं हैं, किन्तु सब प्रान्तों में इन बैंकों के स्थापित करने का विचार हो रहा है; संयुक्त प्रान्त में तो एक स्थापित भी होगया है। किन्तु अभी तक रजिस्ट्रार सम्मेलन की बनाई हुई योजना कार्य रूप में परिणित नहीं होसकी है। कारण यह है कि जो भी भूमि बन्धक बैंक स्थापित किये गये हैं वे इस योजना के पूर्व ही स्थापित किये जाचुके थे।

अब हम भिन्न भिन्न प्रान्तों के भूमि वन्धक बैंकों के विषय में यहां कुछ लिखेंगे।

पंजाब—पंजाब में १२ भूमि बन्धक बैंक हैं। मियावली तथा झंग बैंकों के अतिरिक्त और सब बैंक एक एक तहसील में कार्य करते हैं। केवल वे दोनों बैंक ज़िलों में कार्य करते हैं। इन बैंकों के सदस्य साख समितियों के अतिरिक्त वे ही लोग हो सकते हैं जो कि भूमि के स्वामी हैं। किसी भी सदस्य को भूमि की मालगुज़ारी के तीस गुने से अधिक ऋण नहीं दिया जा सकता। तीन कामों के लिये ऋण दिया जाता है। पुराने ऋण को चुकाने के लिये, भूमि को छुड़ाने के लिये, तथा भूमि के

सुधार के लिये। १६३० में लगभग एक-तिहाई कर्ज़दारों ने अपनी किश्तें नहीं चुकाई थीं। अब सहकारिता विभाग ने निश्चय किया है कि अधिक से अधिक एक सदस्य को केवल ५०००) रु० ही दिये जावें, किन्तु केवल चार बैंकों ने इस नीति को स्वीकार किया है। सात बैंकों ने यह रक़म १०,००० और एक बैंक ने १५,००० निश्चित को है। कुछ बैंकों में डायरैक्टर स्वयं ऋण खूब ले लेते हैं तथा अपने संबन्धियों को उनकी हैसियत से अधिक ऋण दे देते हैं, जिसका फल यह होता है कि बैंक को हानि हो जाती है। इस कारण पांच बैंक तो डायरैक्टरों को ऋण देते ही नहीं और केवल एक में बिना किसी रोक टोक के डायरैक्टरों को ऋण दिया जा सकता है । बाकी ६ बैंकों में डायरैक्टरों को तभी ऋण दिया जा सकता है कि जब दो-तिहाई डायरैक्टर उपस्थित हों और सब ऋण देने को राजी हों, और सरकारी सदस्य लिखित स्वीकृति दे दे।

इन बैंकों की कार्यशील पूँजी का बहुत बड़ा भाग सरकार ने ऋण स्वरूप दिया है। प्रान्तीय बैंकों ने पांच लाख रुपये के डिबैंचर बेचे हैं। प्रान्तीय सरकार ने २५ वर्ष के लिये उनकी अदायगी की गारंटी दी है। यह आशा की जाती है कि आगे गारंटी की आवश्यकता न पड़ेगी।

मदरास—मदरास में भूमि बन्धक बैंकों का क्षेत्र बहुत ही छोटा होता है। एक बैंक कुछ गांवों के समूह में ही कार्य करता है। बैंकों का कार्य क्षेत्र इस कारण इतना छोटा रक्खा गया कि

जिससे कार्य कर्ता भूमि की भली भांति जांच कर सकें और अवैतनिक डायरैक्टर गांवों में जाकर देख सकें कि बैंक के कर्मचारियों की रिपोर्ट ठीक है अथवा नहीं। मदरास में यह बैंक अपने हिस्से की पूँजी का केवल आठ गुना या दस गुना ऋण बाहर से ले सकते हैं।

आरम्भ में यह योजना थी कि यह वैंक डिबैंचर बेचकर कार्य शील पूँजी इकट्ठी करेंगे। सरकार ने यह स्वीकार कर लिया था कि जितने मूल्य के डिबैंचर वैंक बेच लेवेंगे उतने ही मूल्य के सरकार ले लेगी। वैंक दिये हुए ऋण पर ६ फी सदी सूद लेते हैं। जो ऋण ६ फी सदी सूद पर दिया जाता है वह सवा सोलह वर्ष के लिये होता है क्योंकि दिये हुये ऋण का १२ फी सदी प्रति वर्ष वसूल कर लेने से सवा सोलह वर्ष में सूद सहित ऋण चुक जाता है। किन्तु सब वैंकों ने इस ढंग को स्वीकार नहीं किया है। कतिपय वैंक प्रति वर्ष कुछ फ़ी सदी असल का, और बचे हुए अंश पर सूद लेते हैं।

ऋण देने का ढंग यह है कि सदस्य प्रार्थना पत्र देता है। बैंक उसकी भूमि का मूल्य अंकवाता है तथा उसका क़ानूनी अधिकार देखता है। ऋण की क्यों आवश्यकता है और उसके चुकाने की सदस्य में योग्यता है अथवा नहीं। इतनी जांच कर चुकने पर ऋण दिया जाता है।

पिछले दिनों से इन बैंकों ने अपने कार्य क्षेत्र को बढ़ाया है और एक सदस्य को अधिक से अधिक ५०००) रु० देने का

निश्चय किया है। आरम्भ में प्रत्येक बैंक अपने डिबैंचर पृथक बेचता था जिससे बड़ी गड़बड़ रहती थी, इस कारण एक केन्द्रीय संस्था को जन्म दिया गया है कि जा सब बैंकों के लिये डिबैंचर बेचेगी। प्रान्तीय बैंक ने इसके डिबैंचर खरीदकर इन बैंकों को सहायता दी है तथा प्रान्तीय सरकार ने इन डिबैंचरों पर जो कि अगले पांच वर्षों में बेचे जावेंगे ६ प्रति शत सूद देने की गारंटी दी है। किन्तु सरकार अधिक से अधिक पचास लाख रुपये पर ही गारंटी देगी। यह निश्चय किया गया है कि सब भूमि बन्धक बैंक अपने पास बन्धक रखी हुई भूमि को सैन्ट्रल बैंक (केन्द्रीय संस्था) के नाम करदें और सैन्ट्रल बैंक डिबैंचर निकाले। रजिस्ट्रार सरकार की ओर से ट्रस्टी नियुक्त किया गया है कि वह देखे कि बैंक डिबैंचर खरीदने वालों के प्रति अपना कर्तव्य पालन करता है कि नहीं। मद्रास में इस समय ४२ भूमि बंधक बैंक कार्य कर रहे हैं।

बम्बई—बम्बई में अभी हाल में ही भूमि बंधक बैंकों की स्थापना की गई है इस कारण यहां यह संख्या में अधिक नहीं हैं। पूर्व खानदेश, धारवार, तथा भड़ौंच, के जिलों में बैंकों की स्थापना हो चुकी है। जो उद्देश्य कि रजिस्ट्रार ने भूमि बन्धक बैंकों के निर्धारित किये हैं उन्हीं कार्यों के लिये क़र्ज़ा दिया जाता है।

बैंकों के सदस्यों को जितना ऋण लेना होता है उसके पांच प्रति शत मूल्य के हिस्से उन्हें खरीदना पड़ते हैं। बैंक भूमि के मूल्य की आधी रक़म तक ऋण देसकते हैं। ऋण १० से ३०

वर्ष तक के लिये दिया जाता है। बैंकों की प्रबन्ध कमेटी में रजिस्ट्रार तथा प्रान्तीय सहकारी बैंक के प्रतिनिधि रहते हैं। सरकार ने प्रारम्भिक काल में महकमा माल का एक एक आफ़िसर प्रत्येक बैंक को दे दिया है जो कि भूमि के मूल्य को कूतता है।

बङ्गाल—बङ्गाल में भी इन बैंकों की संख्या कम है। इस समय केवल दो बैंक कार्य कररहे हैं। एक राजशाही ज़िले में दूसरा बाकरगंज ज़िले में। इन बैंकों का कार्य क्षेत्र भी छोटा है। जिन कार्यों के लिये ऋण दिया जाता है, वे लगभग वे ही हैं जो कि रजिस्ट्रार सम्मेलन ने निर्धारित किये थे। सदस्य को अपने हिस्सों के मूल्य का दस गुना ऋण मिल सकता है। ऋण एक वर्ष से लेकर २० वर्ष तक के लिये दिया जाता है।

आसाम—आसाम में पांच बैंक हैं। अधिक से अधिक ऋण सदस्य के हिस्सों के मूल्य से बीस गुना तथा भूमि के मूल्य का आधा दिया जासकता है। जिन कार्यों के लिये ऋण दिया जाता है वे लगभग वहीं हैं जिनके लिये अन्य प्रान्तों में ऋण दिया जाता है। अधिक से अधिक २० वर्ष के लिये ऋण दिया जाता है। और एक सदस्य को अधिक से अधिक १०,०००) रु० ही दिया जा सकता है।

सैन्ट्रल बैंकिंग इनकायरी कमेटी के सामने भूमि बन्धक बैंकों के सम्बन्ध में निम्न लिखित प्रश्न उपस्थित थे :—

(१) ऐसी कौन कौन सी आर्थिक आवश्यकताएं हैं जिनके

लिये किसान को अधिक लम्बे समय के लिये ऋण देना उचित है।

(२) अधिक से अधिक ऋण कितने समय के लिये देना चाहिये और उसके चुकाये जाने का ढंग क्या होना चाहिये ?

(३) भूमि बन्धक बैंक अपनी कार्यशील पूँजी कैसे इकट्ठी करें। क्या हिस्से खरीदना आवश्यक माना जावे, उस दशा में ऋण तथा हिस्सों के मूल्य का क्या अनुपात हो। यदि डिबैंचर वेच कर कार्यशील पूँजी इकट्टा करना अभीष्ट हो तो प्रत्येक भूमि वन्धक को यह अधिकार दिया जावे, अथवा किसी एक केन्द्रीय संस्था को। यदि प्रत्येक भूमि बन्धक बैंक को यह अधिकार न दिया जावे तो प्रान्तीय सहकारी बैंक यह कार्य करे अथवा कोई पृथक सैन्ट्रल भूमि बन्धक बैंक इसके लिये स्थापित किया जावे।

(४) क्या भूमि बन्धक बैंक साधारण बैंकों तथा सरकारी सैन्ट्रल बैंकों की भांति डिपाजिट लें। यदि लें तो उसके लिये क्या शर्तें होनी चाहिये ?

(४) जहां सरकारी साख समिति तथा भूमि बन्धक बैंक एक ही स्थान पर हों वहां उनका क्या सन्बन्ध होना चाहिये ?

(६) क्या सरकार इन बैंकों को आर्थिक सहायता दे ? यदि दे तो किस प्रकार दे। बैंकों को ऋण देकर, बैंकों को टैक्स तथा फ़ीस से मुक्त करके, डिबैंचरों के मूल तथा सूद की गारंटी

देकर, उनको ट्रस्टी सिक्यूरिटी बना कर अथवा डिबेंचर खरीद कर।

(७) क्या एक विशेष कानून बना कर इन बैंकों को यह अधिकार देना चाहिये कि वे बिना अदालत में गये हुये बन्धक रखी हुई भूमि को बेच दें।

सैन्ट्रल बैंकिंग इनकायरी कमेटी की यह सम्मति तो हम पूर्व ही लिख चुके हैं कि बड़े बड़े ज़मीदारों के लिये तो व्यापारिक भूमि बन्धक बैंक जो मिश्रित पूँजी वाले हों स्थापित किये जांय और किसानों के लिये सहकारी भूमि बन्धक बैंक स्थापित किये जावें। इसके अतिरिक्त ऊपर लिखे प्रश्नों पर कमेटी की सम्मति नीचे लिखी जाती है।

(१) कमेटी की राय में निम्न लिखित कार्यों के लिये ऋण देना चाहिये।

(क) किसान की भूमि और मकान को छुड़ाने के लिये तथा पुराने ऋण को चुकाने के लिये।

(ख) भूमि तथा खेती बारी के ढंग सुधारने के लिये तथा किसानों के मकान बनवाने के लिये।

(ग) विशेष अवस्थाओं में भूमि ख़रीदने के लिये।

कितना ऋण और कितने समय के लिये दिया जावे यह ऋण लेने वाले की क्षमता तथा जिस कार्य के लिये ऋण लिया जा रहा है, उस पर निर्भर होगा। रुपया पांच वर्ष से लेकर बीस

वर्ष के लिये दिया जावे। आगे चल कर तीस वर्ष के लिये भी रुपया दिया जा सकता है। कमेटी की सम्मति में ५००० रु० से अधिक एक सदस्य को न दिया जावे, सदस्य की भूमि का आधे से अधिक ऋण किसी भी दशा में न दिया जावे।

कमेटी की राय में ऋण सूद सहित बराबर बराबर किश्तों में लिया जावे। जिससे कि एक निश्चित समय पर ऋण चुक जावे। इससे यह लाभ होगा कि किसान को लगभग उतनी ही किश्त देनी होगी जितना कि वह महाजन को सूद देता है। किन्तु बैंकों को ये अधिकार दे दिया जावे कि यदि वे चाहें तो दूसरे ढंग से किश्तें वसूल कर सकते हैं।

भूमि बन्धक बैंकों की कार्यशील पूँजी, हिस्सा पूँजी, तथा डिबैंचरों से प्राप्त की जानी चाहिये। हिस्सा पूँजी दो प्रकार से प्राप्त की जासकती, एक तो आरम्भ में हिस्सा बेच कर, दूसरे ऋण लेते समय दी हुई रक़म में से पांच प्रति शत काट कर हिस्से का मूल्य वसूल करने से। किन्तु आरम्भ में काम चलाने के लिये जहां कहीं भी आवश्यकता हो प्रान्तीय सरकार बैंकों को बिना सूद के रुपया दे दें और डिबैंचर बिकने पर जो रुपया आवे उसमें से सरकार का रुपया दे दिया जावे। यह ध्यान में रखने की बात है कि पूँजी की यह व्यवस्था बैंकों के प्रारम्भिक काल में ही उपयुक्त होगी। विशेषज्ञों का कथन है कि आगे चल कर इन बैंकों को बहुत पूँजी की आवश्यकता होगी, उस समय प्रान्तीय सर-

कारों को इन बैंकों के हिस्से खरीद कर इनको सहायता पहुंचाना चाहिये।

अधिकतर कार्यशील पूँजी डिवैंचरों के द्वारा ही प्राप्त हो सकती है। सैन्ट्रल बैंकिंग इनकायरी कमेटी के सामने गवाही देते हुए कुछ विदेशी विशेषज्ञों ने कहा था कि बैंकों की जितनी हिस्सा पूँजी हो उससे पांच गुने डिबैंचर निकालना चाहिये। किन्तु कमेटी इससे सहमत नहीं है। कमेटी की राय में बैंक जितने मूल्य के डिवैंचर निकालना आवश्यक समझे निकाले किन्तु डिबैंचरों का मूल्य भूमि बन्धक रख कर दिये हुए ऋण से अधिक न होना चाहिये। क्योंकि उस भूमि की ज़मानत पर ही डिबैंचर निकाले जावेंगे। डिबैंचरों को सफलता पूर्वक बेचने के लिये सरकार द्वारा मूलधन की गारंटी दी जाने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती, हां सूद की गारंटी सरकार को अवश्य दे देना चाहिये। कमेटी की यह भी सम्मति है कि यदि सरकार को इस बात का संतोष हो जावे कि बैंक ने डिबैंचरों को चुकाने का प्रबंध कर लिया है तो इन डिबैंचरों को ट्रस्टी सिक्यूरिटी बना देना चाहिये।

कमेटी की सम्मति है कि डिवैंचर एक केन्द्रीय संस्था (प्रान्तीय भूमि बंधक बैंक) निकाले, और ज़िला भूमि बंधक बैंक उनको बेचे। ज़िला बैंक बंधक की ज़मानत पर प्रान्तीय बैंक से पूँजी ले ले और प्रान्तीय बैंक उस सिक्यूरिटी पर निर्भर हो कर डिबैंचर निकाले। बैंकिंग इनकायरी कमेटी की यह स्पष्ट

सम्मति है कि सहकारी साख समितियां, सहकारी सैन्ट्रल बैंक, तथा प्रान्तीय सहकारी बैंक थोड़े समय के लिये किसान को साख देने का प्रबंध करें और प्रान्तीय भूमि बंधक बैंक, तथा ज़िला भूमि बंधक बैंक अधिक समय के लिये साख दें। जहां सहकारी साख समिति तथा भूमि बन्धक बैंक दोनों ही कार्य कर रहे हों वहां दोनों संस्थाओं को एक दूसरे से बिलकुल स्वतंत्र रहना चाहिये हां दोनों में सहयोग होना आवश्यक है। यदि कोई साख समिति का सदस्य भूमि बंधक बैंक से ऋण लेने के लिये प्रार्थना पत्र दे तो बैंक समिति से उसके विषय में पूछ तांछ करले, किन्तु समिति ऋण की ज़िम्मेदार न होगी।

कमेटी, भूमि बंधक बैंक के लिये बाहर की डिपाज़िट लेना उचित नहीं समझती। कारण यह है कि बैंक को अधिक लम्बे समय के लिये ऋण देना पड़ता है अस्तु, डिपाज़िट के रुपये से ऋण देना बैंक के लिये उचित न होगा।

भूमि बंधक बैंकों की सफलता के लिये सहकारितावादी यह आवश्यक समझते हैं कि बैंकों को यह अधिकार दिया जावे कि वे बिना अदालत में गये अपना रुपया वसूल करने के लिये बंधक रक्खी हुई भूमि ज़ब्त करलें और बेच दें। अधिकतर प्रान्तीय बैंकिंग इनकायरी कमेटियों ने इस मांग का विरोध किया है। उन का कहना है कि जब बैंक इस अधिकार का उपयोग करेंगे तब उनके विरुद्ध जनता में विरोधी वातावरण तैयार हो जावेगा। दूसरा कारण उनके विरोध का यह है कि यदि बैंकों को यह अधि-

कार दे दिया गया तो वे ऋण देते समय भूमि की भली भांति जांच पड़ताल नहीं करेंगे। उनके विचार से यदि बैंक सावधानी से कार्य करें और उनका प्रबन्ध अच्छा हो तो मुक़दमेबाज़ी की आवश्यकता न पड़ेगी। सैन्ट्रल बैंकिंग इनकायरी कमेटी के सामने भी यह प्रश्न उपस्थित किया गया था। जो लोग कि बैंकों को यह अधिकार देने के पक्ष में हैं उनका कथन है कि यदि कोई विशेष क़ानून बनाकर यह अधिकार न दे दिया गया तो फल यह होगा कि बैंक को अदालत की शरण लेनी पड़ेगी, अथवा रजिस्ट्रार द्वारा नियुक्त किये गये पंच के सामने मुक़दमा लड़ना पड़ेगा। भारतवर्ष में सम्पत्ति का हस्तांतरकरण क़ानून (Transfer of Property Act) तथा ज़ाब्ता दीवानी (सिविल प्रोसीडयोर कोड) इतने पेचीदे हैं कि बैंक को डिगरी कराने में बहुत समय तथा धन नष्ट करना होगा। इसका फल यह होगा कि बैंक को कार्य करने में बहुतसी रुकावटों का सामना करना होगा तथा डिबैंचरों की बिक्री पर इसका बुरा असर होगा। योरोपीय देशों में भी भूमि बंधक बैंकों को विशेष क़ानून बना कर यह अधिकार दिया गया है कि यदि देनदार ऋण नहीं चुकाता तो बैंक बिना अदालत में गये भूमि को बेच सकता है। सैन्ट्रल बैंकिंग इनक्वायरी कमेटी का मत है कि बिना यह अधिकार दिये डिबैंचर बेच कर कार्यशील पूँजी प्राप्त नहीं की जासकती, जनता डिबैंचरों को न लेगी। अस्तु, कमेटी ने इस मांग का समर्थन किया है साथ ही यह भी कहा है कि देनदार को यह अधिकार

होना चाहिये कि यदि वह समझता है कि बैंक का कार्य न्यायपूर्ण नहीं है तो वह अदालत की शरण में जासके। बैंक के देनदार के हिस्सेदार तथा अन्य किसी लेनदार को भूमि के बैंक द्वारा ज़ब्त कर लेने पर यदि हानि होती हो तो वह भी अदालत की शरण में जा सकता है।

भारतवर्ष के कुछ प्रान्तों में भूमि हस्तांतर क़ानून (लैंड-ऐलीनियेशन ऐक्ट) लागू है। इस क़ानून के अनुसार कुछ जातियां खेति-हर जातियां मानली गई हैं और उन्हीं जातियों के लोग भूमि मोल ले सकते हैं। यह क़ानून सारे पंजाब, तथा संयुक्त प्रान्त, मध्यप्रान्त और सैन्ट्रल एरिया* के किसी भाग में लागू है। इन प्रान्तों में भूमि बन्धक बैंकों को अधिकार मिलजाने पर भी भूमि के बेचने में अड़चन होगी। इसके अतिरिक्त बहुतसे प्रांतोंमें लगान काश्तकारी क़ानून (टिनैन्सी ऐक्ट) के कारण भी भूमि के बेचने में रुकावटें होंगीं। प्रान्तीय बैंकिंग इनक्वायरी कमेटियों का मत है कि भूमि हस्तांतर क़ानून से विशेष लाभ नहीं हुआ है। अस्तु,इन क़ानूनों में ऐसा परिवर्तन कर देना चाहिये कि बैंकों को भूमि के बेचने में कोई रुकावट न हो।

---

* सीधे भारत सरकार द्वारा शासित प्रान्त अर्थात्, देहली, अजमेर-मेरवाड़ा और कुर्ग।

दसवां परिच्छेद

अपव्यय को बंद करने वाली तथा मितव्ययता बढ़ाने वाली समितियां ।

धर्म गोला—धर्म गोला सहकारी साख समिति की ही भांति समितियां हैं। वे अनाज का ऋण देते हैं। किसान को निर्धन होने के कारण अपना अनाज फ़सल के काटते ही बेच देना पड़ता है, क्योंकि उसे मालगुज़ारी, लगान तथा महाजन का ऋण देना होता है। जिस समय किसानों को अनाज बेचना पड़ता है उस समय अनाज का भाव बाज़ार में बहुत गिरा हुआ होता है। इसका फल यह होता है कि किसानों के पास इतना अनाज नहीं रहता कि वह वर्ष भर अपने कुटुम्ब का भरण पोषण कर सके। इस कारण किसान को साहूकार से बहुत अधिक सूद पर अनाज उधार लेना पड़ता है, यदि किसान दो या तीन महीने तक रुक सके तो उसको अपने अनाज की अच्छी क़ीमत मिल सकती है।

गोला किसान को उस समय जब कि भाव गिरा होता है, अनाज नहीं बेचने देता है, वह किसानों को अनाज उधार देता है, तथा यथेष्ट अनाज एकत्रित कर लेता है कि जिससे अकाल के समय उसका उपयोग किया जासके।

गोला अपरिमित दायित्व वाली संस्था होती है उसका संगठन सहकारी साख समिति जैसा ही होता है। साधारण सभा

को सारे अधिकार होते हैं तथा प्रबन्ध कारिणी सभा दैनिक कार्यवाही की देख भाल करती है। गोला की पूँजी, अनाज की डिपाज़िट, अनाज के दान, तथा अनाज के ऋण से इकट्ठी होती है। सदस्य केवल प्रवेश फ़ीस अनाज में नहीं देते। समिति अधिक से अधिक कितना अनाज डिपाज़िट के रूप में ले सकती है तथा कितना उधार ले सकती इसका निश्चय साधारण सभा ही करती है। प्रत्येक सदस्य को सभा द्वारा अनाज की निर्धारित राशि गोले को देनी पड़ती है जो सूद सहित कुछ वर्षों बाद दे दी जाती है। गोला सदस्यों को ही अनाज उधार देता है, अनाज बीज के लिये, कुटुम्ब के पालन के लिये, तथा अधिक सूद पर लिये हुए अनाज को वापस देने के लिये, दिया जाता है। सूद २५ फ़ी सदी लिया जाता है। अनाज के गोले बिहार-उड़ीसा, पंजाब, मैसूर तथा कुर्ग में पाये जाते हैं।

रहन सहन सुधार समितियां—भारतीय ग्रामों में सामाजिक तथा धार्मिक कार्यों पर इतना अधिक अपव्यय होता है कि जिसका कुछ ठिकाना नहीं। यद्यपि किसान निर्धन होता है फिर भी जन्म, मरण, तथा विवाहोत्सव के समय पर जाति बिरादरी को दावत देने में, तथा अन्य कार्यों में कर्ज़ ले कर व्यय कर देता है। इस अपव्यय को रोकने के लिये कुछ प्रान्तों में समितियां स्थापित की गई हैं। पंजाब में और संयुक्त प्रान्त में इन समितियों ने प्रशंसनीय कार्य किया है। पंजाब के रजिस्ट्रार का कथन है कि जिन स्थानों पर यह समितियां स्थापित हो गई

हैं वहां के रहने वालों को इनके द्वारा प्रति वर्ष हज़ारों रुपये की बचत होती है। जो मनुष्य कि इन समितियों के सदस्य होते हैं वे तो नियमानुसार इस प्रकार का अपव्यय कर ही नहीं सकते, साथ ही वे अन्य किसी मनुष्य के विवाहोत्सव में सम्मिलित नहीं हो सकते जहां इस प्रकार का अपव्यय किया जावे। इस प्रकार समिति का प्रभाव ग़ैर सदस्यों पर भी पड़ता है। समिति विवाह तथा अन्य उत्सवों में कितना व्यय होना चाहिये यह निश्चित करती है और जो सदस्य नियमानुसार कार्य नहीं करता उस पर जुर्माना करती है। यह समितियां गांवों की सफ़ाई का कार्य भी करती हैं। गलियों को साफ़ तथा उनको एकसा करवाती हैं। कुछ समितियां गांव वालों को हवा का महत्व बतलाकर मकानों में खिड़की इत्यदि बनवाती हैं। यह समितियां ज़ेवर बनवाने का भी विरोध करती हैं क्योंकि आर्थिक दृष्टि से तो यह हानिकर है ही साथ ही चोरों का भी भय रहता है। यह समितियां सदस्यों को खाद गड्ढों में रखने के लिये बाधित करती हैं, जिससे कि गांव गन्दा न हो और खाद उत्तम तैयार हो। पंजाब में एक समिति ऐसी है जिसके सदस्यों ने कंडे न बनाने और सारे गोबर की खाद बनाकर खेतों में डालने का निश्चय किया है। संयुक्त प्रान्त और पंजाब में यह समितियां ग्राम सुधार का कार्य किसी न किसी रूप में अवश्य कर रही हैं। इनकी संख्या पंजाब प्रान्त में लगभग ३०० के है। संयुक्त प्रान्त में इन समितियों की संख्या पंजाब से बहुत अधिक है। यह समितियां अधिकतर प्रांत

प्रान्त के पूर्व में हैं। गांवों की सफ़ाई, खाद बनाने, शिक्षा देने, तथा अपव्यय को रोकने का कार्य यह समितियां विशेष रूप से करती हैं। संयुक्त प्रान्त के सहकारिता विभाग के उच्च अधिकारियों का मत है कि इस प्रान्त की समितियां अन्य सब प्रान्तों की समितियों से अधिक सफलता पूर्वक कार्य कर रही हैं। अन्य प्रान्तों में सहकारी साख समितियां ही इस बात का प्रयत्न करती हैं कि अपव्यय कम हो। काश्मीर राज्य में सहकारी साख समितियों ने यह नियम बना लिया है कि यदि कोई सदस्य सामाजिक कार्यों पर अधिक व्यय करे तो उस पर जुर्माना किया जावे।

पंजाब में एक अत्यन्त उपयोगी संस्था को जन्म दिया गया है वह है मुक़द्दमे तय करने वाली समितियां। आज हमारे देश में मुक़द्दमेबाज़ी का रोग इस बुरी तरह से फैला हुआ है कि सम्भवतः और किसी भी देश में इतनी निर्धन जनसंख्या मुक़द्दमे बाज़ी में इतना अधिक अपव्यय न करती होगी। प्रत्येक गांव वर्ष भर में हज़ारों रुपये वकीलों और अदालत की भेंट कर देता है। घर में भोजन नहीं है किन्तु कर्ज़ लेकर, पशुधन बेचकर हमारे मूर्ख किन्तु निर्धन किसान भाई मुक़द्दमे लड़ते हैं। इस भयंकर अपव्यय को रोकने के लिये पंजाब में लगभग ५० सहकारी समितियां स्थापित की गई हैं। समिति की पंचायत समिति के सदस्यों के मुक़द्दमे फ़ैसल करती है। यदि पंचायत समझौता नहीं करा पाती है तो पंच नियुक्त कर दिये जाते हैं और वे फ़ैसला करते हैं। पंचों का फ़ैसेला अदालत को मान्य होता है।

किन्तु ऐसे बहुत कम अवसर आते हैं जब कि समिति को फ़ैसला अदालत के द्वारा मनवाना पड़े। सदस्य स्वयं फ़ैसले को मान लेते हैं। संयुक्त प्रान्त में पंचायतें स्थापित की गई हैं जो मुक़द्मों का फ़ैसला करती हैं।

मितव्ययिता सहकारी समितियां—पंजाब में मितव्ययिता सहकारी समितियां यथेष्ट संख्या में स्थापित कर दी गई हैं। यह समितियां नौकर पेशा तथा मजदूरों में मितव्ययिता के भाव का प्रचार करती हैं। भारतवर्ष में नौकर पेशा तथा मजदूरों में मितव्यता के भाव को जागृत करने की अत्यन्त आवश्यकता है क्योंकि इस देश में सामाजिक तथा धार्मिक कृत्यों में मनुष्य को अत्याधिक व्यय करना पड़ता है। ग्राम निवासी को कुछ न कुछ अवश्य बचाना चाहिये नहीं तो उसे बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। यह समितियां अपने सदस्यों से प्रति मास उनके वेतन में से कुछ लेकर जमा करती हैं तथा उस रुपये को किसी लाभदायक कार्य में लगाकर अपने सदस्यों के लिये सूद प्राप्त करती हैं। दो या चार वर्षों के उपरान्त वह रुपया सूद सहित वापिस कर दिया जाता है। यह समितियां अधिकतर कर्ज नहीं देतीं हां कुछ समितियां जितना रुपया कि जमा हो जाता है उसका ६० फ़ी सदी कर्ज दे देती हैं। यदि समिति जमा किये हुए रुपये से अधिक कर्ज़ दे दे तो वह मितव्ययिता समिति नहीं रह जाती, वह साख समिति हो जाती है। पंजाब में लगभग १००० मितव्ययिता समितियां हैं जिनमें लगभग आठ लाख रुपये जमा हैं।

इन समितियों में स्कूलों के अध्यापक ही अधिकतर सदस्य होते हैं, किन्तु कुछ वकील, पुलिसमैन, रेलवे कर्मचारी तथा दूकानदार भी इन समितियों के सदस्य हैं। पंजाब में सवा सौ समितियां केवल स्त्रियों की हैं जिन्होंने एक लाख रुपये जमा कर लिये हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं यदि मितव्ययिता का प्रचार किया जावे तो यथेष्ट रुपया जमा किया जा सकता है, क्योंकि बहुत से साधारण स्थिति के नौकर तथा मज़दूर यथेष्ट रुपया जमा करते हैं।

पंजाब में स्कूलों के विद्यार्थियों के लिये भी मितव्ययिता समितियां स्थापित की गई हैं। एक स्कूल की समिति ने एक नई योजना निकाली है। विद्यार्थियों से जंगलों की कुछ चीज़ों को इकट्ठा करने के लिये कहा जाता है और जब वे अधिक राशि में इकट्ठी होजाती हैं तो बेच दी जाती हैं और विद्यार्थियों के नाम उनका रुपया जमा कर लिया जाता है।

मदरास में ऐसी लगभग सवा सौ समितियां हैं तथा संयुक्त प्रान्त, अजमेर मेरवारा, और बम्बई में भी थोड़ी सी समितियां मज़दूरों में सफलता पूर्वक कार्य कर रही हैं। यह समितियां अपने सदस्यों को होम-सेफ़ (छोटी तिजोरी) देकर कुछ रुपया बचाने की आदत डाल सकती हैं। बम्बई, बिहार, तथा संयुक्त प्रान्त में कुछ समितियों ने ऐसा किया भी है।

मुठिया पद्धति—बंगाल तथा बिहार में सहकारी साख समितियों ने मुठिया पद्धति चलाई है। प्रति दिन प्रत्येक सदस्य से मुट्ठी भर चांवल अथवा और कोई अनाज लिया जाता है और

उसको बेचकर सदस्यों के नाम रुपया जमा कर दिया जाता है। बंगाल के एक ज़िले में सहकारो साख समितियों ने १६२६ में मुठियों द्वारा प्राप्त अन्न ८३,००० रु० को बेचा। गांवों में मितव्ययिता का प्रचार करने का यह ढंग अच्छा है।

लगान देने वाली समितियां--पंजाब में लगान देने वाली कुछ समितियां स्थापित को गईं हैं। यह समितियां प्रति वर्ष फ़सल पर सदस्यों से कुछ रुपया वसूल करती हैं। इनका उद्देश्य है कि वे इस प्रकार इतना रुपया जमा कर लेंगी कि प्रत्येक सदस्य को जमा के सूद से उनकी लगान दे दें। यह समितियां अभी नई हैं इस कारण इनके विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता।

चारा सहकारी समितियां—थोड़ीसी समितियां पंजाब तथा बड़ौदा राज्य में चारे को अच्छी फ़सल के समय एकत्रित करके अकाल में सदस्यों को देने के लिये स्थापित की गई हैं।

पंजाब में पचास के लगभग समितियां फ़सल नष्ट हो जाने पर सदस्यों की सहायता करने के लिये स्थापित की गईं हैं। समितियां हर फ़सल पर कुछ अनाज किसान से लेती हैं और उसको बेचकर उसका मूल्य उसके नाम जमा कर देती हैं। यह रुपया सदस्य साधारणतः निकाल नहीं सकता। जिस साल उसकी फ़सल नष्ट हो जाती है तभी उसको रुपया निकालने की आज्ञा मिलती है।

ग्यारहवा परिच्छेद

दूध सहकारी समितियां

भारतवर्ष की अधिकतर जनसंख्या शाकाहारी है फिर भी ऐसे मनुष्यों की संख्या कुछ कम नहीं है जिन्हें मांस खाने में कोई आपत्ति नहीं और जो कभी कभी थोड़ा बहुत मांस खाते भी हैं, किन्तु जिन्हें मांस खाने को नहीं मिलता। बात यह है कि जिन देशों की आबादी घनी है वे मांसाहारी हो ही नहीं सकते। भूमि की उत्पादन शक्ति तथा जन संख्या का घनिष्ट सम्बन्ध है।

घने आबाद देश के लिये मांस विलास की वस्तु है। जितनी भूमि पर एक गाय का निर्वाह होता है उतनी भूमि पर अनाज उत्पन्न करके आठ मनुष्यों का भोजन उत्पन्न किया जा सकता है। अस्तु, मांसाहारी केवल वही देश हो सकते हैं जहां भूमि तो बहुत है किन्तु जन संख्या कम है, जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, अरजैनटाइन, इत्यादि। अथवा वे घने आबाद देश मांसाहारी हो सकते हैं जो धनवान होने के कारण विदेशों से मांस मंगाकर खा सकते हैं, जैसे इङ्गलैंड इत्यादि। भारतवर्ष में जो लोग मांस खाते हैं उन्हें यथेष्ट मांस खाने को कहां मिलता है? साधारण भारतीय स्वाद के लिये कभी कभी मांस खा लेता है।

इस कारण भारतवर्ष की अधिकांश जनसंख्या को शाकाहारी बनना पड़ा है, अस्तु, भारतीयों के स्वास्थ्य के लिये फल और दूध की बड़ी आवश्यकता है। यदि देश में दूध की उत्पत्ति का

हिसाब लगाया जावे तो ज्ञात होगा कि प्रति मनुष्य प्रति दिन आध छटांक से भी कम दूध उत्पन्न होता है। ऐसी परिस्थित में मनुष्यों का स्वास्थ्य कैसे अच्छा रह सकता है विशेष कर नगरों में तो दूध की समस्या ने विकट रूप धारण कर लिया है। शहरों को छोड़ दीजिये वहां तो दूध का अकाल है, छोटे छोटे क़स्बों में भी दूध उचित मूल्य पर नहीं मिलता। शहरों में समीपवर्ती गांवों से दूध आता है अथवा शहरों में रहने वाले घोसी और ग्वाले दूध को बेचते हैं। किन्तु दोनों ही प्रकार का दूध अच्छा नहीं होता।

गांव से आया हुआ दूध—अधिकतर नगर के समीपवर्ती पांच या छः मील की दूरी से किसान दूध बेचने आता है। जो किसान भैंस रखता है वह शहर के किसी हलवाई से बातचीत कर लेता है। हलवाई खोये के हिसाब से दूध के दाम देता है। यदि हलवाई किसान से आठ सेर का दूध लेता है तो ग्राहक को चार सेर का ही देता है। किसान हलवाई को शुद्ध दूध देता है किन्तु वह सायंकाल शहर में नहीं आ सकता इस कारण सायंकाल का दूध प्रातः काल के दूध के साथ मिला कर लाता है। अतएव नगर-निवासियों को बासी दूध पीने को मिलता है। इस प्रकार दूध पीने वाले और बेचने वाले दोनों को हानि उठानी पड़ती है, क्योंकि किसान को अपना दूध सस्ते दामों पर देना होता है।

शहरों के ग्वालों का दूध-शहरों के घोसी अपनी गाय भैंसों को लेकर शहरों में ही रहते हैं। शहरों में स्थान की कमी होने के कारण इन ग्वालों के स्थान बहुत गन्दे रहते हैं जहां एक

प्रकार के कीड़े उत्पन्न हो जाते हैं जो कि दूध को दूषित कर देते हैं। विशेषज्ञों का कथन है कि शहरों के कीटाणु युक्त दूध को पीने के ही कारण बहुत से रोग उत्पन्न हो जाते हैं। दूध बहुत शीघ्र बिगड़ने वाली वस्तु है इस कारण ग्वालों का दूध स्वास्थ्य के लिये हानिकारक होता है। ग्वाला भी उसी क़ीमत पर दूध बेचता है जिस पर हलवाई। शहरों में दूध पहुंचाने की समस्या अत्यन्त महत्वपूर्ण है और सहकारी समितियों के द्वारा ही वह हल हो सकती है।

दूध सहकारी समितियों का संगठन–समीपवर्ती चार पांच गांवों के लिये सहकारी समिति का संगठन किया जावे। जितने किसान गाय या भैंस रखते हैं उनको सदस्य बनाया जावे। प्रत्येक सदस्य को अपना सब दूध समिति के दफ़्तर में निश्चित समय पर पहुंचाने पर बाध्य किया जावे। जर्मनी के बवेरिया प्रान्त में समितियों ने किसानों का दूध इकट्ठा करने का एक अच्छा ढंग निकाला है। प्रत्येक सदस्य को बारी बारी से अपने गांव भर का दूध इकट्ठा करके अपनी गाड़ी में समिति के कार्यालय में लाना पड़ता है, इससे दूध इकट्ठा करने में सुविधा होती है। डैनमार्क की सहकारी समितियों ने दूध इकट्ठा करने के लिये एक नवीन योजना निकाली है। जिन प्रदेशों में पक्की सड़कें हैं वहां की समितियां मोटर के द्वारा सदस्यों का दूध इकट्ठा करती हैं। प्रत्येक गांव के सदस्य निश्चित समय पर अपना दूध लेकर गांव के बाहर सड़क के किनारे आ जाते हैं और मोटर आकर

उनका दूध ले जाती है। जहां सड़कें अच्छी नहीं हैं वहां यह काम घोड़ा गाड़ियों से लिया जाता है। समिति प्रत्येक सदस्य को एक बर्तन देती है जो प्रति दिन भाप द्वारा साफ़ किया जाता है। इसी बर्तन में भर कर सदस्य दूध समिति को देता है।

समिति का मन्त्री वैतनिक कर्मचारी होता है उसे दूध के धंधे का जानकर होना आवश्यक है। डैनमार्क तथा जर्मनी में दूध के धंधे की शिक्षा प्राप्त विद्यार्थी मन्त्री बनाये जाते हैं। मन्त्री दूध की जांच करता है, यदि दूध में मिलावट होती है तो सदस्य पर जुर्माना किया जाता है। दूध नापकर सदस्य के हिसाब में जमा कर लिया जाता है, कहीं कहीं दूध का मूल्य मक्खन के औसद से दिया जाता है।

दूध आ जाने पर समिति का मन्त्री समिति की गाड़ी में दूध नगर को भेज देता है। समिति मक्खन बनाने की मशीन तथा अन्य आवश्यक वस्तुएँ अपनी पूँजी से ख़रीदती है। मन्त्री उन यन्त्रों के उपयोग से उत्तम जाति का मक्खन तैयार करता है। समिति अधिक राशि में मक्खन बनाती है और डिब्बों में भर कर विदेशों में बेचती है। एक ज़िले की सहकारी दूध समितियां मिल कर एक दूध सहकारी यूनियन का संगठन करती हैं। यूनियन का मुख्य कर्तव्य यह है कि वह समितियों द्वारा बनाये हुए मक्खन के लिये विदेशों में बाज़ार तैयार करे और अपने से संबंधित समितियों की देख भाल करे। यूनियन विदेशों में विज्ञापन देती है, और समितियों को उचित परामर्श

देती है। यही कारण है कि हम संसार के प्रत्येक देश में डैन्मार्क का मक्खन बिकता हुआ देखते हैं।

संगठन—समिति के जितने सदस्य होते हैं उनकी सम्मिलित सभा को साधारण सभा कहते हैं। साधारण सभा अपनी बैठक में प्रबंध कारिणी समिति का चुनाव करती है। साधारण सभा दूध के भाव को निर्धारित करती है तथा पानी मिलाने वालों के लिये दंड निश्चित करती है। साधारण सभा ही मन्त्री को नियुक्त करतो है। मन्त्री का केवल यही काम नहीं होता कि वह दूध का प्रबंध करे वरन वह सदस्यों के पशुओं की प्रति सप्ताह जांच करता है और पशु पालन के विषय में उन्हें सदैव परामर्श देता रहता है, पशुओं को किस प्रकार चारा खिलाना चाहिये, तथा पशुओं को किस प्रकार स्वस्थ और स्वच्छ रक्खा जा सकता है, इत्यादि बातें वह सदस्यों को बतलाता रहता है। यदि सदस्य का पशु बीमार हो जावे तो मन्त्री उसका उपचार करता है।

समिति के हिस्से सदस्य खरीदते हैं। हिस्सों का मूल्य किश्तों में चुकाया जा सकता है। समिति सहकारी बैंकों से कर्ज़ा लेती है और उचित सूद पर सदस्यों को पशु खरीदने के लिये रुपया उधार देती है। समिति उत्तम जाति के सांड पालती है और सदस्यों के पशुओं की नस्ल को उत्तम तथा अधिक दूध देने वाला बनाती है। समिति चारे का भी प्रबंध रखती है जो आवश्यकता पड़ने पर सदस्यों को उधार दिया जाता है।

भारतवर्ष में दूध का धन्धा—भारतवर्ष में पशुओं की

दशा इतनी शोचनीय है जितनी संसार के किसी भी देश में नहीं है। यहां गाय का इतना ह्रास हो चुका है कि वह दूध के लिये सर्वथा अनुपयुक्त होगई है। डेनमार्क में १८ सेर से कम दूध देने वाली गाय को कोई मनुष्य नहीं पालता। भारतवर्ष में पशुओं के ह्रास के दो मुख्य कारण हैं; एक तो अच्छे सांडों की कमी, दूसरे चारे का अभाव। एक सीमा तक सहकारी समितियां इन दोनों समस्याओं को हल कर सकती हैं।

अभी तक भारतवर्ष में इस महत्वपूर्ण विषय की ओर जनता का ध्यान नहीं गया है हां, कुछ स्थानों पर सहकारी दूध समितियां स्थापित हुई हैं जिनमें कलकत्ता के समीपवर्ती गांवों की समितियां विशेष उल्लेखनीय हैं।

कलकत्ता जैसे विशाल जन संख्या से परिपूर्ण नगर को प्रति दिन बहुत दूध की आवश्यकता रहती है। समीपवर्ती गांवों से ही कलकत्ते को दूध मिलता है। सहकारी दूध समितियों के स्थापित होने से पूर्व और जिन गांवों में समितियां स्थापित नहीं हुई हैं वहां आज भी दूध कलकत्ते तक लाने का धंधा ग्वाले करते हैं। ग्वाले गाय नहीं रखते उनका काम केवल गांव से दूध लाकर बेचना भर है।

ग्वाले हर छमाही गाय वालों को कुछ पेशगी रुपया दे देते हैं और उनसे यह तय कर लेते हैं कि वह उसी ग्वाले को दूध देगा। ग्वाला प्रातः काल ही अपने दूध दुहने वालों को गाय वालों के मकानों पर भेज देता है और वे आसामी की गायों को दुह लाते हैं।

ग्वाला उस दूध को कलकत्ते ले जाता है अथवा दही या छाना वनाता है। ग्वाला कलकत्ते विना पानी मिलाये दूध नहीं ले जाता, पानी मिलाते समय वह इस बात का भी ध्यान नहीं रखता कि पानी गंदा तो नहीं है। यह पानी मिला हुआ दूध वड़े वड़े पीतल के कलसों में भर लिया जाता है और उनके मुँह में पत्तियां ठूँस दी जाती हैं जिससे दूध न छलके। यह कलसे भी साफ़ नहीं रहते। ग्वाला माहवारी टिकिट ले लेता है और प्रातः काल रेल द्वारा दूध कलकत्ते तक लाता है। गाड़ियों में ग्वालों के लिये एक तीसरे दर्जे का डिब्बा रहता है जो प्रायः बहुत गंदा होता है।

सत्रह वर्ष व्यतीत हुये जब श्री डोनोवन तथा श्री जे. एम. मित्रा का इस ओर ध्यान आकर्षित हुआ और उन्होंने प्रयन्त करके एक दूध सहकारी समिति की स्थापना की। आरम्भ में तो गांव वाले तैयार ही नहीं हुये किन्तु एक गांव के किसान जिनका ग्वाले से झगड़ा हो चुका था और जो इस चिन्ता में थे कि वे अपना दूध कलकत्ते में किस प्रकार वेचें, तैयार होगये और पहली समिति की स्थापना होगई।

समिति ने किसानों को ग्वाले से एक रुपया फ़ी मन अधिक दिया और उनके हिसाब की पासवुक हर किसान को दे दी। समिति भी दूध दुहने वालों को नौकर रखती थी। आरम्भ में समिति को वहुत थोड़ा लाभ हुआ किन्तु समिति ने दो बातों में सफलता प्राप्त की, एक तो किसानों को दूध की क़ीमत अधिक दी दूसरे ग्राहकों को शुद्ध दूध दिया। क्रमशः समितियों की संख्या

बढ़ने लगी, समितियों के सदस्यों को दूध का अधिक मूल्य मिलते देख अन्य गांव में भी किसान समितियों के सदस्य बनने को लालायित होने लगे और कलकत्ते में भी समिति के दूध की मांग बढ़ने लगी। सन १६१६ में समितियों ने एक दूध सहकारी यूनियन संगठित की, और तबसे समितियों की संख्या बड़ी तेजी से बढ़ती गई। इस समय लगभग ११० दूध समिनियां यूनियन से संबंधित हैं जिनके लगभग ६५०० सदस्य हैं। केवल कलकत्ते में ही यूनियन लगभग १५० मन दूध प्रति दिन बेचती है।

दूध की उत्पत्ति का केन्द्र ग्राम्य दूध समितियां हैं, दूध यूनियन तो केवल बेचने का प्रबन्ध करती है। जैसा ऊपर लिखा जा चुका है ग्राम्य समिति के सदस्यों को साधारण सभा, प्रबन्ध कारिणी समिति, सभापति, मन्त्री तथा मैनेजर को चुनती है। प्रत्येक सदस्य को केवल एकही वोट होती है फिर वह चाहे कितने हिस्से खरीद चुका हो। यूनियन की केवल ग्राम्य दूध सहकारी समितियां ही सदस्य होसकती हैं। दूध यूनियन, समितियों को पूँजी देती है, उनका निरीक्षण तथा नियन्त्रण करती है, और कलकत्ते में दूध बेचती है।

समितियों के प्रतिनिधि यूनियन के डायरैक्टरों का चुनाव करते हैं। प्रत्येक समिति की एक वोट होती है। केवल सभापति और उपसभापति नहीं चुने जाते। डायरैक्टर ही यूनियन के कार्य की देख भाल करते हैं।

यूनियन ने कुछ भण्डार स्थापित किये हैं जिनमें कर्मचारी

नियुक्त किये गये हैं। भंडार पर समितियों का दूध ले लिया जाता है। जिन समितियों के समीप कोई भंडार नहीं है वे समीपवर्ती रेलवे स्टेशन पर दूध भेज देती हैं। भण्डारों के मैनेजर रेलवे के द्वारा दूध कलकत्ते भेज देतेहैं। कलकत्ते में यूनियन का एक कर्मचारी दूध ले लेता है तथा ग्राहकों को दूध भेज दिया जाता है।

भंडार में जब दूध आता है तो भंडार का मैनेजर यन्त्र से उसकी जांच करता है तथा शुद्ध बर्तनों में भरे हुये दूध को कलकत्ते भेजता है। यूनियन एक पशु चिकित्सक को रखती है जो समितियों के सदस्यों के पशुओं की जांच करता है और जहां पशु रक्खे जाते हैं उन स्थानों को देखता है कि गन्दे तो नहीं हैं। इन सब कर्मचारियों के ऊपर एक सरकारी कर्मचारी है जो कि यूनियन का चेयरमैन है। सरकार ने इस कर्मचारी की सेवायें सहकारिता विभाग को दे दी हैं। दूधको वैज्ञानिक ढंगसे सुरक्षित तथा शुद्ध रखनेके लिये यूनियन ने एक फैक्टरी स्थापित की है। यूनियन मोटर, बैलगाड़ी, तथा ठेलों के द्वारा ग्राहकों के पास दूध पहुंचाती है, और अपने कर्मचारियों तथा एजेंटों के द्वारा दूध बेचती है।

आरम्भ में यूनियन के पास बहुत थोड़ी पूँजी थी किन्तु इस समय यूनियन की कार्यशील पूँजी एक लाख से कुछ ही कम है, और निजी पूँजी अस्सी हजार रुपये से कुछ अधिक है। यूनियन का वार्षिक लाभ लगभग रु० २०००० है। यूनियन ने बहुत से प्रायमरी स्कूल खोले हैं जिससे कि सहकारी समितियों के सदस्यों के लड़के शिक्षा पासकें, यूनियन ने उन गांवों में कुएं भी खुदवायेहैं,

तथा बढ़िया सांड़ खरीद कर उन गांमों में रक्खे हैं जिससे कि सदस्यों के पशुओं की जाति अच्छी बने। बङ्गाल में कलकत्ते के अतिरिक्त ढ़ाका, दार्जलिंग, तथा अन्य स्थानों में भी सहकारी समितियां स्थापित होगई हैं जिनकी संख्या ७५ से कुछ ऊपर है। प्रान्त में यह आन्दोलन अत्यन्त सफल हुआ है और भविष्य में अधिकाधिक उन्नति की आशा है।

कलकत्ते की भांति मदरास में भी दूध सहकारी समितियां स्थापित की गई हैं। यह समितियां संख्या में लगभग एक दर्जन हैं जो कि एक यूनियन से सम्बन्धित हैं। इनके अतिरिक्त बम्बई में सात डेयरी हैं, तथा संयुक्त प्रान्त में भी एक सहकारी डेयरी है।

पंजाब में यद्यपि दूध सहकारी समितियों का तो संगठन नहीं हुआ है किन्तु कुछ ऐसी समितियां स्थापित की गई हैं जो कि प्रति सप्ताह अपने सदस्यों की गायों का दूध नापती हैं और उसका लेखा रखती हैं। समिति का निरीक्षक सदस्यों को बतलाता है कि कौनसी गाय का रखना व्यापारिक दृष्टि से लाभदायक है और किस गाय को रखना हानिकारक है। किन्तु भारतवर्ष में जब तक दूध का धंधा उन्नत नहीं होजाता तब तक यह आशा करना कि इस प्रकार की समितियां अधिक स्थापित होंगी स्वप्न मात्र है।

बारहवां परिच्छेद

भूमि की चकबन्दी करने वाली समितियां

भारतवर्ष कृषि प्रधान देश है, लगभग ७४ प्रति शत जन संख्या खेती बारी में लगी हुई है । गृह-उद्योग-धंधों के नष्ट हो जाने के कारण उनमें लगी हुई जन संख्या भी खेती बारी में घुस पड़ी, साथ ही बढ़ती हुई जन संख्या के लिये भी खेती के अतिरिक्त और कोई भरण पोषण का साधन नहीं रहा । इन सब कारणों से खेती में लगी हुई जन संख्या बराबर बढ़ती गई। फल यह हुआ कि प्रति किसान भूमि कम होती गई । देश में खेती बारी के योग्य जितनी भूमि थी वह सब जोत ली गई, यहां तक कि चरागाह भी खेतों में परिणित कर दिये गये फिर भी भूमि की कमी रही।

किसानों के पास भूमि थोड़ी तो है ही साथ ही वह छोटे छोटे टुकड़ों में विभाजित है और यह टुकड़े एक दूसरे के पास न होकर बिखरे हुए हैं। यदि किसी किसान के पास बीस बीघा भूमि है तो वह एक ही स्थान पर न हो कर भिन्न भिन्न स्थानों पर छोटे छोटे टुकड़ों में विभाजित है । बम्बई, पंजाब तथा अन्य प्रान्तों में तो कहीं कहीं खेत केवल तीन या चार वर्ग गज के रह गये हैं, और कहीं कहीं ऐसे खेत भी पाये जाते हैं जो मीलों लम्बे हैं और कुछ गज चौड़े हैं। खेतों के बिखरे हुए होने से खेती बारी की उन्नति होना असम्भव होता जाता है। किसान का समय, परिश्रम, तथा

पूँजी का इतना अधिक अपव्यय होता है कि यह आशा करना कि खेतों के बिखरे होने पर भी वैज्ञानिक ढंग से खेतों की उन्नति हो सकेगी केवल स्वप्न मात्र है।

खेतों के बिखरने का कारण यह है कि भारतवर्ष में हिन्दू तथा मुसलमानों में यह रीति है कि बाप के मरने पर भूमि बराबर बराबर सब लड़कों में बांट दी जावे। फल यह होता है कि प्रत्येक लड़का बाप के हर एक खेत में से बराबर हिस्सा लेना चाहता है। उदाहरणार्थ यदि किसी के पास चार भूमि के टुकड़े हैं और उसके चार बेटे हैं तो चारों बेटे प्रत्येक टुकड़े में से एक-चौथियाई हिस्सा लेंगे, फल यह होगा कि वे चार टुकड़े सोलह टुकड़ों में विभाजित हो जावेंगे। क्रमशः खेत बटते बटते एक दूसरे से दूर पड़ जाते हैं और क्षेत्रफल में बहुत छोटे होजाते हैं। इस का कारण यह है कि प्रत्येक टुकड़े की उत्पादन शक्ति भिन्न होती है, और इस कारण अच्छी तथा बुरी भूमि सब ही के बराबर टुकड़े कर के बांट दिये जाते हैं।

बिखरे हुये खेतों का खेती बारी पर बहुत बुरा प्रभाव होता है। कुछ खेत तो इतने छोटे होजाते हैं कि जिन पर खेती बारी हो ही नहीं सकती, वह भूमि बेकार पड़ी रहती है, और बहुत सी भूमि खेतों की मेड़ों में नष्ट होजाती है। किसान को एक खेत से दूसरे खेत पर जाने में बहुत अधिक समय नष्ट करना पड़ता है, वह न तो उन बिखरे हुये खेतों की ठीक तरह से देख भाल ही कर सकता है और न वैज्ञानिक ढंग से खेती ही कर सकता है।

यदि किसान के सब खेत एक ही स्थान पर हों तो वह एक कुआ खोद कर सिंचाई कर सकता है किन्तु प्रत्येक बिखरे हुए खेत पर तो वह कुआ नहीं खोद सकता। जो चीज़ उसके पड़ोसी उत्पन्न करते हैं वह उसको भी उत्पन्न करनी पड़ती है, उन बिखरे हुए खेतों की न तो वह बाढ़ ही बना सकता है और न वह फ़सल की रखवारी ही कर सकता है। छोटेछोटे खेतों की मेढ़ों के कारण किसानों में आपस में झगड़ा होता है जिसके कारण मुक़दमे बाज़ी तक की नौबत आती है। सच तो यह है कि बिखरे हुए खेतों के होते हुए खेती-बारी की उन्नति नहीं हो सकती।

जब तक हिन्दू-ला तथा मुस्लिम-ला में परिवर्तन न किया जावे तब तक यह समस्या हल नहीं हो सकती। बम्बई प्रान्त में दो बार इस बात का प्रयत्न किया गया कि इस सम्बन्ध में एक क़ानून बना दिया जावे किन्तु दोनों बार प्रयत्न असफल रहा। १६२७ में सर चुन्नीलाल मेहता (जो बम्बई सरकार के रैवन्यू मैम्बर थे) ने इस सम्बन्ध में एक बिल कौंसिल में पेश किया किन्तु भयंकर विरोध के कारण वापिस ले लिया। हां, बड़ौदा राज्य में एक ऐसा क़ानून अवश्य बना दिया गया है जिससे कि कोई खेत एक निश्चित सीमा के बाद बांटा नहीं जा सकता।

भारतवर्ष में सर्व प्रथम पंजाब में सहकारिता के द्वारा खेतों की चकबन्दी का काम प्रारम्भ किया गया और वहां आशाजनक सफलता प्राप्त हुई। १६२० में पंजाब के अन्तरगत भूमि की चकबन्दी करने वाली समितियां स्थापित की गईं। इन समितियों का

उद्देश्य यह है कि छोटे छोटे बिखरे हुए खेतों को वे इस प्रकार बांटें कि किसानों को एक ही स्थान पर अथवा दो या तीन बड़े टुकड़ों में अपनी सारी भूमि के बराबर भूमि मिल जावे।

पंजाब प्रान्तीय सहकारिता विभाग ने इस कार्य के लिये रैवन्यू विभाग के कर्मचारियों को नियुक्त किया है। वहां सब-इंसपैक्टर गांवों में जाकर किसानों को बिखरे हुए खेतों से उत्पन्न होने वाली हानियां तथा चकबंदी के लाभ समझाता है। यदि वह समझता है कि इस गांव में समिति की स्थापना हो सकती है तो वह एक सभा करता है और उन्हें बतलाता है कि किस प्रकार चकबन्दी की जावेगी। जब किसान समिति के सदस्य बनने को तैयार हो जाते हैं तो समिति की स्थापना की जाती है और एक पंचायत चुन ली जाती है। चकबन्दी समिति का सदस्य या तो ज़मींदार हो सकता है अथवा मौरूसी किसान।

प्रत्येक सदस्य को समिति का सदस्य बनने के उपरान्त निम्नलिखित बातों को स्वीकार करना पड़ता है।

(१) प्रत्येक सदस्य को यह सिद्धांत मानना पड़ता है कि चकबन्दी करने के लिये बिखरे हुए खेतों का नया बटवारा आवश्यक है।

(२) यदि किसी योजना को दो-तिहाई सदस्य स्वीकार कर लेंगे तो वह योजना प्रत्येक सदस्य को स्वीकार करनी होगी।

(३) स्वीकृत योजना के अनुसार अपने खेतों को सदा के लिये वह छोड़ देगा।

(४) यदि किसी प्रकार का झगड़ा उपस्थित हो गया तो पंच नियुक्त किये जावेंगे और जो फ़ैसला वे देंगे वह सबको मान्य होगा।

यद्यपि समिति के नियमों के अनुसार यदि दो-तिहाई सदस्य किसी योजना को स्वीकार करलें तो हर एक को वह मान्य होगी किन्तु यह नियम अभी काम में नहीं लाया जाता है, और जब तक सब सदस्य अपने टुकड़ों को दे कर नये खेत लेना स्वीकार नहीं कर लेते तब तक योजना सफल नहीं होती।

सब-इंस्पैक्टर गांव में कितने प्रकार की ज़मीन है, यह निश्चित करता है, और नवीन बटवारे में इसका ध्यान रक्खा जाता है। सब-इंसपैक्टर थोड़ी सी भूमि सार्वजनिक हित के लिये सुरक्षित रखता है। जैसे सड़क इत्यादि। कूओं तथा सिंचाई के अन्य साधनों में किसानों का हिस्सा निर्धारित किया जाता है। जब यह सब निश्चय हो जाता है तो पंचायत कर्मचारी की सहायता से एक नक़शा तैयार करती है जिसमें नवीन बटवारा दिखाया जाता है। यह नक़शा साधारण सभा के सामने रक्खा जाता है। यदि सब सदस्य उसको स्वीकार कर लेते हैं तब तो वह लागू होता है नहीं तो फिर से नया बटवारा होता है और नया नक़शा तैयार किया जाता है। इस प्रकार कभी कभी तीन चार बार तक नक़शे तैयार करने पड़ते हैं और कभी कभी

महीनों का परिश्रम केवल एक किसान के हट से नष्ट हो जाता है। जब नये बटवारे को सब लोग स्वीकार कर लेते हैं तब उन्हें नये खेत दे दिये जाते हैं और उन खेतों की रजिस्ट्री करा दी जाती है।

इस योजना में किसी को हानि नहीं होती और किसी को भी पहिले से कम भूमि नहीं मिलती। कोई जबरदस्ती नहीं की जाती और छोटे तथा बड़े सभी किसान इस से लाभ उठा सकते हैं। चकबन्दी समितियां इन बिखरे हुए खेतों की केवल चकबन्दी करती हैं, भूमि का लड़कों में बंटना नहीं रोक सकतीं।

पंजाब में चकबन्दी का कार्य आरम्भ होने पर १६२० से १६२५ तक केवल ४०,००० एकड़ भूमि की चकबन्दी हुई किन्तु १६२८ में २ लाख एकड़ की चकबन्दी प्रान्त में हो चुकी थी। क्रमशः यह आन्दोलन बल पकड़ता गया और अब बड़ी शीघ्रता से आन्दोलन बढ़ रहा है। पहले आठ वर्षों में केवल १६२,००० भूमि की चकबन्दी हुई किन्तु १६२६ में ४८,०७६ एकड़ तथा १६३० में ५०,००० एकड़ से अधिक की चकबन्दी हुई। अब प्रति वर्ष लगभग ५०,००० एकड़ भूमि की चकबन्दी होजाती है। हिसाब लगाने से ज्ञात होता है कि प्रति एकड़ २ रु० ५ आ० चकबन्दी पर व्यय होता है किन्तु अभी तक किसान और जमींदार इस खर्चे को नहीं देना चाहते इस कारण सरकार ही यह व्यय करती है।

चकबन्दी समितियों ने बिखरे हुए खेतों की संख्या को घटा कर पहले से दशांश तक कर दिया है। चकबन्दी के दो लाभ तो स्पष्ट देखने में आये हैं। जिन गांवों में चकबन्दी हो चुकी है वहां कूएं अधिक संख्या में खोदे गये हैं तथा जो भूमि कि पहिले जोती नहीं जाती थी उस पर खेती बारी होने लगी है। साथ ही उन गांवों में खेती बारी का विशेष उन्नति हुई है। खेतों के बिखरे होने से जो हानियां थीं वे क्रमशः दूर हो रही हैं। गांवों में एक प्रकार से नया जीवन आ गया है। यही नहीं कहीं कहीं किसानों ने अपने खेत पर ही मकान बना कर रहना प्रारम्भ कर दिया है।

किन्तु इस प्रकार चकबन्दी करने में बहुत सी कठिनाइयां उपस्थित होती हैं। जिस योजना में प्रत्येक किसान को राजी करना आवश्यक हो उसका सफल होना संदेह जनक ही होता है। प्रत्येक भूमि का स्वामी अपनी पैतृक भूमि को अच्छा समझता है, पुराने विचारों के बुड्ढे किसान कोई परिवर्तन नहीं चाहते, छोटे किसानों को चकबन्दी में अधिक लाभ नहीं दिखाई देता क्योंकि उनके पास एक या दो ही खेत होते हैं, तथा मौरूसी काश्तकार समझा है कि यदि उसने अपनी भूमि को बदल लिया तो उसके अधिकार जाते रहेंगे। यह तो कठिनाइयां हैं ही, गांव का पटवारी भी चकबंदी नहीं चाहता वह समझता है कि चकबंदी हो जाने से उसकी आमदनी कम हो जावेगी। अस्तु, इस कार्य के करने वालों को अत्यंत धैर्य तथा सहानुभूति से काम करना चाहिये।

जब किसी किसान के हट से योजना असफल होती दिखाई दे तो उस किसान की भूमि को छोड़ देने से काम चल सकता है। परन्तु ऐसे बहुत से उदाहरण हैं कि जिनमें बहुत समय तथा रुपया खर्च करके योजना तैयार करने पर भी कतिपय किसानों के राज़ी न होने से सब किया धरा व्यर्थ होगया। सन् १६२८ में यह नियम बनाया गया कि यदि ६० प्रति शत सदस्य किसी योजना को स्वीकार करें तो उस योजना को लागू किया जावे।

कुछ विद्वानों का कथन है कि बिना कोई क़ानून बनाये चकबन्दी का कार्य सफलता पूर्वक नहीं किया जासकता। कुछ लोगों का तो यहां तक कहना है कि सहकारिता आन्दोलन इस कार्य के लिये उपयुक्त नहीं है इस कारण क़ानून के द्वारा चकबन्दी होना चाहिये। किन्तु यह सब मानते हैं कि सहकारिता के इतने अधिक लाभ हैं कि जब तक इसके द्वारा सफलता मिल रही है तब तक इसको न छोड़ना चाहिये। जहां जहां चकबन्दी का कार्य सफलता पूर्वक होचुका है वहां लोगों की राय क़ानून बनाने के पक्ष में है। परन्तु अभी वह समय नहीं आया जब कि क़ानून के द्वारा चकबन्दी का कार्य किया जावे, क्योंकि यदि कोई ऐसा क़ानून बनाया गया तो यह कार्य रेवन्यू विभाग के कर्मचारी करेंगे, फल यह होगा कि जनता का विश्वास हट जावेगा और बड़ी कठनाइयां उपस्थित होंगी।

१६२८ में रजिस्ट्रार सम्मेलन ने निम्न लिखित आशय का एक प्रस्ताव पास किया था। "जहां तक स्थानीय परिस्थित सहकारी

समितियों के द्वारा चकबन्दी के लिये अनुकूल हो वहां तक समितियां यह कार्य करें। इस सम्मेलन में कुछ सदस्यों ने बड़े जोरों से यह बात कही थी कि इस कठिन समस्या को हल करने का एक मात्र साधन सहकारिता आन्दोलन है, क्योंकि किसान का अपनी भूमि से इतना घनिष्ट सम्बन्ध है कि यदि उसकी भूमि क़ानून द्वारा ले ली गई तो बड़ी अशांति फैलने का डर है। किन्तु केवल सहकारिता आन्दोलन के द्वारा चकबन्दी करने से काम बहुत धीरे होता है और समय बहुत लगता है। इस कारण विद्वानों की सम्मति में जबरदस्ती तो करनी ही पड़ेगी नहीं तो अधिक कार्य न हो सकेगा, किन्तु अभी वह समय नहीं आया है। जब साधारण जनता इसके लाभों से पूर्ण परिचित होजावेगी तब क़ानून का सहारा लिया जा सकेगा। पंजाब में प्रान्तीय सरकार ने उन गांवों की मालगुज़ारी दो फ़सलों के लिए आधी करदी है कि जो चकबन्दी करवा लेंगे। इसका फल यह हुआ है कि पिछले तीन सालों में यह कार्य तीव्र गति से बढ़ा है।

मध्यप्रान्त में चकबन्दी—मध्य प्रान्त की छत्तीसगढ़ कमिश्नरी में खेत बहुत छोटे तथा बिखरे हुये हैं। प्रान्तीय सरकार ने कई बार इस समस्या को हल करने का विचार किया, रैविन्यू तथा बन्दोबस्त विभाग के कर्मचारियों ने चकबन्दी करने का प्रयत्न भी किया किन्तु सफलता न मिली। इसी कमिश्नरी में जमींदारों तथा मालगुज़ारों ने भी चकबन्दी करने का प्रयत्न किया

किन्तु किसानों ने इस कार्य से सहयोग नहीं किया क्योंकि मालगुज़ार यह प्रयत्न करते थे कि अच्छी भूमि उन्हें मिलजावे। छत्तीसगढ़ डिवीज़न में एक तो भूमि बहुत प्रकार की है दूसरे क़ानूनी अड़चनें भी हैं। इस कारण प्रान्तीय सरकार ने कानून के द्वारा चकबन्दी करना उचित समझा। अस्तु, १६२८ में एक एक्ट बनाया गया जो अभी केवल छत्तीसगढ़ डिवीज़न में ही लागू किया गया है।

इस एक्ट के अनुसार कोई दो या अधिक गांव की भूमि के स्वामी, अथवा स्थायी रूप से जोतने वाले, चकबन्दी के लिए प्रार्थनापत्र दे सकते हैं। किन्तु शर्त यह है कि उनके पास गांव की भूमि का एक निश्चित भाग होना चाहिये। एक्ट के अनुसार गांव के कमसे कम आधे भूमि जोतने वाले (permanent right holders) जिनके पास गांव की दो तिहाई भूमि हो यदि चकवंदी की किसी योजना को मानलें और अधिकारियों से उसकी स्वीकृत मिल जावे तो वह योजना अन्य लोगों पर लागू हो जावेगी। इस कार्य को करने के लिये एक आफ़िसर नियुक्त किया गया है। आफ़िसर को योजना की स्वीकृत उच्च अधिकारियों से लेनी पड़ती। यदि उस योजना में किसी को कुछ भी अपत्ति नहीं हो तो डिप्टीकमिश्नर अथवा सैटिलमेन्ट आफ़िसर स्वीकृति देसकता है, नहीं तो सैटिलमेन्ट कमिश्नर स्वीकृति देता है। इसकी कोई अपील नहीं होसकती केवल प्रांतीय सरकार इस बंटवारे को पलट

सकती है। अभी एक्ट नया है किंतु ज्ञात होता है कि इससे कुछ कार्य हो जावेगा। यह कार्य रैविन्यू विभाग के द्वारा होता है।

सयुक्त प्रान्त—संयुक्त प्रान्त में लगभग २६ सहकारी भूमि चकवंदी समितियां स्थापित हो चुकी हैं। यह समितियां पंजाब समितियों को ही आदर्श मान कर कार्य कर रही हैं। किंतु संयुक्त प्रान्त में कठिनाइयां अधिक हैं। एक तो यहां गांवों में भूमि बहुत प्रकार की होती है दूसरे ज़मीदार तथा किसान भी बहुत प्रकार के हैं जिनके अधिकारों में बहुत भिन्नता है। इस कारण यह नहीं कहा जा सकता कि यह आन्दोलन कहां तक सफल होगा।

देशी राज्यों में बड़ौदा तथा काश्मीर में चकवंदी समितियां सफलता पूर्वक कार्य कर रही हैं, इन दोनों राज्यों में चकबंदी का काम क्रमशः बढ़ता जारहा है।

भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त तथा देशी राज्य में बिखरे हुये छोटे छोटे खेतों की समस्या ने विकट रूप धारण कर लिया है। प्रत्येक प्रान्त में इस समस्या पर विचार होरहा, किन्तु क्या उपाय काम में लाया जावे इसका निश्चय नहीं हो पाया है। पंजाब ने इस आन्दोलन में पथ प्रदर्शक का कार्य किया है।

तेरहवा परिच्छेद

सफ़ाई तथा स्वास्थ्य रक्षक समितियां

भारतवर्ष के गांवों में गन्दगी का तो मानो साम्राज्य है। जिधर देखिये उधर ही कूड़ा तथा गन्दगी के ढेर दिखलाई देंगे। कारण यह है कि गांव की गलियां कभी साफ़ नहीं की जातीं, घरों के समीप ही अथवा कुछ ही दूरी पर खाद के ढेर लगा दिये जाते हैं जिनसे गन्दगी तो बढ़ती ही है साथ ही मक्खियां इतनी अधिक उत्पन्न हो जातीं हैं कि सारे गांव में वे फैली रहती हैं। यह मक्खियां गन्दगी को और भी बढ़ाती हैं। गन्दे पदार्थ पर बैठ कर मक्खियां अपने परों तथा पैरों में गन्दगी ले आती हैं और उस गन्दगी को भोजन, वस्त्र, जल, तथा बच्चों के चेहरे तथा पशुओं के मुँह, नाक, तथा आंख में डाल देती हैं। इनके प्रभाव से दूषित होकर भोजन और जल ग्राम निवासियों के स्वास्थ्य का नाश करते हैं।

गांवों में यह एक साधारण सी बात है कि घरों में शौचगृह नहीं होते। स्त्री पुरुष सभी बाहर खेतों में शौच के लिये जाते हैं। यदि कोई नदी, ताल, अथवा पोखरा हो तब तो कुछ कहना ही नहीं वह गांव भर के लिये शौच-स्थान का काम देता है। इस आदत से होने वाली भयंकर हानियों से अनभिज्ञ होने के कारण ही लोग इस विषय में इतने उदासीन रहते हैं।

भारतीय ग्रामीण जनता निर्धन होने के कारण जूते कम

पहिनती है। अधिकतर किसान नंगे पैर ही रहते हैं। फल यह होता है कि खेतों तथा मैदान में पड़े हुए मल से पैरों का सम्पर्क होने से एक प्रकार का कीड़ा मनुष्य की खाल पर असर करता है और मनुष्य को हुक वर्म नामक रोग हो जाता है। यह रोग भारतीय ग्रामों में विशेष कर बंगाल में बहुत होता है। जब मल सूख जाता है तो वह हवा के द्वारा इधर उधर फैल जाता है। हवा में मल के कण उड़ते रहते हैं जो भोजन, और जल को दूषित करते हैं तथा बच्चों की आंखों में पड़ कर उनकी आंखों को ख़राब करते हैं। गांवों में धूल भी बेहद होती है इससे स्वास्थ्य की बहुत हानि पहुंचती है।

गांव वाले अपने मकान बनाने के लिये मिट्टी खोदते हैं जिससे गांव के आस पास बहुत से गड्ढे हो जाते हैं। वर्षा का जल इन गढ़ों में भर जाता है और रुक जाने के कारण सड़ने लगता है। मलेरिया ज्वर के कीड़ों का तो वह उद्गम स्थान बन जाता है और गांव के निवासी ज्वर से पीड़ित होते हैं। गांव के घरों में गन्दे जल को बहा ले जाने के लिये कोई नाली नहीं होती। घरों का गन्दा पानी घरों के समीप ही सड़ता रहता है। घर अधिकतर कच्चे होते हैं और उनमें हवा के लिये कोई खिड़की इत्यादि नहीं लगाई जाती। साधारण किसान अपने पशुओं को उसी मकान में रखता है जिसमें कि वह स्वयं रहता है इस कारण वह मकान गन्दे रहते हैं।

इसके अतिरिक्त निर्धन अशिक्षित किसान स्वच्छता से

रहना नहीं जानता, जिसका परिणाम अत्यन्त भयंकर होता है और हमारे गांव भयंकर रोगों के स्थाई अड्डे वन गये हैं। जो लोग कि गांवों के वास्तविक जीवन से परिचित नहीं हैं वे समझते हैं कि गांवों में बीमारियां कम होती हैं किन्तु यह केवल भ्रम मात्र है। बात यह है कि गांवों के समाचार हम नगर निवासियों तक नहीं पहुँचते, न तो उनके पास पत्र हैं और न उनके पास प्लेटफार्म ही हैं कि जिससे वे अपने दुखों को सुना सकें। वर्षा के दिनों में तथा वर्षा के बाद तनिक गांवों में जाकर देखिये गांव में सर्वत्र लोगों को ज्वर से पीड़ित पाइयेगा प्लेग, हैज़ा, चेचक, तथा ज्वर तो मानों हमारे गांवों में स्थायी रूप से जम गये हैं। तिस पर भी हमारे गांवों में औषधियों का कोई प्रबन्ध नहीं है। सरकार तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड जो अस्पताल स्थापित करती है उसका लाभ शहर वालों को ही अधिकतर मिलता है।

कुछ वर्ष हुए अखिल भारतवर्षीय मैडिकल कानफ्रेंस (डाक्टरों की सभा) ने अपने अधिवेशन में इस आशय का एक प्रस्ताव स्वीकार किया था कि भारतवर्ष में प्रति वर्ष १ करोड़ के लगभग मनुष्य दो सप्ताह से लेकर चार सप्ताह तक के लिये उन रोगों से पीड़ित रहते हैं जो कि रोके जा सकते हैं। रोग ग्रस्त मनुष्यों के केवल वे ही दिन नष्ट नहीं होते जिनमें वह बीमार रहते हैं वरन उनकी कार्य शक्ति कुछ महीनों के लिये कम हो जाती है। यही नहीं कि इतनी अधिक संख्या में मनुष्यों

तथा स्त्रियों का उन बीमारियों के कारण जो कि प्रयत्न करने पर रोकी जा सकती हैं समय नष्ट होता है, (जिस समय में वे खेती-बारी तथा अन्य धंधों में कार्य करके देश के लिये अधिक सम्पत्ति उत्पन्न करते) वरन लाखों की संख्या में इन रोगों के कारण मनुष्य, स्त्रियां, तथा बच्चे मर भी जाते हैं।

यदि इन रोगों द्वारा होने वाली आर्थिक हानि का हिसाब लगाया जावे तो वह प्रति वर्ष करोड़ों रुपये होती है। यदि और किसी कारण से नहीं तो केवल देश की आर्थिक हानि को देखते हुए यह बहुत ज़रूरी मालूम होता है कि मैडिकल विभाग (चिकित्सा विभाग) पर अधिक रुपया खर्च करके इन रोके जा सकने वाले रोगों को रोका जावे, जिससे कि देश में सम्पत्ति की उत्पत्ति करने वालों की कार्य शक्ति नष्ट न हो और देश में अधिक सम्पत्ति उत्पन्न की जा सके। अस्तु, पाठकों को यह ध्यान में रखना चाहिये कि स्वास्थ्य का प्रश्न आर्थिक प्रश्न है। आगे हम यह बतलाने का प्रयत्न करेंगे कि सहकारिता के द्वारा स्वास्थ्य रक्षा का प्रश्न कहां तक हल किया जा सकता है।

बंगाल की ऐन्टी मलेरिया* समितियां—बंगाल में मलेरिया के कारण मनुष्य जीवन का अत्याधिक ह्रास होता है। प्रति वर्ष इसके कारण बहुत संख्या में मनुष्य मरते हैं और इसका प्रकोप प्रति वर्ष बढ़ता ही जाता है। कहीं कहीं तो मलेरिया के कारण गांव के गांव उजड़ गये हैं। यद्यपि इस भयंकर रोग

* मलेरिया निवारक।

ने प्रान्त के जीवन को तहस नहस कर रक्खा है, किन्तु सरकार अभी तक इसको रोकने का कोई भी उपाय न कर सकी। कारण यह है कि सरकार का विश्वास है कि इस कार्य में व्यय बहुत अधिक होगा साथ ही जनता का यह विश्वास था कि इस रोग को तभी रोका जा सकता है कि जब कोई बड़ी योजना तैयार की जावे और प्रान्त भर में इसको रोकने का प्रयत्न किया जावे। इस कारण बंगाल के ग्रामीण हताश से हो गये थे।

इस निराशाजनक वातावरण का मुख्य कारण यह था कि विशेषज्ञों की यह सम्मति थी कि मलेरिया ज्वर का कीड़ा रुके हुये पानी में उत्पन्न होता है और वह उत्पन्न होने के स्थान से आठ मील तक जा सकता है। अस्तु जब तक कि किसी गांव के आठ मील चारों ओर जितने गड्ढे हैं वे भर न दिये जावें अथवा रुके हुये पानी में मिट्टी का तेल न डाल दिया जावे मलेरिया नहीं रोका जा सकता"। अस्तु, यह समझ कर कि यह कार्य गांवों में रहने वालों की सामर्थ के बाहर है कोई प्रयत्न नहीं किया गया।

किन्तु डाक्टर गोपाल चन्द्र चटर्जी ने खोज करने के उपरान्त यह पता लगाया कि मलेरिया का कीड़ा अपने जन्म स्थान से आध मील से अधिक जा ही नहीं सकता। और सरकारी विशेषज्ञों का मत गलत है, अब तो संसार के प्राय: सभी विशेषज्ञों ने चटर्जी महोदय के सिद्धांत को ठीक मान लिया है। अब इस बात में संदेह नहीं रह गया है कि कीड़ा आध मील से अधिक नहीं जा सकता। डाक्टर चटर्जी ने सोचा कि इस भयंकर रोग

से छुटकारा पाने का सब से सस्ता और अच्छा उपाय यही है कि गांवों में सहकारी समितियां स्थापित की जावें। इसी उद्देश्य को ले कर डाक्टर चटर्जी ने १६१२ में ऐन्टी मलेरिया लीग स्थापित की और इस लीग के द्वारा उन्होंने प्रचार करना प्रारम्भ किया। डाक्टर चटर्जी ने सर्व प्रथम पानी हाटी में ऐन्टी मलेरिया समिति की स्थापना की और उन्हें वहां आशाजनक सफलता प्राप्त हुई। क्रमशः समितियों की संख्या बढ़ने लगी। इस आन्दोलन को गांव गांव में फैलाने के लिये डाक्टर चटर्जी ने एक संस्था की स्थापना की जिसका नाम "सैन्ट्रल कोआपरेटिव ऐन्टी मलेरिया सोसायटी लिमिटेड" है।

सैन्ट्रल सोसायटी के व्यक्ति विशेष तथा ऐन्टी मलेरिया सोसायटी, दोनों ही सदस्य होते हैं। व्यक्ति विशेष सदस्य अधिकतर डाक्टर होते हैं अथवा वे लोग कि जिन्हें इस आन्दोलन से सहानुभूति होती है। इस समय सैन्ट्रल सोसायटी की ६०० से अधिक ऐन्टी मलेरिया समितियां सदस्य हैं। सैन्ट्रल सोसायटी के व्यक्ति विशेष वार्षिक ६ रुपया चन्दा देते हैं और बहुत से सदस्यों ने सोसायटी को यथेष्ट दान भी दिया है। ग्रामीण समितियां सैन्ट्रल सोसायटी के हिस्से नहीं ख़रीदतीं। प्रान्तीय सरकार सैन्ट्रल सोसायटी को ग्रांट देती है। सैन्ट्रल सोसायटी इस रुपये से ग्रामीय समितियों की सहायता करती है तथा प्रचार कार्य में व्यय करती है। सैन्ट्रल सोसायटी के निम्न लिखित उद्देश्य हैं।

(१) प्रान्तभर में ऐन्टी मलेरिया तथा स्वास्थ रक्षक समि-

तियों की स्थापना करना जिससे कि प्रान्त में रोगों को रोका जा सके।

(२) ग्राम समितियों को, मलेरिया, काला आज़ार, प्लेग, हैज़ा, चेचक, क्षय रोग, तथा कुष्ट रोग को रोकने के तरीक़ों को बताना, तथा उन तरीक़ों को काम में लाने के लिए उत्साहित करना।

(३) प्रान्त में इस उद्देश्य की पूर्ती के लिये प्रचार करना।

(४) ग्राम्य समितियों की देख भाल करना तथा सैन्ट्रल सोसायटी की शाखायें स्थापित करना।

आरम्भ में सैन्ट्रल सोसायटी से सम्बन्धित ग्राम्य समितियों की संख्या कम थी इस कारण सोसायटी उनकी देख भाल भी करती थी। किन्तु अब ग्राम समितियों की संख्या अधिक है तथा प्रांतीय सरकार इन समितियों को डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के द्वारा सहायता देती है, इस कारण समितियों की देख भाल का कार्य डिस्ट्रिक्ट बोर्ड ही करते हैं। सैन्ट्रल सोसायटी केवल नई समितियों को स्थापित करती है।

ग्राम समितियां अपने गांव में मलेरिया तथा अन्य रोगों को रोकने का कार्य करती हैं। समितियों के सदस्यों को चार आने से लेकर एक रुपया प्रति मास चन्दा देना पड़ता है। प्रत्येक समिति एक वैद्य अथवा डाक्टर को कुछ मासिक देकर रखती है जो कि सदस्यों के घरों पर बिना फ़ीस लिये जाता है और उनकी चिकित्सा करता है। सैन्ट्रल सोसायटी समितियों को

भी आर्थिक सहायता देती है। इन समितियों ने बहुत से अस्पताल तथा स्कूल खोल रक्खे हैं। इनमें कुछ अस्पताल तो ऐसे हैं जिनसे सर्व साधारण को दवा मिलती है, और कुछ ऐसे हैं जो केवल हिस्सेदारों को ही दवा देते हैं।

जब किसी क्षेत्र में कुछ समितियां स्थापित हो जाती हैं तो सैन्ट्रल सोसायटी उनको दृढ़ करने के लिये एक ग्रूप कमेटी स्थापित कर देती है। इस कमेटी पर प्रत्येक समिति का एक प्रतिनिध रहता है। यह ग्रूप कमेटी किसी भी समिति के कार्य में दख़ल नहीं देती, वह केवल प्रत्येक समिति से कुछ चन्दा लेकर उन समितियों के लिये एक चिकित्सक रखती है। चिकित्सक को उस क्षेत्र में व्यक्तिगत प्रैक्टिस करने की स्वतंत्रता होती है परन्तु समितियों के सदस्यों के घरों पर उसे नाम मात्र थोड़ी सी फ़ीस लेकर जाना होता है। यदि कहीं काला-आज़ार रोग फैल जाता है तो एक स्थान पर एक औषधालय खोला जाता है, चिकित्सक वहां पर सब रोगियों की मुफ्त चिकित्सा करता है। औषधियां सैन्ट्रल सोसायटी देती है। यही चिकित्सक मलेरिया, चेचक, तथा हैज़े का प्रकोप बढ़ने पर उसको रोकने का उपाय करते हैं।

ग्राम समितियां मलेरिया को रोकने के लिये वर्षा से पूर्व गांव के समीपवर्ती सब गड्ढों, खाइयों, तथा पोखरों को भर देती हैं। नाले और नालियों को ऐसा खोद दिया जाता है कि वर्षा का पानी बह जावे। यह कार्य प्रति वर्ष वर्षा के आने से

पूर्व समाप्त कर दिया जाता है। वर्षा के उपरान्त तीन महीने तक गांव के समीप जहां जहां पानी इकट्ठा हो जाता है वहां वहां समिति मिट्टी का तेल छुड़वाती है, जिससे कि मलेरिया के कीटाणु उत्पन्न ही न हो सकें। समिति के प्रत्येक सदस्य को एक छपी हुई पुस्तक दी जाती है, जिसमें वह प्रति सप्ताह उसके घर के लोग कितने दिनों के लिये मलेरिया से बीमार पड़े, यह लिख देता है। समिति का मन्त्री इन पुस्तकों के द्वारा गांव में मलेरिया का प्रकोप कैसा रहा इसका लेखा तैयार करता है। इससे सदस्यों को यह ज्ञात हो जाता है कि गांव में मलेरिया घट रहा है कि नहीं।

ग्राम ऐन्टी मलेरिया सहकारी समितियां अपने सदस्यों से थोड़ा सा मासिक चन्दा लेती हैं, यदि कोई बड़ा काम करना हुआ तो सरकार तथा सैन्ट्रल सोसायटी से सहायता की प्रार्थना करती हैं। यही एक इन समितियों की कमज़ोरी है कि यह आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी नहीं हैं। इस कमी को दूर करने के लिये १६२७ में सैन्ट्रल मलेरिया सोसायटी ने एक एसोसियेशन स्थापित की, जो ग्राम समितियों के सदस्यों की बंजर भूमि पर (जिस पर वे खेती न करते हों) तरकारी तथा फलों के छोटे छोटे बाग लगवाती है, और इन बागों की पैदावार को बिकवाने का प्रबंध करती है। इस एसोसियेशन की संरक्षता में एक कमेटी स्थापित की गई है जिसके सदस्य कृषि शास्त्र के विशेषज्ञ हैं जो भूमि, खाद, तथा बीज सम्बन्धी खोज करते हैं, और गांव में समितियों के बागों को देखते हैं और उन्हें सलाह देते रहते हैं। इन बागों

में सदस्य अधिकतर अपनी आवश्यकताओं के लिये तरकारियां उत्पन्न करते हैं। इस समय तक बंगाल में ७०० से कुछ ही कम समितियां मलेरिया को रोकने का कार्य कर रहीं हैं।

संयुक्त प्रान्त आदि—संयुक्त प्रान्त में सहकारी साख समितियों ने कहीं कहीं स्वास्थ्य विभाग के कर्मचारियों की सहायता से स्वास्थ्य रक्षा का का कार्य करना आरम्भ किया है। सदस्यों को खाद गड्ढों में रखने का आदेश दिया जाता है, गांव में सफाई रखने के लिये वे उत्साहित किये जाते हैं, ट्रेंड दाइयों को रखने का प्रयत्न किया जाता है तथा सदस्यों को अस्पताल खोलने के लिये प्रोत्साहन दिया जाता है। इसके अतिरिक्त रहन सहन सुधार समितियां (better living societies) भी गांवों में सफ़ाई कराने का प्रयत्न करती हैं। इन समितियों के विषय में पिछले परिच्छेद में लिखा जा चुका है।

संयुक्त प्रान्त के अतिरिक्त बिहार उड़ीसा में कुछ सैन्ट्रल बैंक तथा सहकारी साख समितियां गांवों में सफाई तथा चिकित्सा का प्रबंध करती है। यह समितियां गांवों को साफ करती हैं, कुँओं में दवाई डलवा कर उनके जल को शुद्ध करती हैं। औषधियों को बिना मूल्य बांटती हैं, तथा आयुर्वेदिक और यूनानी अस्पताल स्थापित करती हैं। बम्बई में कुछ समितियां अस्पतालों की ग्रांट देती हैं जो औषधियां मुफ्त बांटते हैं।

लेखक की योजना—भारतवर्ष में रोगों के कारण

मनुष्य जीवन तथा शक्ति का जो भयंकर ह्रास हो रहा है वह हम पहिले ही लिख चुके हैं। हमारे गांवों की गन्दगी और वहां चिकित्सा का कोई प्रबंध न होने के कारण ही यह ह्रास निरन्तर हो रहा है। अस्तु, गांवों की सफाई तथा स्वस्थ्य रक्षा की समस्या हमारे लिये महत्व की है। यह कार्य सहकारी समितियों के द्वारा सफलता पूर्वक किया जा सकता है।

प्रत्येक गांव में एक स्वास्थ्य रक्षक समिति की स्थापना की जावे। गांव वालों को समिति के लाभ समझा कर उसका सदस्य बना लिया जावे। प्रयत्न यह होना चाहिये कि प्रत्येक घर से एक सदस्य बनाया जावे। सदस्य चार आना प्रति मास चन्दा दे। जो लोग कि बहुत ही निर्धन हों और चार आना प्रति मास चन्दा न दे सकें उनसे चन्दा न लिया जावे, उसके बदले में वह सदस्य मास में एक दिन समिति का कार्य कर दिया करे। यदि कोई सदस्य चाहे तो अपना चन्दा अनाज में भी दे सकता है, किन्तु चन्दा देने वाले तथा कार्य करने वालों में कोई अन्तर न होना चाहिये। सब प्रकार के सदस्यों के अधिकार एक ही हों।

साधारण सभा प्रति वर्ष का बजट पास करे तथा समिति का वार्षिक प्रोगाम निर्धारित करे। साधारण सभा एक पंचायत, और उसका सरपंच, दो मन्त्री तथा एक कोषाध्यक्ष, का निर्वाचन करे। पंचायत साधारण सभा द्वारा निश्चित की हुई नीति के अनुसार कार्य करे। दोनों मन्त्री समिति के कार्य का संचालन करें। जो सदस्य चन्दा नहीं दें उनसे मन्त्री समिति

का निम्न लिखित काम करवाले, समीपवर्ती सब गड्ढों को पाट देना, तथा नालों के बहाव को एसा खोद देना कि जिससे पानी एक स्थान पर न रुक सके। जब वर्षा समाप्त हो तब जहां जहां पानी रुक जावे वहां समय समय पर मिट्टी का तेल डलवादे । इसके अतिरिक्त ऐसे सदस्यों से औषधालय में काम लिया जावे तथा समय पड़ने पर वे लोग और स्थानों पर भेजे जा सकते हैं।

समिति चिकित्सक की सलाह से कुछ औषधियों का संग्रह करे, जो साधारण रोगों में काम आ सकें। औषधियों को सदस्यों में बांटने का कार्य दूसरे मन्त्री के हाथ में रहे। समिति गांव की आवश्यकता के अनुसार गांव से कुछ दूरी पर गड्ढे खुदवावे। यह गड्ढे ६ या ७ फीट गहरे हों, गड्ढों के चारों ओर अरहर अथवा फूस की आढ़ खड़ी कर दी जावे, तथा गड्ढे के मुँह पर दो लकड़ी के तख्ते रख दिये जावें यही गड्ढे गांव के शौचगृह हों। सदस्यों को मैदानों में शौच जाने की हानियां बता कर वहां शौच जाने पर बाधित किया जावे । कुछ शौचगृह (Pit Latrines) स्त्रियों के लिये पृथक कर दिये जावें। समिति एक मेहतर को नौकर रक्खे जो गांव के घरों का कूड़ा प्रति दिन भर कर इन शौचगृहों में डाल आया करे, और गांव की गलियों की सफाई रक्खे। समिति प्रत्येक सदस्य को गड्ढों में खाद बनाने के लाभों को समझावे और उन्हें गड्ढों में खाद तैयार करने के लिये उत्साहित करे। प्रत्येक किसान दो गड्ढे तैयार करे, एक में से जब खाद निकाली जावे तब दूसरे में

गोबर इत्यादि भरा जावे। किसान प्रतिदिन गोबर, भूसा, तथा चारा जो पशुओं के पास बच रहता है, तथा घरों का कूड़ा इन गड्ढों में डाल दिया करे। इससे दो लाभ होंगे एक तो गंदगी दूर हो जावेगी दूसरे अच्छी खाद उत्पन्न होगी। समिति शौच-गृहों में बनी हुई खाद को बेच दे।

समीपवर्ती गांवों की स्वस्थ्य रक्षक समितियां मिल कर एक समिति बनावें। बड़ी समिति एक चिकित्सक तथा एक ट्रेंड दाई नियुक्त करे। इन कर्मचारियों को निजी प्रैक्टिस करने की आज्ञा न होनी चाहिये। दाई का यह कार्य हो कि वह बड़ी समिति से सम्बन्धित गांवों में बच्चा जनाने का काम करे। प्रत्येक सदस्य से बच्चा जनाने की फ़ीस आठ आना से एक रुपया तक ली जावे। डाक्टर बीच के गांव में रहे और प्रति दिन दो गांवों में जाकर वहां जो भी बीमार हों उनको दवा दे। प्रत्येक गांव में तीसरे दिन डाक्टर जाया करे। इस बीच में सभा का मन्त्री वह दवा जो डाक्टर बतला जावे, रोगियों को देता रहे। यदि किसी रोगी को देखने के लिये डाक्टर को उसके घर जाना पड़े तो उस सदस्य से आठ आना या चार आना जैसा भी निश्चित किया जावे समिति फ़ीस ले। यदि कोई गांव का रहने वाला समिति का सदस्य न बने तो उससे डाक्टर तथा नर्स की दुगनी फ़ीस ली जावे, वह रुपया उसी समिति में जमा किया जावे।

चिकित्सक का मुख्य कार्य केवल चिकित्सा करना ही न होगा वरन रोगों से बचने के उपाय बतलाना भी उसका कर्तव्य

होगा। सप्ताह में एक दिन नियत किया जावे जब डाक्टर मैजिक लैनटर्न चित्रों तथा चार्टों की सहायता से व्याख्यान देकर बतलावे कि रोग क्यों उत्पन्न होते हैं और उनसे बचने के क्या उपाय हैं। बड़ी समिति के कार्य कर्ता चिकित्सक की सलाह से प्रचार कार्य करें। जब कभी समीपवर्ती स्थान में मेला अथवा पैंठ लगे तब बड़ी समिति के पदाधिकारियों को वहां विशेषकर स्वास्थ सम्बन्धी प्रचार करना चाहिये।

यह बड़ी समितियां अथवा समूहिक समितियां मिलकर तहसील समिति का संगठन करें तहसील समितियों का कार्य केवल ग्राम समितियों की देखभाल करना, स्वास्थ रक्षा सम्बन्धी प्रचार करना, तथा ज़िले के स्वास्थ विभाग के कर्मचारियों से लिखा पढ़ी करके जब कभी उस तहसील के किसी क्षेत्र में कोई बीमारी फैल रही हो तो उसको रुकवाने का प्रयत्न करना होगा। बड़ी समितियों के प्रतिनिधि तहसील समिति में जावेंगे। इस प्रकार संगठन हो जाने से ज़िले के मैडिकल आफ़िसर तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के अधिकारियों को गांवों में बीमारी फैलने के समय सफलता पूर्वक चेतावनी दी जा सकती है और उनसे सहायता ली जासकती है।

प्रत्येक प्रान्त में एक प्रान्तीय स्वास्थ रक्षक समिति का संगठन होना चाहिये। जो ग्रामों में कार्य करने के लिये दाइयों तथा चिकित्सकों को तैयार करे, आन्दोलन का नेतृत्व ग्रहण करे, तथा प्रचार कार्य करने के लिए साहित्य प्रकाशित करे। प्रांतीय समिति को उन दाइयों में से जो इस समय गांवों में कार्य करती

हैं, साफ़, चतुर, तथा कम आयु वाली दाइयों को छांट लेना चाहिये और उन्हें छात्रवृत्ति देकर दाई कर्म की वैज्ञानिक शिक्षा दिलवाकर अपने अपने गांवों में भेज देना चाहिये। सामूहिक समितियां इन्हीं दाइयों को नौकर रक्खें। बच्चा जनाने के अतिरिक्त इन दाइयों का यह भी कर्तव्य होना चाहिये कि यह माताओं को बतावें कि बच्चों का लालन पालन किस प्रकार होना चाहिये। चिकित्सक भी ऐसे होने चाहिये जो कि गांवों के रहने वाले ही हों और गांवों में रहना पसन्द करें। प्रारम्भ में तो आयुर्वेदिक विद्यालयों में से निकले हुए युवक छांट लिये जावें तथा उनको कुछ दिनों आवश्यक शिक्षा देकर गांवों में भेज दिया जावे। इसके बाद गांवों में रहने वाले शिक्षित नवयुवकों को प्रान्तीय समिति आयुर्वेदिक विद्यालयों में भेजकर इस कार्य के लिये तैयार करावे।

प्रान्तीय सरकार प्रान्तीय समिति को आवश्यकतानुसार ग्रांट (सहायता) दे। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड सामूहिक समिति को चिकिसक तथा दाई का आधा वेतन दें।

इस प्रकार यदि संगठित ढंग पर सहकारिता आन्दोलन का उपयोग स्वास्थ रक्षा आन्दोलन के लिए किया जावे तो ग्रामों में स्वास्थ रक्षा की समस्या हल हो सकती है। प्रान्तीय समिति एक पत्रिका प्रकाशित करे, ट्रैक्ट छपवावे, चित्र तैयार करावे, फ़िल्म तैयार करावे, तथा मैजिक लैनटर्न के लिये स्लाइडस तैयार कराकर प्रचार के लिए गांवों में भेजे।

———

चौदहवां परिच्छेद

विक्रय तथा कृषि सम्बन्धी सहकारी समितियां

योरोपीय देशों में खेती-बारी की उन्नति के लिये सहकारिता का खूब उपयोग किया गया है। सहकारिता के द्वारा इन देशों में किसानों की आर्थिक स्थिति में जो सुधार हुआ है वह वर्णनातीत है। कोई ऐसा काम नहीं है जिसमें सहकारिता का उपयोग न हुआ हो। खेतों की पैदावार को बेचने में, किसानों के लिये आवश्यक वस्तुएं खरीदने में, पशुओं की जाति को उन्नत करने में, पैदावार को अच्छे मूल्य पर बेचने के लिये रोक रखने में, तथा अन्य कार्यों में सहकारिता का सफलता पूर्वक उपयोग किया गया है। किसी किसी देश में तो किसानों ने खेती के यंत्रों को बनाने का काम भी सम्मिलित रूप में आरम्भ कर दिया है। संक्षिप्त में यह कहा जा सकता है कि खेती-बारी सम्बन्धी प्रत्येक कार्य सहकारिता के द्वारा हो सकता है। किन्तु प्रश्न यह है कि क्या प्रत्येक कार्य के लिये भिन्न भिन्न समितियां स्थापित की जावें। डैनमार्क के अतिरिक्त जर्मनी, इटली, तथा स्वीटज़रलैंड में साख समितियां ही यह कार्य भी करती हैं। लेखक का मत यह है कि भारतवर्ष में ग्रामीय साख समितियों को यह सब कार्य भी करने चाहिये, क्योंकि भारतवर्ष में सब कार्यों के लिये पृथक् पृथक् समितियां स्थापित करना असम्भव हो जावेगा।

किसानों के लिये साख के बाद, खेती की पैदावार को

बेचना, आवश्यक वस्तुओं को खरीदना, तथा ग्रामीय-उद्योग-धन्धों के द्वारा सम्पत्ति उत्पन्न करना ही मुख्य कार्य हैं। किसान किसी भी देश में साधन सम्पन्न नहीं होता इस कारण उसको बीज, यन्त्र, खाद, तथा दैनिक व्यवहार की वस्तुएं गांव के बनिये अथवा दूकानदार से खरीदनी होती हैं, और उन वस्तुओं के लिये अधिक मूल्य देना पड़ता है। किसान बेचने की कला को भी नहीं जानता इस कारण वहां भी वह गांव के बनिये, तथा मंडियों के दलालों और व्यापारियों से लुटता है, और उसको अपनी पैदावार का मूल्य कम मिलता है।

यदि हम चाहते हैं कि किसान की आर्थिक स्थिति सुधरे तो केवल साख का प्रबन्ध कर देने से ही काम नहीं चलेगा, उसके लिये क्रय-विक्रय समितियों की स्थापना करना आवश्यक होगा। नहीं तो जहां हम साख समितियों के द्वारा किसान को महाजन के हाथों से बचाते, हैं वहां वही महाजन किसान को आवश्यक वस्तुएं बेचने में तथा उसकी पैदावार खरीदने में लूटता रहेगा। इस कारण क्रय विक्रय समितियों के स्थापित किये बिना किसान की स्थिति सुधर नहीं सकती।

क्रय—सहकारी साख समितियों के द्वारा यह कार्य सफलता पूर्वक किया जा सकता है। साख समिति का जब कोई सदस्य किसी वस्तु को खरीदने के लिये ऋण ले तब रुपया न देकर उसको वह वस्तु खरीद कर दी जावे। जहां क्रय समितियां स्थापित की गई हैं वहां यह तरीक़ा है कि सदस्यों से आर्डर

इकट्ठे कर लिये जाते हैं फिर एक साथ चीज़े मंगाकर सदस्यों में बांट दी जाती है,केवल नाम मात्र का कमीशन ले लिया जाता है। इससे यह लाभ होता है कि समिति थोक मूल्य पर चीज़ें ख़रीद सकती है और सदस्यों को अधिक मूल्य नहीं देना पड़ता। क्रय सहकारी समितियों की सफलता के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि बाज़ार का अध्ययन किया जावे। बाज़ार भाव के उतार-चढ़ाव का अध्ययन करने से यह लाभ होगा कि समिति मन्दो के समय खरीद करेगी। समिति के कार्य कर्ताओं को यह देखना चाहिये कि बिना मांग के कोई वस्तु न ख़रीदी जावे। आरम्भ में केवल उन्हीं वस्तुओं को ख़रीदा जावे जिनकी सदस्यों में अधिक मांग हो।

क्रय समितियां भारतवर्ष में बहुत कम पाई जाती हैं। बम्बई प्रान्त में कुछ समितियां खाद तथा खेती-बारी के यन्त्रों को ख़रीदने के लिये स्थापित की गई थीं किन्तु उनकी दशा ठीक नहीं है। इन समितियों की असफलता का मुख्य कारण–दोषपूर्ण प्रबन्ध तथा सदस्यों की उदासीनता है। जो समितियां कि क्रय विक्रय दोनों ही कार्य कर रही हैं वे कुछ सफल अवश्य हुई हैं।

<u>बीज देने वाली समितियां</u>—खेतिहरों के लिये उत्तम बीज की समस्या सदा उपस्थित रहती है। किसानों को सहकारी समितियों के द्वारा उत्तम बीज उचित मूल्य पर मिल सकता है। समिति सदस्यों से ही फ़सल के समय उत्तम बीज मोल लेकर अपने भण्डार में रख सकती है अथवा कृषि विभाग से बीज

मिल सकता है। बम्बई प्रान्त में कपास बेचने वाली समितियां बीज रखती हैं। किन्तु अभी तक इस प्रकार की समितियां भारतवर्ष के भिन्न भिन्न प्रान्तों में बहुत कम हैं।

विक्रय समितियां—यह तो पहिले ही कहा जा चुका है अधिकतर किसान ऋणी हैं इस कारण वे अपनी फ़सल बेचने में स्वतन्त्र नहीं होते। जो गांव का बनिया लेन देन करता है वही फ़सल को ख़रीदता है। छोटे किसानों को तो अपनी फसल उसी बनिये के हाथ बेचनी पड़ती है। एक तो फ़सल कटने के कुछ दिनों बाद तक बाज़ार भाव वैसे हो गिरा रहता है, दूसरे बनिया गांव में अकेला ख़रीरदार होता है इस कारण वह बाज़ार भाव से भी कम क़ीमत पर फ़सल ख़रीद लेता है। किसान बाज़ार भाव से अनिभिज्ञ होने के कारण जो मूल्य बनिया देता है ले लेता है। कपास, तम्बाकू, जूट, तथा अन्य कच्चा औद्योगिक माल खरीदने के लिए व्यापारी, (जो कि बड़े बड़े व्यापारियों के एजेन्ट होते हैं) गांवों में जाकर फ़सल को ख़रीदते हैं। यह व्यापारी विदेशों के भाव को भली भांति जानते हैं इस कारण यह लोग गांव के सीधे साधे किसानों को जो मूल्य देते हैं वह उन्हें स्वीकार करना पड़ता है। जिन किसानों के पास भूमि अधिक होती है और जिनकी पैदावार भी अधिक होती है, वे यदि समीप में कोई मण्डी होती है तो वहां पैदावार लेजाकर बेचते हैं। किंतु इन मंडियों में किसान को खूब ही लूटा जाता है। नियमानुसार टैक्स तो उसे देना ही पड़ता है, मंडी में गाड़ी खड़ी करने का

किराया तथा दलालों की दलाली उसे देनी पड़ती है। दलाल व्यापारियों से मिला रहता है और किसान को उस मूल्य पर कि जो दलाल तय करता है पैदावार वेचनी पड़ती है। जब क़ीमत निश्चित हो जाती है तो व्यापारी के गोदाम पर तुलाई शुरू होती है कहीं कहीं बांट जाली होते हैं और जब कि गाड़ी आधी तुल जाती है तब व्यापारी यह कह कर कि अन्दर वस्तु ख़राब निकली लेने से इंकार करता है। बिचारे किसान को विवश होकर कम मूल्य स्वीकार करना पड़ता है, क्योंकि उसे अकेले गाड़ी भरना असम्भव दिखाई देता है। किसान को कहीं कहीं तुलाई भी देनी पड़ती है। तदउपरान्त मूल्य चुकाते समय व्यापारी धर्मशाला, गौशाल, मन्दिर, प्याऊ, पाठशाला, तथा ऐसे ही अन्य धार्मिक कार्यों के लिए प्रति रुपया कुछ पैसे काट लेता है। शाही कृषि कमीशन का विचार है कि इस प्रकार किसान की पैदावार के मूल्य का १० या १२ प्रतिशत कट जाता है, और सेठजी दानवीर कहलाते हैं।

जब तक किसान को इस भयंकर लूट से नहीं बचाया जावेगा तब तक उसकी आर्थिक स्थिति सुधर नहीं सकती। केवल साख समितियों के स्थापित करने से कुछ न होगा।

इसी उद्देश्य से बम्बई में कपास तथा गुड़, और बंगाल में धान तथा जूट वेचने के लिए सहकारी समितियां स्थापित की गई हैं।

बम्बई की विक्रय समितियां--बम्बई प्रान्त में ६० के लगभग विक्रय समितियां कार्य कर रही हैं। इनमें ३० से ऊपर

तो केवल कपास बेचने की समितियां हैं। इनके अतिरिक्त गुड़, तम्बाकू, मिर्च, धान, तथा प्याज़ बेचने के लिए भी समितियां स्थापित की गई हैं। गुजरात तथा कर्नाटक में कपास बेचने वाली समितियों को विशेष सफलता मिली है। गुजरात के सूरत तथा भड़ौंच ज़िलों में यह समितियां अधिक संख्या में हैं। एक समिति चार या पांच गांवों की पैदावार को बेचती है। विक्रय समिति के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि प्रबन्ध ठीक हो इस कारण यह आवश्यक होता है व्यापार से परिचित लोग प्रबन्ध कारिणी समिति में रक्खे जावें जो कि समिति के कार्य को चलावें। इसी उद्देश्य से गुजरात की सब समितियों ने एक संघ स्थापित किया है जो कि इन समितियों की देख भाल करता है।

कर्नाटक प्रान्त की कपास बेचने वाली समितियों ने आशातीत सफलता प्राप्त की है, इस प्रान्त की अधिकतर कपास इन्हीं समितियों के द्वारा बेची जाती है, स्थानीय व्यापारियों ने इन समितियों का बहुत विरोध किया किंतु अब यह समितियां बलवान होगई हैं। १६३० में कर्नाटक प्रान्त की समितियों ने २३ लाख रुपये की तथा गुजरात की समितियों ने १८ लाख की कपास बेची।

क्रय विक्रय समितियां परिमित दायित्व वाली होती हैं, यह समितियां बड़े क्षेत्र में कार्य करके ही सफल हो सकती हैं क्योंकि इन समितियों को अधिक राशि में वस्तुओं को ख़रीदने तथा पैदावार को बेचने से ही लाभ हो सकता है। क्रय विक्रय समितियों के केवल वे ही लोग सदस्य बनाये जाते हैं जो

फ़सल को उत्पन्न करते हैं। जो लोग कि कुछ बेचना या खरीदना नहीं चाहते वे इन समितियों के सदस्य नहीं बनाये जाते। समिति का लाभ सदस्यों में खरीद फरोख्त के हिसाब से बांट दिया जाता है। यदि किसी किसान ने समिति के द्वारा १०० मन कपास बेची है और दूसरे ने केवल ५० मन ही बेची है तो दूसरे को पहली से आधा लाभ मिलेगा। कुछ लोगों का मत है कि पैदावार बेचने का कार्य साख से बिलकुल भिन्न है और कठिन भी है। इस कारण क्रय विक्रय का काम एक समिति करे तथा साख देने का काम दूसरी समिति करे, किन्तु एक बात ध्यान में रखने की है कि सदस्यों के लिये आवश्यक वस्तुओं को खरीदने का कार्य साख समितियां भली प्रकार कर सकती हैं। आयरलैंड में सब कार्य एक ही समिति करती है।

गुजरात की समितियां समीपवर्ती गांवों की सहकारी साख समितियों का एक सामूहिक संगठन मात्र होती हैं। तीन चार गांवों की साख समितियों के सदस्य उसके सदस्य बन जाते हैं। सदस्य एक प्रकार की ही कपास उत्पन्न करते हैं। सब कपास इकट्ठी करली जाती है और बेच दी जाती है। कर्नाटक प्रान्त की समितियां सदस्यों की कपास को इकट्ठा नहीं करतीं वरन उनकी कपास पृथक पृथक नीलाम कर देती हैं।

क्रय समिति—समिति का मैनेजर साख समितियों के द्वारा सदस्यों से आर्डर मंगवाता है। सदस्यों को जिन वस्तुओं की आवश्यकता होती है वे उसके लिये आर्डर दे देते हैं। सब

आर्डर प्रबंध कारिणी समिति के सामने रक्खे जाते हैं, समिति के आदेशानुसार मैनेजर प्रबंध कारिणी समिति के एक सदस्य की सहायता से वस्तुएँ खरीदता है। समिति उन वस्तुओं को सदस्यों के हाथ बेच देती है। लाभ सदस्यों की खरीद के हिसाब से बांट दिया जाता है। बम्बई में क्रय विक्रय यूनियन अभी तक केवल बीज, खाद, तथा खेती के यन्त्रों को ही खरीदती हैं। यह यूनियन सदस्यों के लिये बैल भी सफलता पूर्वक खरीद सकती हैं। गुजरात की कुछ समितियां अपने सदस्यों को अच्छी कपास का बीज देती हैं और कपास को पेचों से ओंटवा कर बेचती है।

क्रय विक्रय समितियों के कार्य में कुछ कठिनाइयां उपस्थित होती हैं जिनपर यहां विचार कर लेना उचित है। क्रय विक्रय समिति यदि बड़ी नहीं होगी तो वह व्यापारियों की प्रतिद्वन्दता में टिक न सकेंगी। आवश्यकता तो इस बात की है कि बहुत से गांवों के लिये एक समिति स्थापित की जावे। इन समितियों में व्यक्तियों को सदस्य बनाना ख़तरे से खाली नहीं है क्योंकि बहुत सम्भव है कि बनिये तथा व्यापारी जिनसे कि समिति प्रतिद्वंदता करने जा रही है अपने आदमियों को समिति का सदस्य बना कर समिति को नष्ट करने का प्रयत्न करें। अस्तु, केवल साख समितियां ही सदस्य बनाई जावें। किन्तु यह नियम अवश्य रक्खा जावे कि जो साख समितियों के सदस्य नहीं हैं उनकी पैदावार भी समिति बेचेगी। इसके अतिरिक्त जो लोग व्यापारी

नहीं हैं और जो समिति से प्रतिद्वंदता नहीं करते उनको सदस्य बना लिया जावे।

विक्रय समितियों के लिये पूँजो की समस्या अत्यन्त कठिन है। जब कि किसान अपनी पैदावार समिति के पास लाता है तभी वह रुपया चाहता है, समिति को यथेष्ट धन पेशगी दे देना पड़ता है। समिति की अपनी निजी पूँजी बहुत कम होती है और भारतवर्ष में वह दिन दूर है जब कि सहकारी समितियों के पास यथेष्ट डिपाज़िट आजावेगी। सैन्ट्रल बैंक समितियों को केवल उतनी ही साख देते हैं जितनी कि उनकी पूँजी होती है। अस्तु, आवश्यकता इस बात की है कि समितियां अपने सदस्यों का दायित्व हिस्सों के मूल्य से दुगना या तिगुना रखें जिससे कि सैन्ट्रल बैंक पूँजी से उतनी गुनी साख दे सकें। सहकारी विक्रय समितियों से किसान को निम्न लिखित लाभ होते हैं। किसान जब अपनी पैदावार लाता है,समिति पैदावार को तौल कर रसीद दे देती है। पैदावार लेकर पेशगी कुछ रुपया दे दिया जाता है। तथा पैदावार को अधिक से अधिक मूल्य पर बेचा जाता है।

बंगाल की जूट समितियां—बंगाल में लगभग ६० विक्रय समितियां हैं। इनमें जूट बेचने वाली समितियां अधिक हैं। १६२७ में इन समितियों ने एक होल सेल सोसायटी स्थापित की थी। यह सोसायटी एक विशेषज्ञ को नौकर रखती है जो कि बाज़ार भाव का अध्ययन करता है और सम्बन्धित समितियों को सलाह देता है। बंगाल में धान बेचने वाली समितियां भी

स्थापित की गई हैं और उनकी भी एक केन्द्रीय समिति बन गई है।

पंजाब में कुछ कमीशन पर बेचने वाली दूकानें स्थापित की गई हैं जो सदस्यों तथा ग़ैर-सदस्यों की पैदावार को बेचती हैं। वहां क्रय-विक्रय समितियां भी स्थापित की गई, जो अधिक सफल नहीं हुई।

मदरास में लगभग सवा सौ क्रय-विक्रय समितियां हैं किन्तु वे बहुत थोड़ा व्यापार करती हैं। मदरास में भी यह नहीं कहा जा सकता कि इनकी दशा अच्छी है।

इनके अतिरिक्त बिहार-उड़ीसा, मध्यप्रान्त, तथा संयुक्तप्रान्त में भी कतिपय समितियां स्थापित की गईं किन्तु उनकी दशा अच्छी नहीं है।

कृषि से सम्बन्धित अन्य समितियां।

पशु सुधार समितियां—प्रत्येक प्रान्त में कुछ ऐसी समितियां स्थापित की गई हैं जो अच्छी नस्ल के पशु उत्पन्न करने का प्रयत्न करती हैं। समितियां उत्तम जाति के सांड़ रखती हैं और सदस्यों के पशुओं की उन्नति करने के दूसरे उपाय भी करती हैं। पंजाब में इस प्रकार की डेढ़ सौ से कुछ ऊपर समितियां हैं। अन्य प्रान्तों में ऐसी समितियों की संख्या बहुत कम है। यह समितियां चरागाह ले लेती हैं और अपनी गायों की नस्ल को सुधारने का प्रयत्न करती हैं।

नौगांव गांजा उत्पन्न करने वालों की समितियां— यह एक महत्वपूर्ण उत्पादक समिति है। इसके ४००० से ऊपर सदस्य है और लगभग ६ लाख इस समिति की कार्यशील पूँजी है। इस समिति के पास गांजा और भांग उत्पन्न करने का एकाधिकार है। इस समिति को लाखों रुपया वार्षिक लाभ होता है, जिससे तीन अस्पताल, एक पशुओं का अस्पताल, चलते हैं। और तीन हाई स्कूलों, तथा ८७ ग्रामीय पाठशालाओं को सहायता दी जाती है।

बम्बई में तीन सहकारी कपास के पेच खोले गये हैं। मदरास में पांच औद्योगिक सहकारी समितियां हैं, जिनमें कल्लाकुर्ची की समिति सफलतापूर्वक कार्य कर रही है। इसके पास चावल, मूँगफली, साफ़ करने, गन्ना पेरने, तथा खांड़ बनाने की मशीनें हैं। बंगाल में एक शक्कर का कारखाना तथा चावल की मिल है। वर्मा में भी एक चावल की मिल सफलतापूर्वक कार्य कर रही है।

पंद्रहवा परिच्छेद

सहकारी श्रमजीवी तथा कृषि समितियां

योरोप में इटली ने श्रमजीवियों का सहकारी समितियों के द्वारा संगठन करके इस ओर पथप्रदर्शक का कार्य किया है। संसार में प्रत्येक देश के किसान अलहदा अलहदा खेती-बारी करते हैं, किन्तु इटली के कतिपय प्रदेशों में सामूहिक खेती-बारी सफलतापूर्वक की जा रही है। साथ ही इटली में मजदूरों ने सहकारी समितियां स्थापित करके सरकारी तथा अन्य संस्थाओं से सड़क, इमारतें, तथा रेलवे लाइनों पर काम करने के लिये ठेके लेना प्रारम्भ कर दिया है और ठेकेदार को निकाल बाहर किया है। भारतवर्ष में इस प्रकार की समितियों की अत्यन्त आवश्यकता है। यह तो हम पहले ही कह चुके हैं कि भारतवर्ष में भूमि कम होने के कारण प्रति किसान भूमि बहुत कम है, इस कारण आधुनिक वैज्ञानिक ढङ्ग से खेती-बारी नहीं हो सकती। साथ ही वह थोड़ी सी भूमि भी छोटे छोटे भूमि के टुकड़ों में बंटी हुई है जिसके कारण भारतवर्ष में खेती-बारी की अत्यन्त हीन दशा है। बिखरे हुए छोटे छोटे खेतों पर खेती-बारी करने से किसान अपना समय, श्रम, पशु शक्ति, तथा पूँजी का अपव्यय करता है और उत्पत्ति बहुत कम होती है। भूमि चकबन्दी समितियां इस ओर प्रयत्न कर रही हैं किन्तु चकबन्दी के कार्य में इतनी कठिनाइयां उपस्थित हो रही हैं कि शीघ्र ही इससे समस्या हल होती नहीं

दिखलाई देती। सामूहिक खेती इस समस्या को हल करने का अत्यन्त सरल उपाय है। इसके अतिरिक्त भारतवर्ष में साधारण मज़दूरों की दशा भी अत्यन्त शोचनीय है,ठेकेदार रेलवे कंपनियों से, सरकारी निर्माण विभाग से, तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्डों से ठेका ले लेते हैं और मज़दूरों को रख कर काम कराते हैं। यद्यपि भारतवर्ष में इस प्रकार की समितियों का श्रीगणेश भी नहीं हुआ है फिर भी इनकी उपयोगिता के कारण हम यहां इनका विवरण देते हैं।

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि सम्मिलित कृषि सहकारी समितियों को जन्म देने का श्रेय इटली को है। इटली में बड़े बड़े ज़मींदार अपनी ज़िमीदारी पर न रह कर नगरों में विलासता का जीवन व्यतीत करते थे और अपनी भूमि को कुछ लोगों को उठा देते। यह लोग गांव वालों को मज़दूर रख कर उस भूमि पर खेती करवाते थे। किसान मज़दूरों की अत्यन्त शोचनीय दशा थी, सम्मिलित कृषि सहकारी समितियों ने इस प्रथा को नष्ट करने का प्रयत्न किया है। सर्व प्रथम १८८६ में क्रिमोना के किसान मज़दूरों ने एक समिति का संगठन करके एक ज़मींदार से एक बड़ी स्टेट लगान पर ले ली और अपने सदस्यों में उसको बांट लिया। किन्तु ज़िमींदार से झगड़ा हो जाने के कारण यह प्रयत्न असफल रहा। इसके उपरान्त १८६४ में मिलन में सर्व प्रथम यह प्रयोग सफल हुआ। इसके उपरान्त यह आन्दोलन क्रमशः बढ़ता गया किन्तु पूँजी की कमी होने के

कारण आरम्भ में यह धीरे धीरे ही फैल सका। योरोपीय महायुद्ध के समाप्त होने पर इटली सरकार को बेकार सैनिकों को खेती-बारी में लगाने की आवश्यकता प्रतीत हुई। सरकार ने बहुत सी सरकारी भूमि तथा पूँजी देकर इस प्रकार की समितियों को प्रोत्साहन देना प्रारम्भ किया। इसके उपरान्त क्रमशः समितियों की संख्या बढ़ती ही गई और इस समय इटली में लगभग ५०० (पांच सौ) समितियां सफलतापूर्वक कार्य कर रही हैं।

सम्मिलित सहकारी कृषि समितियां दो प्रकार की होती हैं। एक वह समितियां जिनमें भूमि को सदस्यों में बांट दिया जाता है और प्रत्येक सदस्य अपने खेत पर खेती करता है तथा समिति को लागान देता है। दूसरे प्रकार की समितियां वह हैं जिनमें भूमि बांटी नहीं जाती वरन समिति एक मैनेजर रख कर सदस्यों के द्वारा समस्त भूमि पर खेती करवाती है और पैदावार समिति इकट्ठी करती है। समिति सदस्यों को निश्चित मज़दूरी देती है। पहले प्रकार की समितियां कैथोलिक लोगों की हैं और दूसरे प्रकार की समितियां साम्यवादियों की हैं। समिति का रूप क्या होगा यह बहुत कुछ भूमि के ऊपर निर्भर है। जिस प्रकार की समिति के लिये भूमि उपयुक्त होगी उसी प्रकार की समिति का संगठन किया जावेगा। पहिले प्रकार की समितियों में सदस्य मज़दूरों की भांति न रहकर किसानों की भांति रहते हैं, किन्तु दूसरी प्रकार की समितियों में सदस्य मज़दूरों की भांति रहते हैं।

पहिले प्रकार की समितियां ज़मीदारों से पट्टे ले लेती हैं।

पट्टे ६ से १२ वर्ष तक के लिये होते हैं। प्रत्येक सदस्य को उस की आवश्यकताओं के अनुसार भूमि उतने समय के लिये दी जाती है जितने समय के लिये समिति को पट्टा मिलता है। भूमि सदस्यों को इस शर्त पर दी जाती है कि वे उसे लगान पर और किसी को नहीं उठावेंगे, समिति को नियमित रूप से लगान देंगे, तथा भूमि का दुरुपयोग नहीं करेंगे। जब पट्टा बदलता है तब इस बात की जांच की जाती है कि किसी सदस्य को उसकी आवश्यकताओं से अधिक भूमि तो नहीं मिल गई है। यदि ऐसा होता है तो कुछ परिवर्तन हो जाता है, नहीं तो वही भूमि सदस्य को दे दी जाती है। प्रत्येक सदस्य को खेती बारी के औज़ार अपने निजी रखने पड़ते हैं किन्तु मूल्यवान बड़े यन्त्र समिति ख़रीद लेती है और उनको किराये पर सदस्यों को दे देती है। समिति सदस्यों की सुविधा के लिये क्रय विक्रय विभाग भी रखती है, जिससे सदस्यों को बीज, खाद, तथा अन्य घरेलू आवश्यक वस्तुएँ उचित मूल्य पर मिलती हैं और उनके खेतों की पैदावार बेची जा सकती है। समिति सदस्यों को पूँजी उधार देती है। किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक समिति इन सब विभागों को अवश्य रक्खे। समिति एक कृषि के जानकार को नौकर रखती है जो कि सदस्यों को खेती बारी के विषय में उचित परामर्श देता है। सब सदस्यों को अपनी पैदावार का बीमा कराना पड़ता है।

दूसरे प्रकार की समितियां भी भूमि पट्टे पर देती हैं किन्तु

भूमि सदस्यों में बांटी नहीं जाती, सामूहिक रूप से उस पर खेती होती है। समिति खेती बारी के औज़ार, यन्त्र, तथा पशु मोल लेती है। समिति के सदस्यों को उन औज़ारों तथा यन्त्रों की सहायता से समिति के मैनेजर की आधीनता में खेती बारी करनी पड़ती है। प्रत्येक सदस्य को एक छोटा सा भूमि का टुकड़ा उसके कुटुम्ब की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए दिया जाता है। यह भूमि का बंटवारा केवल खेती बारी के लिये ही किया जाता है। प्रत्येक वर्ष भूमि का फिर से बंटवारा होता है। खाद और बीज समिति देती है। सदस्य अपने कुटुम्ब वालों की सहायता से खेत पर काम करता है। जुताई, खाद डालने का काम, तथा फ़सल को साफ़ करके अनाज निकालने का कार्य समिति करती है परन्तु और सब काम किसान को करने पड़ते हैं। किसान को उस खेत की एक-तिहाई पैदावार दे दी जाती है, जो कि उसके वर्ष भर के भोजन के लिये काफी होती है। किसान को बीज तथा खाद का एक तिहाई मूल्य भी देना पड़ता है। जब समिति को सदस्य से कहीं काम लेना होता है तब सदस्य को समिति का कार्य करना पड़ता है। खेती बारी मैनेजर के कहे अनुसार ही करनी पड़ती है। चरागाह की भूमि सदस्यों में नहीं बांटी जाती। आरम्भ में इन समितियों को पूँजी प्राप्त करने में कठिनाई का सामना करना पड़ा किन्तु योरुपीय महायुद्ध के उपरान्त सरकार सहायता देने लगी है। सदस्यों को उनके खेतों की एक-तिहाई पैदावार मज़दूरी के रूप में मिलती है तथा बाकी

मज़दूरी सिक्के में दी जाती है। सब पैदावार इकट्ठी की जाती है और बेचने पर जो लाभ होता है वह मज़दूरी के अनुपात में बांट दिया जाता है। समितियां अपना बैंक तथा स्टोर भी रखती हैं।

सामूहिक रूप में सम्मिलित खेती-बारी करने वाली समितियां एक बड़े कारखाने के समान हैं। सदस्यों को मैनेजर के अनुशासन में कार्य करना पड़ता है। मैनेजर अधिकतर श्रमजीवी समुदाय का ही होता है किन्तु प्रबंध पटु तथा विशेषज्ञ होता है। यदि कोई सदस्य आज्ञा को नहीं मानता तो उसको चेतावनी दी जाती है, जुर्माना किया जाता है, मज़दूरी काट दी जाती है, तथा अधिक उदण्डता करने पर निकाल भी दिया जाता है। परन्तु यह नौबत बहुत कम आती है। समिति का सदस्य स्थानीय मज़दूर सभा का सदस्य होता है। जब कभी समिति तथा सदस्यों में झगड़ा होता है तो मज़दूर सभा की सहायता तथा परामर्श से उसका फ़ैसला हो जाता है। साधारणतः तो सदस्य तथा समिति में कोई झगड़ा होता ही नहीं। इटली में कुछ स्थानोंपर यह भी प्रयत्न किया गया कि खेतों को सदस्यों में बिना बांटे हुए सामूहिक-सम्मिलित खेती की जावे किन्तु सफलता नहीं मिली। फ्रांस, जरमनी, आयरलैंड तथा रूमेनियां में इस प्रकार की समितियां स्थापित की गई हैं।

भारतवर्ष के अन्दर बम्बई प्रान्त में दो सम्मिलित खेती बारी करने वाली समितियां स्थापित की गई किन्तु वे सफल नहीं हुई।

भारतवर्ष में इस प्रकार की समितियों की अत्यन्त आवश्यकता है किन्तु इन समितियों को सफलता पूर्वक चलाने के लिये योग्य मैनेजर तथा ऐसे कार्य कर्ताओं को आवश्यकता है कि जो गांवों में इस प्रकार की समितियों की उपयोगिता का प्रचार करें।

श्रमजीवी समितियां—सहकारी श्रमजीवी समितियों को सर्व प्रथम स्थापित करने का श्रेय भी इटली को ही है। इन समितियों का उद्देश्य ठेकेदारों को हटा कर स्वयं ठेके लेकर अपने सदस्यों द्वारा काम कराना है। आरम्भ में इन समितियों ने सड़कों को बनाने, साधारण इमारतों को तैयार करने तथा अन्य साधारण कार्यों के ठेके लिये किन्तु अब तो यह समितियां बड़े से बड़े कार्य करती हैं। यहां तक कि रेलवे लाइन डालने, तथा कानों को खोदने का काम भी करने लगी हैं। यद्यपि यह आन्दोलन १८८० में प्रारम्भ हुआ किन्तु १६०० से यह उन्नति करने लगा, और योरुपीय महायुद्ध के उपरान्त यह तीव्र गति से बढ़ने लगा। इस समय इटली में लगभग ३००० समितियां कार्य कर रही हैं।

राज्य ने इन समितियों को खूब अपनाया है, राज्य इन समितियों को आर्थिक सहायता देता है तथा राजकीय,म्यूनिसपैलटियों, तथा अन्य संस्थाओं का सारा कार्य इन्हीं समितियों को दिया जाता है।

प्रत्येक समिति एक मैनेजर नियुक्त करती है तथा एक कमेटी बनाती है। उस कमेटी में स्थानीय मज़दूर सभा के प्रतिनिधियों

को भी स्थान दिया जाता है। कमेटी में कार्य करने के लिये कोई वेतन नहीं दिया जा सकता। वैतनिक कर्मचारी कमेटी की मीटिंग में सम्मिलित हो सकते हैं किन्तु वोट नहीं दे सकते। कमेटी का प्रत्येक सदस्य एक एक सप्ताह समिति के कार्य को देख भाल करता है, उस समय सदस्य को खर्चा दिया जाता है।

समिति के सदस्य समिति के हिस्से खरीदते हैं जिनका मूल्य किश्तों में चुका दिया जाता है, किन्तु इन समितियों को पूँजी की अधिक आवश्यकता रहती है क्योंकि सदस्यों को मजदूरी देनी होती है। राज्य नेशनल इंस्टिस्यूट आफ क्रैडिट (जातीय साख संस्था) के द्वारा इन समितियों को पूँजी उधार देता है। यह संस्था अपने इंजीनियरों के द्वारा समिति के ठेके की जांच कर लेती है। आरंभ में जातीय साख संस्था समिति की साख पर थोड़ासा ऋण दे देती है। इसके उपरान्त जैसे जैसे समिति, कार्य करती जाती है, अपने कार्य का सर्टिफ़िकेट दिखलाकर जातीय साख संस्था से उधार ले लेती है। जिस संस्था के लिये समिति कार्य कर रही है उस संस्था के प्रमाण पत्र के आधार पर समिति को ऋण दे दिया जाता है और वह संस्था जातीय साख संस्था को यथा समय मूल्य चुका देती है। यदि समिति को अपने कार्य का पेमैन्ट-आर्डर (चालान) मिल जाता है तो जातीय संस्था उसकी ज़मानत पर रुपया दे देती है और स्वयं वसूल कर लेती है।

सदस्यों की मज़दूरी तथा काम के घन्टे मज़दूर सभा

(Trade Union) के परामर्श से नियत किये जाते हैं । भिन्न भिन्न कार्य के लिये भिन्न भिन्न मज़दूरी निश्चित की जाती है। सदस्यों को छोटे छोटे समूहों में बांट दिया जाता है प्रत्येक समूह के ऊपर एक सरदार रहता है जो औज़ारों की देख भाल करता है। समिति वार्षिक लाभ का १० प्रति शत सुरक्षित कोष में रखती है, ४० प्रति शत दुर्घटना तथा पैंशन फंड में डालती है, तथा ५० प्रति शत मज़दूरी के अनुपात से सदस्यों में बांट देती है। यदि कभी समिति के पास काम कम होता है तो काम के घन्टे घटा दिये जाते हैं अथवा बारी बारी से सदस्यों को काम दिया जाता है।

यह समितियां अधिकतर सड़क, बांध, पहाड़ी को काट कर समथल करने, पुल, इमारतें, तथा बंजर और दलदल भूमि को ठीक करने का काम करती हैं । कुछ समितियों ने रेलवे लाइन डालने का काम भी सफलता पूर्वक किया है। इससे यह न समझना चाहिये कि केवल साधारण मजदूरों ने ही यह समितियां चलाई हैं। इटली में बढ़ई, लुहार, राज, मल्लाह, गाड़ी वाले तथा बन्दरगाह में काम करने वालों ने भी अपनी अपनी समितियां स्थापित की हैं।

इन समितियों की स्थापना से यह लाभ हुआ है कि मजदूरों में बेकारी कम हुई है उनकी मज़दूरी बढ़गई है, तथा उनका जीवन अधिक सुखी बनगया है। प्रत्येक समिति पैंशन फंड रखती है जो

कि सदस्य के बुढ़ापे में काम आता है। इटली में यह समितियां भी दो प्रकार की हैं, साम्यवादी तथा कैथोलिक।

भारतवर्ष में बम्बई तथा मदरास प्रान्तों में इस प्रकार की समितियां स्थापित की गई हैं। बम्बई में दो समितियां इस समय कार्य कर रही हैं, बेलगांव ज़िले में हुकेरी श्रमजीवी समिति अछूतों के लिये स्थापित कीगई है। समिति सदस्यों को कुछ रुपया पेशगी दे देती है और बाद में मजदूरी में से काट लेती है। यह समिति ठेके लेती है। १६०० में इस समिति को २०००) रुपये का लाभ हुआ। दूसरी समिति भड़ौंच में इमारतें बनाने वाले मजदूरों की है। बम्बई में दो समितियां और भी स्थापित की गई थीं किन्तु वे सफल नहीं हुई।

मदरास प्रान्त में लगभग ६० से कुछ ऊपर श्रमजीवी समितियां हैं, यह समितियां सड़क बनाने का काम, लकड़ी काटने का काम, गाड़ी से माल ढोने काम, तथा मिट्टी खोदने का काम करती हैं। मदरास प्रान्त के रजिस्ट्रार ने वार्षिक रिपोर्ट में इन समितियों का उल्लेख करते हुये लिखा है कि सरकारी विभाग, जिला बोर्ड, तथा म्यूनिसिपैलटी इन समितियों को प्रोत्साहन नहीं देते इस कारण यह समितियां ठेकेदारों की प्रतिस्पर्धा में खड़ी नहीं हो सकतीं।

ट्रावंकोर राज्य में राज्य के प्रोत्साहन तथा सहानुभूति के कारण श्रमजीवी समितियां सफलता पूर्वक कार्य कर रही हैं।

यदि प्रान्तीय सरकार, ज़िला बोर्ड, और म्यूनिस्पैलटी श्रमजीवी समितियों को प्रोत्साहन देने की नीति स्वीकार करलें तब यह आन्दोलन सफलता पूर्वक सब प्रान्तों में चलाया जा सकता है। यदि हमारे देश की प्रान्तीय सरकारें इन समितियों को आर्थिक सहयता देने लगें तो शीघ्र ही यह समितियों ठेकेदारों को हटा कर ठेके लेसकती हैं और मज़दूर वर्ग की आर्थिक उन्नति कर सकती हैं।

सोलहवां परिच्छेद

कृषि से सम्बन्धित अन्य समितियां।

सहकारी सिंचाई समितियां--भारतवर्ष जैसे कृषि प्रधान देश में जहां खेती बारी वर्षा पर ही अवलम्बित है और जहां वर्षा अनिश्चित है, सिंचाई के महत्व को बतलाने की आवश्यकता नहीं है। देखना यह है कि किसान स्वयं सहकारिता के द्वारा किस प्रकार सिंचाई के साधन उपलब्ध कर सकते हैं।

बंगाल की सिंचाई समितियां— बंगाल में सिंचाई समितियां सफलता पूर्वक कार्य कर रहीं हैं। पश्चिमी बंगाल का प्रदेश कुछ नीचा है इस कारण वर्षा का पानी भूमि पर नहीं रुकता वरन शीघ्र ही बह जाता है। इस कारण साधारणतः वर्षा अच्छी होने पर भी जिस समय धान को पानी की अत्यन्त आवश्यकता होती उस समय पानी की कमी होजाती है। यही कारण है कि पश्चिमी बंगाल में कभी कभी अकाल पड़ जाता है।

यदि वर्षा के शुरू में जो अत्याधिक जल गिरता है वह सिंचाई के लिये रोक लिया जावे तथा नदियों के द्वार समुद्र में न बह जाने दिया जावे तो यह समस्या हल हो सकती है। इसी उद्देश्य से पुराने समय के राजाओं, जमीदारों, तथा धनिक वर्ग ने वर्षा के के जल को रोक रखने के लिए बांध बनवाये थे। पश्चिमी बंगाल

में अनुमान किया जाता है कि लगभग पचास हज़ार बांध हैं। कालांतर में कई कारणों से सिचाई का यह उत्तम साधन नष्ट हो गया अधिकांश बांध मिट्टी से भर गये, और ज़मींदार उनमें धान की खेती कराने लगे। १६१६ में बांकुरा ज़िले में अकाल पड़ा, उस समय अधिकारी वर्ग का इस ओर ध्यान गया और इन बांधों को फिर से उपयोगी बनाने का प्रयत्न किया गया।

सहकारिता विभाग ने वर्दमान डिवीज़न में सहकारी सिंचाई समितियां स्थापित की हैं जिनका उद्देश्य भरे हुये बांधों और तालाबों को फिर से खुदवाना, तथा नये तालाब बनवाना है। सिंचाई समिति परिमित दायित्व वाली होती है, प्रत्येक सदस्य को अपनी भूमि के अनुपात में ही समिति के हिस्से खरीदने होते हैं। समिति के पास निजी पूँजी तो होती ही है आवश्यकता पड़ने पर सैन्ट्रल बैंक से ऋण लिया जा सकता है। जब कि बांध या तालाब तैयार होजाता है तब प्रति एकड़ सिंचाई क्या ली जाना चाहिये, यह निश्चय किया जाता है। समिति सदस्यों से सिंचाई की क़ीमत वसूल करके ऋण चुकाती है तथा बांध की मरम्मत करवाती रहती है। इस समय बंगाल में लगभग १००० सिंचाई समितियां कार्य कर रही हैं। अधिकतर समितियां बांकुरा तथा बीर भूमि के ज़िलों में हैं। इन सिंचाई समितियों के कारण लाखों बीघा ज़मीन पर सिंचाई होती है। बंगाल में सिंचाई समितियों की मांग तेज़ी से बढ़ रही है।

बंगाल के अतिरिक्त मदरास में भी सिंचाई समितियां स्थापित

की गई हैं जो सदस्यों की भूमि की सिंचाई करती हैं। वर्मा बिहार, उड़ीसा, संयुक्तप्रान्त तथा मैसूर में भी कतिपय सिंचाई समितियां कार्य कर रही हैं। पंजाब में भी यथेष्ट संख्या में सिंचाई समितियां हैं जो नदियों की धाराओं की मिट्टी निकलवाकर उनसे सिंचाई करती है।

खेती बारी की उन्नति करने वाली समितियां-- बम्बई प्रान्त में सहकारी तथा कृषि विभाग के उद्योग से ताल्लुका-डैवलैपमैन्ट एसोसियेशन नामक संस्था को जन्म दिया गया है। १६२२ में यह संस्थाएं स्थापित की गई थीं, क्रमशः इनकी संख्या बहुत तेजी से बढ़ती जारही है। इनके सदस्य सहकारी समितियों के अतिरिक्त वे व्यक्ति भी होसकते हैं जो निश्चित फ़ीस दें। इन संस्थाओं का उद्देश्य यह है कि उनके ताल्लुके में खेती-बारी की उन्नति की जावे, सहकारी समितियों का संगठन किया जावे, तथा उनकी देख भाल की जावे।

यह संस्थाऐं कृषि विषयक जानकारी को किसानों में फैलाने का प्रयत्न करती हैं, सहकारी समितियों द्वारा अच्छा बीज, अच्छा यन्त्र, अच्छी खाद किसानों को देती हैं, पशुओं की नस्ल सुधारने का प्रयत्न करती हैं, गृह-उद्योग-धन्धों को पुनर्जीवित करने का प्रयत्न करती हैं, तथा किसानों के कष्टों की ओर अधिकारियों का ध्यान आकर्षित करतीं हैं। किन्तु अभी तक यह संस्थाएं ऊपर लिखे हुए उद्देश्यों को पूरा नहीं कर सकी हैं।

ताल्लुका ऐसोशियेशन को सरकार सहायता देती है। प्रारम्भ में यह विचार किया गया था कि ताल्लुका ऐसोसियेशन ही सहकारी साख समितियों की देख भाल करें किन्तु अनुभव से ज्ञात हुआ कि वे इस कार्य को नहीं कर सकतीं।

ताल्लुका ऐसोसियेशन की देख भाल करने के लिये डिवीज़नल बोर्ड स्थापित किये गये हैं। बोर्ड के ६ सदस्य होते हैं। दो सरकारी (कृषि विभाग तथा सहकारिता विभाग के कर्मचारी) तथा चार ग़ैर सरकारी, जिनको कृषि विभाग का डायरैक्टर, तथा सहकारी विभाग का रजिस्ट्रार मनोनीति करता है। बोर्ड इन संस्थाओं के लिये कार्य-क्रम बनाता है, उनके कार्य का निरीक्षण करता है, तथा सरकारी सहायता को इन संस्थाओं में बांटता है।

बम्बई के अतिरिक्त मदरास, बंगाल, बर्मा, तथा मध्यप्रान्त में भी खेती-बारी की उन्नति करने वाली समितियां स्थापित की गई हैं। यह समितियां अच्छे यन्त्र, उत्तम जाति का बीज, तथा उपयोगी खाद अपने सदस्यों को देती हैं, और कोई कोई समिति कृषि विभाग की सहायता से वैज्ञानिक ढंग से खेती करने का प्रदर्शन भी करती हैं।

पंजाब प्रान्त में लगभग सवा सौ समितियां इस ओर कार्य कर रही हैं, उनको कुछ सफलता भी मिली है। यह समितियां अपने सदस्यों को उत्तम बीज बोने, उपयोगी यन्त्रों का उपयोग करने, तथा आधुनिक ढङ्ग से खेती करने के लिये प्रोत्साहित करती हैं। इन समितियों को केवल सदस्यों में ही सफलता नहीं

मिली है वरन इनके कार्य का प्रभाव गांव के अन्य किसानों पर भी पड़ा है। कृषि विभाग इन समितियों को ट्रेंड ओवरसियर दे देते हैं, जो वैज्ञानिक ढङ्ग की खेती करने वालों को परामर्श देते हैं।

बिहार उड़ीसा में सैन्ट्रल बैंक अपने से संबंधित समितियों के सदस्यों की खेती-बारी की उन्नति करने का प्रयत्न करते हैं। लगभग पचास सैन्ट्रल बैंकों ने कृषि विभाग की सहायता से अच्छी खाद, और उत्तम बीज को बेचना प्रारम्भ कर दिया है। यह बैंक प्रदर्शन (डिमांस्ट्रेशन) के द्वारा प्रचार कार्य भी करते हैं। इस कार्य के लिये, बैंकों ने कामदार नियुक्त किये हैं, जिनको कृषि विभाग आधुनिक ढङ्ग की खेती की शिक्षा देकर कार्य करने योग्य बना देता है।

संयुक्त-प्रान्त में इस ओर अधिक कार्य नहीं हुआ है। सहकारी साख समितियों के द्वारा कृषि विभाग के कर्मचारी आधुनिक ढङ्ग की खेती का प्रचार करते हैं। दो कृषि सुधार समितियां भी स्थापित की गई हैं।

सहकारी शिक्षा समितियां—यों तो भारतवर्ष में शिक्षा का अभाव ही है किन्तु शहरों में तथा बड़े बड़े क़स्बों में सरकार, म्यूनिस्पैल्टी, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, तथा अन्य ग़ैर-सरकारी संस्थाओं ने शिक्षा का प्रबन्ध कर दिया है, जिससे कि वहां के रहने वालों को अपने बालकों की शिक्षा दिलाने में अधिक अड़चन नहीं होती। परन्तु भारतीय ग्रामों की ओर से तो मानों सब ही उदासीन हैं। हमारे गांवों में अशिक्षा और अज्ञान का

अखंड साम्राज्य है। शिक्षा के बिना हमारे गांवों का जीवन कितना गिरता जा रहा है, यह पाठकों से छिपा हुआ नहीं है। जब तक गांवों में शिक्षा का प्रचार नहीं कर दिया जाता तब तक गांवों का सुधार होना कठिन है। सहकारिता के द्वारा गांवों में शिक्षा का प्रचार किया जा सकता है। क्या ही अच्छा हो कि यदि सरकार सहकारी शिक्षा समितियों को आर्थिक सहायता देकर गामीण शिक्षा का कार्य उनको सौंप दे।

पंजाब की शिक्षा समितियां--पंजाब में दो प्रकार की समितियां स्थापित की गई हैं। एक तो प्रौढ़ों के लिये, दूसरी बच्चों के लिये। प्रौढ़ों की शिक्षा समितियों के सदस्यों को प्रति मास फ़ीस देनी पड़ती है, निर्धनों से फ़ीस नहीं ली जाती, सदस्यों को स्कूल में नियमित रूप से हाजरी देनी पड़ती है। जो मास्टर बालकों के स्कूल का शिक्षक होता है उसी को कुछ मासिक वेतन देकर रख लिया जाता है। इस प्रकार के स्कूलों को आगे चल कर डिस्ट्रिक्ट बोर्ड ले लेता है। पंजाब में लगभग १०० प्रौढ़ों को शिक्षा देने वाली समितियां कार्य कर रही हैं। सहकारी शिक्षा समितियों की सफलता के लिये यह आवश्यक है कि शिक्षक उत्साही हो। देश में इस समय शिक्षित नवयुवक वर्ग में भीषण बेकारी फैली हुई है, यदि इस समय सर्व व्यापी ग्रामीण शिक्षा आन्दोलन किया जावे और योग्य शिक्षित नवयुवकों को गांवों में शिक्षा कार्य करने की शिक्षा दी जावे तो सफलता मिल सकती है।

पंजाब में बालकों को अनिवार्य शिक्षा देने वाली समितियां—इन समितियो के सदस्य बालकों के माता पिता होते हैं। माता पिता को अपने बालकों को स्कूल में भेजने की प्रतिज्ञा करनी पड़ती है, और प्रति मास कुछ फ़ीस देनी पड़ती है जिससे शिक्षक का वेतन दिया जाता है। इस समय पंजाब में डेढ़ सौ के लगभग समितियां शिक्षा देने का कार्य कर रहीं हैं।

संयुक्त प्रान्त—संयुक्त प्रान्त में पंजाब की ही भांति प्रौढ़ों को शिक्षा देने वाली समितियां स्थापित की गई हैं। इन समितियों की संख्या तीस के लगभग है, जिनमें तीन स्त्रियों के लिये हैं। संयुक्त प्रान्त में इन स्कूलों का उपयोग प्रचार कार्य के लिये खूब हो रहा है, कृषि, स्वास्थ, तथा शिक्षा विभाग के कर्मचारी इन स्कूलों में जाकर गांव वालों को उपयोगी बातें बतलाते हैं। अब यह प्रयत्न किया जा रहा है कि शिक्षकों की पत्नियों को शिक्षा देकर उन्हें स्त्रियों की शिक्षा का कार्य सौंपा जावे।

बिहार उड़ीसा—बिहार उड़ीसा में साख समितियों ने गांवों में पाठशालायें स्थापित करके शिक्षा को खूब प्रोत्साहन दिया है। प्रति वर्ष यथेष्ट संख्या में पाठशालायें स्थापित की जाती हैं। सैन्ट्रल बैंक भी इन पाठशालाओं को प्रति वर्ष यथेष्ट आर्थिक सहायता देते हैं। खेद का विषय है कि डिस्ट्रिक्ट बोर्ड अभी तक इन पाठशालाओं को परियाप्त सहायता नहीं दे रहे हैं। कुछ बैंक पाठशाला की इमारत के लिये भी आर्थिक सहायता देते हैं। दो

स्थानों में समितियों के सदस्यों ने पाटशाला के लिये भूमि दान दे दी है।

बंगाल—बंगाल में बहुत सी समितियां गांव की शिक्षा का आयोजन करती हैं, और रात्रि पाठशालायें भी चलाती हैं। बंगाल में गांजा उत्पन्न करने वालों की समिति, तथा कविवर रवीन्द्र नाथ ठाकुर की विश्व-भारती का कार्य विशेष उल्लेखनीय है।

बम्बई--बम्बई में समितियां पाठशालाओं को आर्थिक सहायता देती हैं। धारवार ज़िले में सहकारी शिक्षा समितियां भी स्थापित की गई हैं।

काश्मीर--काश्मीर में कुछ अनिवार्य सहकारी शिक्षा समितियां स्थापित की गई हैं, जिनके सदस्यों को अपने बालकों को अनिवार्य शिक्षा दिलाने की प्रतिज्ञा लेनी होती है। प्रौढ़ों के लिये भी समितियां स्थापित की जा रही हैं। सहकारिता विभाग भविष्य में शिक्षा विभाग की सहायता से अधिकाधिक समितियां स्थापित करने का प्रयत्न कर रहा है।

सहकारी बीमा समितियां--अन्य देशों में मनुष्यों तथा पशुओं का जीवन बीमा करने के लिये भी सहकारी बीमा समितियां स्थापित की गई हैं। भारतवर्ष में पशुओं का जीवन बीमा करने वाली समितियों की बहुत आवश्यकता है। क्योंकि इस देश की अधिकांश जनसंख्या खेती करती है। ग़रीब

किसान की अगर कोई क़ीमती चीज़ होती है तो वह गाय, बैल तथा भैंस ही हैं। पशुओं की बीमारियां इस देश में इतनी अधिक हैं कि प्रति वर्ष लाखों पशुओं की इन बीमारियों के कारण मृत्यु हो जाती है। ग़रीब किसान को कर्ज़ लेकर बैल ख़रीदने पड़ते हैं, इस कारण पशु बीमा समितियां किसान को इस जोखिम से बचाने के लिये ज़रूरी हैं। पंजाब तथा बर्मा में कुछ पशु बीमा समितियां स्थापित भी की गईं किन्तु उनको अधिक सफलता नहीं मिली। कारण यह है कि पशुओं की मृत्यु संख्या सम्बन्धी आंकड़े जब तक ठीक ठीक मालूम न हों तब तक यह हिसाब नहीं लगाया जा सकता कि अमुक उम्र के पशुओं का बीमा करने में कितनी जोखिम उठानी पड़ेगी।

हां मनुष्यों का जीवन बीमा बिना किसी कठिनाई के सहकारी बीमा समितियां कर सकती हैं और अन्य बीमा कम्पनियों की प्रतिस्पर्धा में सफल भी हो सकती हैं। क्योंकि सहकारी जीवन बीमा समितियों का खर्चा कम होता है। बम्बई प्रान्त में एक सहकारी जीवन बीमा समिति स्थापित की गई है जो सफलता पूर्वक कार्य कर रही है। किन्तु अन्य प्रान्तों में इस ओर ध्यान नहीं दिया गया। जब कि बीमा का कारबार देश में तेज़ी से बढ़ रहा है, तब बीमा सहकारी समितियों की आवश्यकता और भी बढ़ जाती है।

सत्तरहवा परिच्छेद

उत्पादक सहकारी समितियां।

भारतवर्ष में उत्पादक सहकारी समितियों का अभी श्रीगणेश ही समझना चाहिये। सहकारिता विभाग का ध्यान इस ओर विशेष रूप से नहीं गया है। इसका मुख्य कारण यह है कि अभी तक सहकारिता आन्दोलन किसान की आवश्यकताओं को पूरा करने में ही लगा रहा है। इस कारण गृह उद्योग धंधों की ओर विशेष ध्यान नहीं गया। किन्तु आज हमारे कारीगरों की (जो कि गृह-उद्योग-धन्धों में लगे हुए हैं) उतनी ही शोचनीय दशा हो रही है जितनी कि हमारे किसानों की। गृह-उद्योग धन्धों को एक तो वड़े बड़े कारखानों की प्रतिद्वन्दता करनी पड़ती है दूसरे कारीगर व्यापारियों के ऋणी होने के कारण उनके चंगुल में फंसे रहते हैं। अस्तु, उनको दशा अत्यन्त शोचनीय हो रही है और क्रमशः गृह-उद्योग-धन्धे नष्ट होते जारहे हैं। यदि हम देश के इन धन्धों को अनिवार्य मृत्यु से बचाना चाहते हैं तो हमें उनकी रक्षा के लिये सहकारिता आन्दोलन की शरण में जाना होगा। तभी गृह-उद्योग-धन्धे पनप सकेंगे तथा कारीगरों के दिन फिरेंगे।

गृह-उद्योग-धन्धों में लगे हुए कारीगरों की दशा कितनी गिरी हुई है इसका एक उदाहरण यहां दिया जाता है। पंजाब में जुलाहों की कहीं कहीं बस्तियां बसी हुई हैं। यह जुलाहे

कारखानेदार अथवा कपड़े के व्यवसायी के चिरदास होते हैं। कारखानेदार इन जुलाहों को कुछ रुपया पेशगी दे देता है जिसे बाक़ी कहते हैं। जुलाहे से शर्त यह की जाती है कि वह केवल कारखानेदार को ही तैयार माल बेचेगा। जुलाहा कारखानेदार से ही सूत उधार ले जाता है और उसकी आज्ञानुसार ही कपड़ा तैयार करके उसी के हाथ कपड़ा बेचता है। कारखानेदार सूत का अधिक मूल्य लगाता है और कम से कम बुनवाई देता है। अस्तु, निर्धन जुलाहों को बहुत कम मज़दूरी मिलती है और वे कारखानेदार के चिरदास बने रहते हैं। यही हाल और सब धन्धों का है।

गृह–उद्योग–धन्धे दो प्रकार के होते हैं, एक तो वह धन्धे कि जिनमें लगे हुए मनुष्य केवल उसी पर निर्भर रहते हैं और वही उनका मुख्य पेशा होता है, दूसरे वह धन्धे कि जिनको किसान खेती-बारी से अवकाश पाने पर करता है। खेती उसका मुख्य धंधा होता है और गौण रूप से अपने अवकाश का उपयोग करने के लिये वह और कोई धन्धा कर लेता है। यह तो किसी से छिपा हुआ नहीं है कि भारतीय किसान अत्यन्त निर्धन है, इस कारण ग्रमीण धंधे आवश्यक हैं।

बात यह है कि भारतवर्ष में लगभग ७६ प्रति शत जन संख्या केवल खेती बारी पर निर्भर है। गृह–उद्योग–धन्धों के नष्ट हो जाने के कारण उनमें लगी हुई जनसंख्या खेती–बारी की ओर चली आई। खेती के योग्य भूमि कम है और खेती करने वालों

की जनसंख्या पिछले ८० वर्षों में लगातार बढ़ती गई इस कारण किसानों के पास इतनी कम भूमि रह गई है कि उस भूमि पर इतनी पैदावार नहीं होती कि वे अपने कुटुम्ब का भली भांति भरण पोषण कर सकें। खेती बारी मौसमी धंधा है, यदि किसान के पास यथेष्ट भूमि हो, तो भी वर्ष के कुछ महीनों में वह अवश्य बेकार रहेगा क्योंकि उन दिनों खेतों पर कुछ काम नहीं होता। भारतवर्ष में किसान वर्ष में चार महीने बेकार रहता है और कहीं कहीं तो इस अनिवार्य बेकारी का समय ६ महीने तक होता है। जब भारतीय किसान की औसद दैनिक आय दो आने से अधिक नहीं है तब यदि वह अपने अवकाश के समय को और किसी धंधे में लगा कर अपनी थोड़ीसी आय को बढ़ा सके तो यह धंधे निर्धन किसान के आर्थिक उद्धार का कारण बन सकते हैं। आज भारतवर्ष को ग्रामीय-उद्योग-धंधों को जितनी आवश्यकता है उतनी अन्य किसी भी देश को नहीं है। किन्तु यह धंधे तभी पनप सकते हैं जब कि इनका संगठन सहकारिता के सिद्धातों के अनुसार हों।

किसानों के लिये निम्न लिखित उपयोगी धन्धे हैं–घी, दूध का धंधा, मुर्गी पालने का धंधा, शहद की मक्खियां पालने का धंधा, भेड़ पालने का धंधा, रेशम के कीड़ों को पालने का धंधा, गुड़ बनाना, धान (चावल) साफ़ करना, रुई ओटना, सूत कातना, तेल निकालना, रस्सी बंटना, डलिया बनाना, चटाई बनाना, तथा चटाई तैयार करना इत्यादि।

इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे धंधे भी हैं जो किसानों के लिए तो उपयोगी नहीं हैं किन्तु जिनमें कारीगर लगे हुये हैं। भाग्यवश कुछ ऐसे गृह-उद्योग-धन्धे नष्ट होने से बचगये हैं, यद्यपि असंगठित होने के कारण उनकी दशा अत्यन्त शोचनीय है। उनमें निम्न लिखित धंधे मुख्य हैं।

सूती, ऊनी, तथा रेशमी कपड़े बुनने का धंधा, दरी, तथा कालीन बनाने का धंधा, छींट तथा अन्य प्रकार की छपाई तथा रंगाई का धंधा, फूल, पीतल, तांबे, तथा लोहे के बर्तन, खिलौने, तथा मूर्तियां बनाने का धंधा, ज़री तथा काढ़ने का धंधा, सोने, चांदी के ज़ेवर बनाने का धंधा, लकड़ी का सामान बनाने का धंधा, मिट्टी के बर्तन तथा खिलौने बनाने का धंधा, तथा चमड़े की वस्तुएं बनाने का धंधा, इत्यादि।

भारतवर्ष में इस समय गृह-उद्योग-धंधे असंगठित दशा में हैं, अस्तु, वे पनप नहीं रहे हैं। उनमें लगे हुए कारीगर अत्यन्त हीन अवस्था में रहकर अपना उदर पालन कर रहे हैं। धंधों की हीन अवस्था के तीन मुख्य कारण हैं। (१) पूँजी का अभाव। कारीगर को पूँजी उधार लेनी पड़ती है, महाजन तथा व्यवसायी ऋण तो देते हैं किंतु सूद इतना अधिक लेते हैं कि बिचारे कारीगर को धंधे से कुछ लाभ हो ही नहीं सकता। (२) कच्चा माल खरीदने तथा तैयार माल बेचने की कठिनाई। माल खरीदने तथा बेचने की भी कला है जिससे निर्धन कारीगर नितान्त अनभिज्ञ है। बात यह है कि यह कारीगर थोड़ी मात्रा में कच्चा

माल ख़रीदते हैं वह भी अधिकतर उधार, इस कारण उन्हें कच्चे माल का अधिक मूल्य देना पड़ता है, फिर भी माल अच्छा नहीं मिलता। तैयार माल के बेचने में तो कारीगर को अत्यन्त कठिनाई होती है। वह थोड़ी मात्रा में माल तैयार करता है इस कारण वह आधुनिक ढंग से बेच नहीं सकता। औद्योगिक उन्नति के युग में माल के लिये बाज़ार में मांग पैदा करनी पड़ती है, केवल माल तैयार करने से कुछ नहीं होता। माल की बाज़ार में खपत करने के लिए विज्ञापनबाज़ी करनी होती है, एजेन्ट तथा कनवैसर भेजने पड़ते हैं, माल का प्रदर्शनियों, तथा दूकानों में प्रदर्शन करना पड़ता है। किसान यह सब कुछ नहीं कर सकता क्योंकि वह थोड़ी मात्रा में माल तैयार करता है और वह इस कला को जानता भी नहीं।

तीसरी कठिनाई जो कि इन धन्धों की उन्नति में बाधक होती है वह है संगठन का अभाव। कारीगर पुराने ढंग से पुरानी डिज़ाइन का माल तैयार करता है। जनता की रुचि बदलती रहती है किन्तु अशिक्षित कारीगर को इसका कुछ भी ज्ञान नहीं होता, यदि वह जान भी जाता है कि जनता कौनसी वस्तु मांगती है तो उसे नवीन वस्तु के तैयार करने की शिक्षा देने वाला कोई नहीं होता। बुनकर को ही ले लीजिये। नई डिज़ाइन के कपड़े वह तैयार नहीं कर सकता। आधुनिक समय में जब कि फ़ैशन शीघ्रता पूर्वक बदलता रहता है बुनकर कभी अपने धन्धे की उन्नति नहीं कर सकता जब तक कि वह जनता की रुचि के अनुसार

बढ़िया डिज़ाइन तैयार नहीं करेगा। अस्तु कारीगर को परामर्श तथा नवीन प्रणाली से माल तैयार करने की शिक्षा देने के लिये एक संगठन की आवश्यकता है।

भारतीय औद्योगिक कमीशन ने प्रान्तों में गृह-उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन देने के लिये तथा मिलों और कारखानों की उन्नति के लिये औद्योगिक विभाग स्थापित करने की सलाह दी थी। यद्यपि प्रत्येक प्रान्त में औद्योगिक विभाग स्थापित हो गये किन्तु अभी तक वे गृह-उद्योग-धन्धों की उन्नति के लिये कुछ भी नहीं नहीं कर सके। हां पंजाब, मदरास, बिहार, उड़ीसा, तथा मैसूर में इस आशय के एक्ट अवश्य पास किये गये हैं कि जो प्रान्तीय सरकारों को उद्योग-धन्धों की सहायता करने का अधिकार देते हैं। अभी इस दिशा में अधिक कुछ नहीं हो सका है।

सहकारी उत्पादक समितियां—यदि गृह-उद्योग-धंधों का संगठन सहकारी समितियों के द्वारा किया जावे तो यह सब कठिनाइयां दूर की जा सकतीं हैं। उत्पादक सहकारी समितियां प्रत्येक धन्धे में लगे हुये कारीगरों का संगठन करेंगी। एक समिति एक ही धन्धे का संगठन कर सकेगी। समिति परिमित-दायित्व वाली होगी। प्रत्येक सदस्य समिति का हिस्सा खरीदेगा। समिति डिपाज़िट भी स्वीकार करेगी, तथा सैन्ट्रल बैंकों से पूँजी उधार लेगी। हिस्सा-पूँजी, डिपाज़िट, तथा ऋण, समिति की कार्यशील पूँजी होगी। केवल सदस्यों को साख देने का प्रबंध कर देने से ही समिति उनकी अवस्था को नहीं सुधार सकती। समिति

को वे सब कार्य करने होंगे जो कि व्यवसायी करता है। व्यवसायी कारीगर को ऋण देता है, कच्चा माल बेचता है, तथा तैयार माल खरीदता है। यदि समिति केवल साख का ही प्रबंध करके रह जायगी तो कारीगर कच्चा माल ख़रीदने, तथा तैयार माल बेचने में लूटा जावेगा और जो कुछ उसे कम सूद देने के कारण लाभ हुआ वह व्यवसायी की भेंट हो जावेगा। यदि उत्पादक समितियां वास्तव में कारीगर की आर्थिक उन्नति करना चाहती हैं तो उन्हें व्यवसायी को क्षेत्र से बिलकुल ही हटाना होगा, अर्थात् उसके सब कार्य अपने हाथ में लेने होंगे। भारतवर्ष में एक तो उत्पादक सहकारी समितियां बहुत कम हैं, दूसरे इन समितियों ने यह भूल की कि वे केवल साख का ही प्रबंध कर के रह गईं। सदस्यों के लिये कच्चे माल को ख़रीदने तथा तैयार माल बेचने का कोई प्रबंध नहीं किया। फल यह हुआ कि यह समितियां असफल हो गईं।

जब तक कि उत्पादक सहकारी समितियां सदस्यों के लिये उचित मूल्य पर कच्चा माल ख़रीदने का, तथा तैयार माल बेचने का प्रबंध नहीं करतीं तब तक गृह-उद्योग धन्धे पनप नहीं सकते। किन्तु इतने से ही धन्धे का संगठन पूर्ण नहीं हो सकता। समिति को कारीगरों को आधुनिक वैज्ञानिक ढंग से वस्तुयें तैयार करने की शिक्षा दिलानी होगी और उत्तम औज़ारों तथा यन्त्रों का प्रचार करना होगा।

यह सब कार्य केवल सहकारी समिति सफलतापूर्वक नहीं कर

सकती। क्योंकि तैयार माल के बेचने के लिये विज्ञापन देने, बाजार का अध्ययन करने, एजेन्ट तथा कनवैसर भेजने, तथा प्रदर्शनियों का आयोजन करने की आवश्यकता होती है। जो कि एक समिति की शक्ति के बाहर की बात है। अस्तु, समितियों को एक यूनियन में अपने को संगठित कर लेना आवश्यक है। यूनियन कुछ कर्मचारी रखकर यह सब कार्य करेगी। उदाहरण के लिये यदि बुनकरों की एक यूनियन स्थापित की जावे तो यूनियन बुनाई कला को जानने वाले कुछ ऐसे विशेषज्ञ नौकर रक्खेगी कि जो घूम घूम कर कुछ समय प्रत्येक समिति के सदस्यों को नई डिज़ाइन का कपड़ा तैयार करना, अच्छे करघे के लाभ, तथा अन्य आवश्यक सुधारों की शिक्षा देंगे। यूनियन विज्ञापन के द्वारा समितियों के कपड़े का प्रचार करेगी, भिन्न भिन्न स्थानों पर स्टोर स्थापित करके कपड़े को बेचने का प्रबन्ध करेगी तथा एजेन्ट और कनवैसर रक्खेगी। यूनियन बाजार का अध्ययन करके समितियों को यह सूचना दिया करेगी कि किस प्रकार के कपड़े की बाज़ार में अधिक मांग है। समितियां उसी प्रकार के कपड़े को सदस्यों से तैयार कराया करेंगी। यूनियन प्रति वर्ष प्रदर्शनी का आयोजन करेगी। इससे दो लाभ होंगे, एक तो उस क्षेत्र के कारीगर एक दूसरे के काम को देख सकेंगे और प्रतिस्पर्धा की भावना से अपनी उन्नति करेंगे, दूसरे माल का प्रचार होगा। समिति, कच्चा माल व्यापारियों से न खरीद कर, वरन उत्पन्न करने वालों से खरीदकर सदस्यों को

देगी। सदस्यों को कच्चा माल उचित मूल्य पर मिलेगा। तैयार माल सदस्य समिति को दे जावेगा। समिति कुछ रुपया उसी समय सदस्य को देगी। बाक़ी का माल बिकने पर चुकाया जावेगा। समिति प्रति शत कुछ कमीशन लेगी। वर्ष के अन्त में जो लाभ होगा वह सदस्यों में उस अनुपात से बांट दिया जावेगा कि जिस अनुपात में वे समिति के पास तैयार माल बेचने लावेंगे। इस प्रकार उत्पादक सहकारी समितियां गृह-उद्योग-धन्धो का संगठन कर सकती हैं। यदि हम चाहते हैं कि ग्रामीय-उद्योग-धन्धों तथा गृह-उद्योग धन्धे पनपें तो हमें उत्पादक सहकारी समितियां स्थापित करनी होंगी। योरोप में इस प्रकार की समितियां अत्यन्त सफलतापूर्वक कार्य कर रही हैं।

बुनकर समितियां—भारतवर्ष में बुनाई का धन्धा अत्यन्त प्राचीन है। किसी समय हमारे बुनकरों की ख्याति संसार भर में फैली हुई थी और भारतवर्ष में बना हुआ कपड़ा संसार की अलभ्य वस्तु समझी जाती थी। किन्तु राजनैतिक पतन के साथ ही हमारे धन्धों का भी पतन हो गया और सस्ते विलायती मिलों में बने हुए कपड़ों ने तो इस धन्धे की कमर ही तोड़ दी। किन्तु इस गये गुज़रे ज़माने में भी बुनाई का धन्धा जीवित है। अर्थशास्त्रज्ञों की सम्मति है कि इस गृह-उद्योग धन्धे ने ऐसी प्रतिकूल अवस्था में भी आश्चर्यजनक जीवन शक्ति का प्रदर्शन किया है, इससे यह ज्ञात होता है कि यदि इस धन्धे का ठीक प्रकार से संगठन किया जावे तो यह मिलों की प्रतिद्वंदता

में टिक सकता है। करघों द्वारा बुनाई के धन्धे की महत्ता तो इसी से प्रकट है कि वर्ष भर में भारतवर्ष में जितने कपड़े की खपत होती है उसका ४० प्रति शत भारतीय मिलें तैयार करती हैं, ३५ प्रति शत विदेशों से आता है, और २५ प्रति शत करघों पर तैयार होता है।

अनुमान किया जाता है कि भारतवर्ष में लगभग एक करोड़ बुनकर इस धन्धे में लगे हुए हैं। इसमें रेशमी कपड़ा, ऊनी कपड़ा तैयार करने वाले, तथा दरी और कम्बल तैयार करने वाले सभी सम्मिलित हैं। अस्तु, यह स्वाभाविक था कि पहले बुनकर सहकारी समितियां स्थापित की जातीं। भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त में बुनकर सहकारी समितियां स्थापित की गई हैं। बुनकर सहकारी समितियों की संख्या भिन्न भिन्न प्रान्तों में ५० से १०० तक है; किन्तु किसी किसी प्रान्त में इससे भी अधिक समितियां स्थापित करदी गई हैं। पंजाब में लगभग २०० समितियां कार्य कर रही हैं। किन्तु इन समितियों को सफलता नहीं मिली। इसका कारण यह है कि बहुत कम स्थानों पर समितियां व्यवसायियों को हटा सकी हैं। अब कुछ स्थानों में विशेषकर पंजाब में यह प्रयत्न हो रहा है कि समितियों को यूनियन में संगठित किया जावे, तैयार माल बेचने का आयोजन किया जावे, कारीगरों को औद्योगिक शिक्षा देने का प्रबन्ध किया जावे, और तैयार माल को बेचने का आयोजन हो। तब यह समितियां अपने उद्देश्य में सफल हो सकती हैं।

बुनकर समितियों के अतिरिक्त कुछ फुटकर उत्पादक समितियां भी स्थापित की गई हैं। किन्तु यह संख्या में कम हैं। प्रत्येक प्रान्त में एक या दो चमारों, बढ़इयों, खिलौने बनाने वालों, तथा लकड़ी पर खुदाई का काम करने वालों की समितियां स्थापित करदी गई हैं। बंगाल में ६५ समितियां रेशम तैयार करने वालों की हैं। इसके अतिरिक्त मैसूर, काशमीर, तथा मद्रास में भी रेशमी कपड़ा तैयार करने वालों की कुछ समितियां हैं।

अभी तक उत्पादक सहकारी समितियों को सफलता नहीं मिली है और न यह आन्दोलन फैल ही रहा है। जब तक ऊपर लिखे अनुसार इन समितियों का पूर्ण संगठन नहीं होता तथा सरकारी औद्योगिक विभाग इन समितियों को सहायता नहीं देता तब तक सफलता मिलना कठिन है। औद्योगिक विभाग औद्योगिक परामर्श तथा पूँजी देकर इन समितियों की सहायता कर सकता है। बिना राज्य की सहायता के हमारे गृह-उद्योग-धन्धों का उद्धार होना कठिन है। यदि औद्योगिक विभाग के द्वारा सरकार इन धन्धों को पूँजी न देना चाहे तो औद्योगिक बैंक खोले जावें, और उनके द्वारा इन धंधों को सहायता दीजावे।

अठारहवां परिच्छेद

उपभोक्ता स्टोर्स तथा गृह-निर्माण समितियां

मनुष्य समाज का प्रत्येक सदस्य उपभोक्ता है। प्रत्येक मनुष्य को अपनी आवश्यकताओं को पूरा करना पड़ता है इस कारण प्रत्येक मनुष्य को कुछ न कुछ वस्तुओं का उपभोग करना होता है। यदि देखा जावे तो उत्पादन करने वाले, तथा उपभोग करने वालों का घनिष्ट संबंध है। एक वर्ग दूसरे वर्ग पर निर्भर है, किन्तु उत्पादन करने वालों तथा उपभोग करने वालों के बीच में इतने दलाल हैं कि वे एक दूसरे से बहुत दूर पड़ जाते हैं। दलाल (अर्थात् व्यापारी) जो मूल्य उत्पादकों को देते हैं उससे बहुत अधिक उपभोक्ताओं से वसूल करते हैं । यही नहीं कि उपभोक्ताओं को वस्तुओं का मूल्य अधिक देना पड़ता है, वरन वस्तुओं में मिलावट होती है तथा वे अच्छी नहीं होतीं। सहकारी स्टोर्स दलालों को अपने स्थान से हटा कर उपभोक्ताओं को उचित मूल्य पर वस्तुओं के देने में सफल हुए हैं।

सर्व प्रथम इंगलैंड में राचडेल नामक स्थान के बुनकरों ने अपनी आवश्यक वस्तुऐं खरीदने के लिये सहकारी स्टोर्स चलाया था। इस कारण इन बुनकरों को ही इस आन्दोलन का सूत्रधार माना जाता है। संसार को उपभोक्ता सहकारी स्टोर्स जैसी उपयोगी संस्था देने वाले इन बुनकरों का इतिहास अत्यन्त आकर्षक है।

सन् १८४४ ईसवी में राचडेल के अट्ठाइस फ़लालैन बुनने वाले बुनकरों ने जो कि अत्यन्त निर्धन थे,किन्तु जिनमें विश्वास-

धैर्य, साहस, बुद्धिमत्ता कूट कूट कर भरी थी, एक दूकान खोली। इन बुनकरों के पास केवल २८ पौंड पूँजी थी, किन्तु उनमें उत्साह बहुत था जिसके कारण वे सफल हो गये।

इसके पूव राबर्ट ओवन के नेत्रत्व में कुछ स्टोर्स खुले थे किन्तु वे सब ही असफल हुए। कारण यह था कि यह स्टोर्स वस्तुएं उधार देते थे और उनका मूल्य बाज़ार से कम रखते थे। राचडेल के बुनकरों ने इस पद्धति को बदल दिया। उन्होंने वस्तुओं को बाज़ार भाव पर बेचना प्रारम्भ किया। और वर्ष के अन्त में ख़र्च काट कर जो लाभ होता उसको सदस्यों में उनकी ख़रीद के अनुपात में बांट देते थे। स्टोर्स वस्तुएं उधार नहीं बेच सकता था।

उन २८ बुनकरों ने एक हिस्से का मूल्य एक पौंड रक्खा। २ पैंस प्रति सप्ताह किश्त लेकर पूँजी इकट्ठी की, और आरम्भ में केवल पांच वस्तुओं को बेचने का प्रबन्ध किया। वे थीं मक्खन, शक्कर, ओट (अनाज) का आटा, मोमबत्ती, तथा गेंहूँ का आटा। स्टोर्स सौदा उधार नहीं देता था, किन्तु वस्तुएं शुद्ध तथा तौल में पूरी होती थीं। यदि कभी स्टोर्स को अधिक पूँजी की आवश्यकता होती तो किसी सदस्य से निश्चित सूद की दर पर उधार ले ली जाती। प्रत्येक सदस्य को एक वोट थी। एक तिहाई लाभ, सुरक्षित कोष में रक्खा जाता था, एक तिहाई सदस्यों को बांट दिया जाता था, और एक तिहाई शिक्षा पर व्यय कर दिया जाता था। सदस्यों को उत्साहित किया जाता था कि वे अपने लाभ का हिस्सा स्टोर्स

में जमा कर दें, इस प्रकार स्टोर की पूँजी बढ़ती गई। सदस्यों की जमा, और हिस्सा पूँजी पर निश्चित सूद दिया जाता है।

राचडेल के बुनकरों ने अपने स्टोर का प्रबन्ध ऐसा अच्छा किया कि शीघ्र ही नये सदस्य बनने लगे तथा स्टोर की उन्नति होने लगी। क्रमशः स्टोर सब आवश्यक वस्तुएं सदस्यों को देने लगा तथा बिक्री बढ़ने लगी। जब बुनकरों ने देखा कि बिक्री बहुत होने लगी तब उन्होंने वस्तुओं को उत्पन्न करना शुरू किया। आरम्भ में स्टोर ने जूते बनाने तथा कपड़े सीने के विभाग खोले और क्रमशः उत्पादन कार्य बढ़ता ही गया। राचडेल स्टोर की आशातीत सफलता देखकर उत्तर इङ्गलैंड में शीघ्र ही बहुत से स्टोर्स खुल गये।

इन स्टोर्स की सफलता देखकर फुटकर विक्रेता चौंके और उन्होंने इनका विरोध करना शुरू किया। जब फुटकर विक्रेता विरोध में सफल न हुए तब उन्होंने थोक व्यापारियों पर यह ज़ोर डाला कि वे स्टोर्स को वस्तुएं अधिक मूल्य पर दें। अब सहकारी स्टोर्स के सामने एक नई समस्या उपस्थित हुई। इस समस्या को हल करने के लिये इङ्गलैंड तथा स्काटलैंड के स्टोर्स ने दो होल-सेल-सोसाइटी स्थापित कीं। होल-सेल-सोसायटी थोक व्यापारियों से माल न लेकर सीधे मिलों और कारखानों से माल खरीदकर अपने सदस्य स्टोर्स को बेचने लगीं। इस प्रकार थोक व्यापारियों को भी सहकारी आन्दोलन ने अपने स्थान से हटा दिया और उनके लाभ को उपभोक्ताओं के लिये

सुरक्षित कर लिया। इसके उपरांत इङ्गलैंड तथा स्काटलैंड के स्टोर्स ने मिल कर सहकारी यूनियन की स्थापना की। इस यूनियन का मुख्य कार्य विज्ञापन, प्रचार शिक्षा, तथा आन्दोलन की देख रेख करना है।

क्रमशः आन्दोलन तीव्र गति से बढ़ता गया और स्टोर्स की संख्या बढ़ती ही गई। तब होल-सेल-सोसायटियों ने उत्पादन कार्य भी अपने हाथ में ले लिया।

१८७३ में इंगलैंड की होल-सेल-सोसायटी ने उत्पादन कार्य करने का निश्चय किया। उसी वर्ष सोसायटी ने मैनचैस्टर स्थिति बिस्कुट तथा अन्य प्रकार की मिठाई बनाने का कारख़ाना ख़रीद लिया, कुछ समय के उपरांत एक बूट फैक्टरी खोली गई। क्रमशः उत्पादनकार्य उन्नति करता गया तथा दो बूट–फैक्टरियां और खोली गईं। इसके उपरांत साबुन, मुरब्बे, मोमबत्ती, कपड़े धोने का पाउडर, फलैनल, मोज़े, बनियन, फ़र्नीचर, कपड़े, बुरुश, तम्बाकू, सिगरेट, आटा, छापेख़ाने, लोहे, टिन, तेल, तथा अन्य आवश्यक वस्तुएं बनाने के कारख़ाने खोले गये। यही नहीं होल-सेल सोसायटी ने १९२७ में एक कोयले की खान भी ख़रीद ली।

१८७६ में होल-सेल-सोसायटी ने अपनी वस्तुओं को लाने तथा लेजाने के लिये जहाज़ ख़रीदे। किन्तु हालही में दो जहाज़ों को छोड़कर और सब जहाज़ बेच दिये गये। होल-सेल-सोसायटी ने इंगलैंड में अनाज, तरकारी तथा फल उत्पन्न करने के लिये फ़ार्म ख़रीद लिये हैं।

गेहूँ उत्पन्न करने के लिये सोसायटी ने कनाडा में दस हज़ार एकड़ से अधिक का एक फ़ार्म ख़रीदा है। पश्चिम अफ़्रीका में भी भूमि ख़रीद ली गई है। होल-सेल-सोसायटी ने जीवन, अग्नि, दुर्घटना, तथा अन्य प्रकार का बीमा करना आरम्भ कर दिया है। इस कार्य के लिये स्काटलैंड तथा इंगलैंड होल-सेल-सोसायटियों ने एक सम्मिलित विभाग खोल दिया है।

इङ्गलैंड की होल सेल सोसायटी, बैंकिंग, गृह-निर्माण, पत्रिका प्रकाशन, तथा बीमारों के लिये स्वास्थ्य-गृह बनाने का कार्य भी करती है।

स्काटलैंड होल सेल सोसायटी ने भी अपने सदस्यों के लिये आवश्यक वस्तुयें बनाने के लिये कारख़ाने चलाये हैं, तथा भूमि मोल ले कर खेती-बारी करना आरम्भ किया है।

इन दोनों सोसायटियों ने कुछ कार्य सम्मिलित रूप से किये हैं। इन दोनों सोसायटियों ने ल्यूटन में कोको का एक कारख़ाना खोला है।

होल सेल सोसायटी के सदस्य-स्टोर्स, सोसायटी के हिस्से ख़रीदते हैं। जिस स्टोर्स के जितने सदस्य होते हैं उसी के अनुपात में स्टोर्स को हिस्से ख़रीदने पड़ते हैं। केवल स्टोर्स ही इसके सदस्य बन सक़ते हैं। स्टोर्स को माल बाज़ार के थोक भाव से बेचा जाता है। वार्षिक लाभ स्टोर्स में उनकी ख़रीद के अनुपात में बांट दिया जाता है। होल सेल सोसायटी ने सदस्य स्टोर्स की सुविधा के लिये शाखायें खोल दी हैं, तथा प्रत्येक प्रमुख व्यापा-

मण्डी में वस्तुओं को खरीदने के लिये एजैंसियां स्थापित करदी हैं।

होल सेल सोसायटियों के कारखानों में मज़दूरों की दशा साधारण कारखानों से अच्छी है, और उनको मज़दूरी भी कुछ अधिक मिलती है। काम करने के घन्टे भी कुछ कम होते हैं, तथा उनके स्वास्थ्य तथा आमोद प्रमोद का प्रबंध किया जाता है। प्रत्येक मज़दूर को वर्ष में दो सप्ताह की वेतन सहित छुट्टी मिलती है। मज़दूरों के लिये प्राविडेंड फंड भी होता है। स्काटलैंड की सोसायटी के कारखानों में मज़दूर, सोयायटी के हिस्से ले सकते हैं और प्रबंध कारिणी समिति में उनके भी प्रतिनिध रहते हैं।

सदस्य-स्टोर्स अपने प्रतिनिध चुन कर होल सेल-सोसायटी की मीटिंग में भेजते हैं। यह प्रतिनिध बोर्ड आफ़ डायरैक्टर्स का चुनाव करते हैं। भिन्न भिन्न विभागों तथा कारखानों के मैनेजरों की नियुक्त डायरैक्टर करते हैं। डायरैक्टर लोग भिन्न भिन्न विभागों की देख भाल करते हैं।

भारतवर्ष में उपभोक्ता स्टोर्स—भारतवर्ष में सहकारी उपभोक्ता स्टोर्स असफल रहे हैं। भारतवर्ष में कहीं कहीं यदि एक या दो स्टोर्स सफल दृष्टि गोचर होते हैं तो आन्दोलन सफल नहीं कहा जा सकता। इन स्टोर्स की सफलता का कारण इनकी स्थानीय परिस्थिति में छिपा हुआ है। अधिकतर कालेजों तथा रेलवे के स्टोर्स सफल हुये हैं। इन स्टोर्स को दूकानदारों से प्रतिस्पर्धा नहीं करनी पड़ती तथा उन्हें बहुत सी अन्य सुविधाएं प्राप्त होती हैं।

भारतवर्ष में यह अन्दोलन योरोपीय महायुद्ध के बाद बहुत बढ़ा। कारण यह था कि उस समय सरकार ने भोज्य पदार्थों का नियन्त्रण अपने हाथ में ले लिया था किन्तु जैसे ही यह नियन्त्रण हटा स्टोर्स की संख्या घटने लगी। बहुत से स्टोर्स बंद हो गये और बहुतों का दिवाला निकल गया।

इन स्टोर्स की असफलता का मुख्य कारण यह है कि सदस्य आन्दोलन के मुख्य सिद्धान्त को भूल जाते हैं। वे समझते हैं कि स्टोर्स सस्ती चीज़ें बेचने के लिये खोला गया है, फल यह होता है कि जब बाज़ार भाव सस्ता होने लगता है तो स्टोर्स की आर्थिक स्थिति ख़राब हो जाती है, और सदस्य स्टोर्स से चीज़ें न ख़रीद कर दूसरे दूकानदारों से ख़रीदने लगते हैं। स्टोर्स फ़ेल हो जाता है।

सिद्धान्त तो यह है कि वस्तुओं को बाज़ार भाव पर बेचा जावे। किन्तु चीज़ें अच्छी हों और तौल में पूरी दी जावें। असफलता का दूसरा मुख्य कारण है सौदा उधार देना। सौदा उधार देना स्टोर तथा सदस्य दोनों के लिये हानिकारक है। सदस्य को ऋण लेने की आदत पड़ जाती है। जब वह दैनिक जीवन की आवश्यक वस्तुओं को उधार लेने लगता है तो वह व्यर्थ के कामों में रुपया फेंकने लगता है। स्टोर को सौदा उधार देने के कारण थोक व्यापारियों से माल उधार लेना पड़ता है।

इन स्टोर्स का प्रबंध भी ठीक नहीं रहता है और व्यय

अधिक होता है यह भी उनकी असफलता का मुख्य कारण है।

मदरास का ट्रिपलीकेन स्टोर—भारतवर्ष में केवल ट्रिपलीकेन सहकारी स्टोर ने बड़ी मात्रा में काम करके आश्चर्य जनक सफलता प्राप्त की है। यही एक बड़ा स्टोर ऐसा है जिसे हम पूर्ण रूप से सफल कह सकते हैं। यह स्टोर ६ अप्रेल १९०४ में खोला गया। आरम्भ में दो कर्मचारी रक्खे गये, एक मैनेजर दूसरा वेचने वाला, दोनों का वेतन आठ रुपया मासिक था। स्टोर के जन्मदाताओं ने अपना बहुत सा समय स्टोर की देख भाल में देना शुरू किया। जहां तक होता व्यय कम किया जाता था। १९०५ में स्टोर रजिस्टर कर लिया गया। अभी तक साधारण जनता इसको केवल खिलवाड़ समझती थी किन्तु जब उन्होंने एक स्टोर को चलते देखा तब लोग प्रभावित हुये और सदस्यों की संख्या क्रमशः बढ़ने लगी। आज ट्रिपलीकेन स्टोर की २५ शाखायें कार्य कर रही हैं। उन में ६ के पास अपनी निजी इमारत हैं, बाक़ी किराये की इमारतों में काम करती हैं। १९२९ में स्टोर ने ११९५१२८ रुपये की चीज़ें बेचीं। २५ जनवरी १९३० को स्टोर की जुबली मनाई गई। उस अवसर पर जुबली हाल की नींव मदरास गवर्नर ने डाली थी। इस हाल के बनवाने में स्टोर ने लगभग २५ हज़ार रुपये व्यय किये हैं।

१९२५ में ट्रिपलीकेन स्टोर के ५७८१ सदस्य थे, स्टोर की चुकाई हुई पूँजी (paid up capital) एक लाख से कुछ

अधिक थी। स्टोर के पास दो लाख से अधिक की डिपाज़िट थीं। १६२६ में सुरक्षित कोष में ८४ हज़ार रुपये जमा थे तथा एक दूसरा फंड भी खोला गया है जिसमें लगभग ४० हज़ार रुपये जमा हैं। स्टोर में लगभग १४० कर्मचारी काम करते हैं जिनका वार्षिक वेतन ४५,००० हज़ार रुपये के लगभग होता है। स्टोर तथा उसकी शाखाओं के साथ एक वाचनालय भी रहता है। स्टोर अनाज, चांवल, गुड़ शक्कर, तेल, मसाला, सूखे फल, चाय, कहवा, साबुन, तथा कुछ पेटैन्ट औषधियां बेचता है।

मैसूर :—मैसूर में स्टोर आन्दोलन कुछ सफल हुआ है। इन में बंगलोर का स्टोर उल्लेखनीय है, यद्यपि यह ट्रिपलीकेन स्टोर से छोटा है। इसके अतिरिक्त अन्य स्टोर अधिकतर रेलवे, मिलों तथा आफ़िसों के कर्मचारियों के लिये हैं और अधिकारियों के संरक्षण में कार्य कर रहे हैं। मैसूर में स्टोर सौदा उधार भी दे देते हैं।

बम्बई:—बम्बई में स्टोर आन्दोलन असफल रहा, इसका मुख्य कारण यह है कि परचूनी की दूकानें बम्बई में अत्याधिक हैं। इस कारण थोक तथा फुटकर मूल्य में कम अन्तर है। दूकानदार घर पर सामान पहुंचा देता है, और मास के अन्त में हिसाब कर ले जाता है। इन दूकानदारों से प्रतिस्पर्धा करना कठिन है क्योंकि इनका खर्चा बहुत कम है।

संयुक्त प्रान्त :—संयुक्त प्रान्त में केवल चार स्टोर्स कार्य कर रहे हैं उनमें तीन की दशा अत्यन्त शोचनीय है।

मदरास में ट्रिपलीकेन के अतिरिक्त अन्य ६० स्टोर कार्य कर रहे हैं। मैसूर में ७०, बंगाल में ६०, बम्बई में ३५, पंजाब में २० आसाम में लगभग २०, तथा मध्य प्रान्त में २०। किन्तु यह सब स्टोर असफल ही रहे हैं ।

स्टोर की सफलता के लिये यह आवश्यक है कि सदस्य स्टोर के प्रति अपना कर्तव्य समझें। प्रबंध कारिणी समिति के सदस्य अपना समय स्टोर के प्रबंध में लगावें, तथा व्यय जहां तक हो कम किया जावे। किन्तु सब से आवश्यक बात यह है कि सौदा उधार न दिया जावे।

सहकारी गृह निर्माण समितियां।

भारतवर्ष में सहकारी गृह निर्माण समितियां केवल बम्बई प्रान्त में पाई जाती हैं। गृह निर्माण समितियां दो प्रकार की होती हैं। एक प्रकार की समितियां तो वह होती हैं जिनमें व्यक्ति मकान मालिक होता है। दूसरे प्रकार की समितियां वह होती हैं जिनमें समिति सामूहिक रूप से मकानों की मालिक होती है।

व्यक्तिगत स्वामित्व वाली समितियां—पहले प्रकार की समितियां भी दो प्रकार की होती हैं। एक तो स्थायी दूसरी अस्थायी।

अस्थायीः—अस्थायी गृह निर्माण समितियां वह हैं जो कि

एक निश्चित संख्या में सदस्य बनाती हैं। प्रत्येक सदस्य को मासिक या सप्ताहिक चन्दा देना होता है। नया सदस्य नहीं बनाया जाता। यदि कोई सदस्य समितिको छोड़दे तो उसके स्थान पर नया सदस्य लिया जा सकता है। जब चन्दा जमा होजाता है तब लाटरी डालकर रुपया एक सदस्य को दे दिया जाता है और उस का मकान बनजाता है। मकान समिति के पास गिरवी रहता है और सदस्य सूद सहित ऋण किश्तों में चुकाता रहता है। इसी प्रकार सब सदस्यों के मकान तैयार होजाते हैं। समिति उस समय तक नहीं तोड़ी जाती जब तक कि सबकी किश्तें न चुकजावें। सब ऋण चुक जाने पर रुपये का हिसाब किया जाता है तथा लाभ कों बांटकर समिति तोड़ दी जाती है।

स्थायी समिति--स्थायी समिति में सदस्यों की संख्या निश्चित नहीं होती। सदस्यों को समिति के हिस्से ख़रीदने पड़ते हैं। समिति डिपज़िट लेती है तथा ऋण भी लेती है। समिति नये सदस्य बनती जाती है और जैसे जैसे रुपया मिलता जाता है सदस्यों को ऋण देती है। कुछ बड़ी समितियां इंजीनियर, सर्वे करनेवाले तथा अन्य कर्मचारियों को नौकर रखती हैं जो कि सदस्यों को परामर्श देते हैं। सदस्यों को इस सहायता के लिये एक निश्चित फ़ीस देनी पड़ती है। सदस्यों को मकान के ऊपर ऋण दिया जाता है और एक निश्चित समय में रुपया चुका देना पड़ता है। समिति मकान की लागत का तीन चौथियाई ऋण देती है, एक

चौथियाई सदस्य को लगाना पड़ता है। प्रत्येक इमारत का बीमा कराया जाता है। बीमा समिति के नाम होता है।

कुछ समितियां मकान स्वयं बनवाती हैं। सदस्यों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुये मकान बनवाये जाते हैं। सदस्य उन मकानों में किरायेदारों की तरह रहते हैं। सदस्य यदि चाहें तो प्रति मास किराये के अतिरिक्त कुछ रुपया मकान के मूल्य को चुकाने के लिये दे सकते हैं। जब मकान का मूल्य चुक जाता है तब मकान सदस्य का हो जाता है। किन्तु इस प्रकार वही समितियां मकान बना सकती हैं कि जिनके पास यथेष्ट पूँजी हो। इङ्गलैंड के उपभोक्ता स्टोर तथा फ्रैंडली सोसायटियां अपनी बेकार पूँजी को मकानों में लगा देती हैं।

इस प्रकार की समितियों का, कि जिनमें सदस्य मकान का मालिक हो जाता है एक बड़ा दोष यह है कि सदस्य को यह अधिकार हो जाता है कि यदि सदस्य चाहे तो मकान को बेच दे। इसका फल यह होता है कि समितियों द्वारा बनाये हुये मकान ऐसे लोगों के पास पहुँच जाते हैं जो कि उनको बेचकर लाभ उठाने का प्रयत्न करते हैं। इस दोष को दूर करने के लिये बम्बई में एक नवीन योजना काम में लाई गई है।

इस योजना में समिति बहुतसी भूमि या तो पट्टे पर लेती है या फिर मोल ले लेती है। समिति उस भूमि पर सड़कें बनाती है, फिर भूमि को छोटे छोटे प्लाटों में बांट देती है। यह प्लाट सदस्यों

में बांट दिये जाते हैं। कुछ भूमि सार्वजनिक हित के लिये समिति अपने हाथ में रखती है। उदाहरण के लिये पार्क, वाचनालय, खेलने के लिये तथा अन्य ऐसे ही कार्यों के लिये भूमि रखली जाती है। यदि समिति ने भूमि पट्टे पर ली है तो सदस्य को लाट समिति के पट्टे से एक साल कम के पट्टे पर मिलेगा। यदि समिति ने भूमि मोल ली है तो सदस्य को ६६६ साल के पट्टे पर लाट दिया जाता है। सदस्य को लाट इस शर्त पर मिलता है कि जब कभी वह भविष्य में मकान अथवा लाट को वेचे तो खरीदने का पहिला अधिकार समिति को, अथवा समिति जिस सदस्य के लिये कहे, उसको होगा। प्रान्तीय सरकार इस प्रकार की समितियों के सदस्यों को उनकी दी हुई पूँजी से दुगना ऋण देती है। किन्तु किसी एक सदस्य को १०,०००) रु० से अधिक ऋण नहीं दिया जा सकता। सदस्य को २० साल में ऋण चुका देना पड़ता है। समिति या तो स्वयं मकान बनाती है अथवा निर्धारित लाट पर सदस्यों को मकान बनाने देती है। जब मकान बन जाते हैं तो समिति उस छोटे से उपनिवेश की म्यूनिस्पैल्टी का कार्य करती है।

सामूहिक स्वामित्व वाली समितियां— इस प्रकार की समिति एक बड़ा लाट खरीदती है और उस पर सदस्यों की आवश्यकतानुसार मकान बनाती है। सदस्य मकानों में किरायेदारों की भांति रहते हैं। सदस्यों को मकान की लागत का $\frac{1}{5}$ से लेकर $\frac{1}{3}$ तक पूँजी, समिति को देनी होती है। बाक़ी की पूँजी

समिति इमारतों की जमानत पर डिबैंचर बेच कर इकट्ठी करती है। इंगलैंड में इन समितियों के डिबैंचर जनता खूब खरीदती है। किन्तु भारतवर्ष में ऐसा नहीं है। इस कारण प्रान्तीय सरकार समितियों को ५॥ प्रति शत सूद पर ऋण दे देती है। १६१७ में भारत सरकार ने एक प्रस्ताव पास करके प्रान्तीय सरकारों को गृह-निर्माण-समियों को ऋण देने का अधिकार दे दिया।

इस प्रकार की समितियों में समिति ही इमारतों की मालिक होती है। सदस्य ही समिति को चलाते हैं इस कारण उनसे अधिक किराया नहीं लिया जा सकता। मकानों का किराया, एक निश्चित सिद्धान्तपर निश्चित किया जाता है। यदि कोई सदस्य चाहे तो नोटिस देकर मकान छोड़ सकता है। समिति वह मकान किसी दूसरे सदस्य को दे देती है। नया सदस्य जो पूँजी देता है वह जाने वाले सदस्य को दे दीजाती है।

बम्बई में सबसे पहले सारस्वत सहकारी गृह-निर्माण समिति स्थापित हुई। समिति ने इम्प्रूवमेन्ट ट्रस्टसे ६६६ साल के पट्टे पर भूमि लेकर इमारतें बनवाईं। यह समिति सामूहिक स्वामित्व वाली है। सदस्यों ने एक तिहाई पूँजी दी, तथा बाकी ऋण लिया गया। मकानों का किराया निर्धारित करते समय रैन्ट, टैक्स, रेट्स, अग्नि बीमा, मरम्मत, पूँजी पर सूद, तथा सिंकिंग-फ़ंड इत्यादि सब खर्चों का हिसाब लगाया जाता है।

सिंकिंग फ़ंड इस लिये आवश्यक होता है कि ८० या १०० वर्षों के उपरान्त जब इमारतों को फिर से बनवाना पड़ेगा तब

पूँजी कहां से आवेगी। अस्तु, इमारतों की लागत का ½ प्रति शत एक फंड में जमा करदिया जाता है जो कि इकट्ठा होता रहता है। प्रान्तीय सरकार ने ऋण देने के अतिरिक्त लैंड ऐक्युजिशन ऐक्ट में संशोधन करके सहकारी समितियों को अपने लिये भूमि पाने की सुविधा प्रदान करदी है।

बम्बई प्रान्त में ६७ गृह निर्माण समितियां हैं, इनकी कार्यशील पूँजी लगभग ६३ लाख है। इनमें २३ बम्बई तथा उसके सब-अर्ब में हैं, १६ अहमदाबाद में, ६ करांची में तथा बाक़ी अन्य स्थानों में हैं।

बम्बई में जब गृह निर्माण समितियों की स्थापना होगई तब दूसरे प्रांतों में भी यह आन्दोलन आरम्भ हुआ। मदरास में १३० समितियां कार्य कर रहीं है जिनकी कार्यशील पूँजी लगभग ४० लाख रुपया है। बम्बई तथा मदरास को छोड़कर दूसरे प्रांतों में एक या दो समितियों से अधिक स्थापित नहीं हुई हैं। हां, देशी राज्यों में मैसूर में अवश्य १८ समितियां है किन्तु यह समितियां केवल गृह निर्माण कार्य के लिये ऋण देती हैं।

लाहौर में एक माडैल टाऊन समिति स्थापित की गई है। समिति के ६०० से ऊपर सदस्य हैं, लगभग ३३ लाख के लगभग कार्यशील पूँजी है, १०० के ऊपर गृह निर्माण होचुके हैं। समिति ने एक क्लब, ८ मील के लगभग सड़क, एक ट्यूब वैल, एक औषधालय, तथा एक स्कूल भी बनाया है। लाहौर तथा

उस माडैल टाऊन के बीच मोटर लारी भी चलाई गई है। यह समिति बड़ी मात्रा में गृहनिर्माण कार्य कर रही है।

ग्रामीण गृहनिर्माण समितियां—१६२७ में जो भयंकर वाढ़ गुजरात तथा सिन्ध में आई, उसमें बहुत से गांव बह गये। इन उप-प्रान्तों में गांवों को फिर से बसाने के लिये गृह-निर्माण समितियां स्थापित की गई हैं। प्रान्तीय सरकार ने समितियों को ऋण देना स्वीकार करलिया है। समितियां व्यक्तिगत स्वामित्व वाली होती हैं और १५ या २५ वर्ष बाद तोड़ दी जावेंगी। सरकार समिति की पूँजी का ८० प्रति शत ऋण दो साल के लिये विना सूद के देगी, तदुपरान्त ४ प्रति शत सूद लिया जावेगा। इन समितियों में लाभ बांटा नही जा सकता, केवल सुरक्षित कोष में जमा किया जाता है जो कि समिति के टूटने पर सार्वजनिक कार्यों में व्यय कर दिया जावेगा। इसी प्रकार की कुछ समितियां मदरास के मालाबार प्रदेश में भी स्थापित की गई हैं। सिन्ध में २५ गृह-निर्माण समितियां कार्य कर रही हैं और इतनी ही गुजरात में हैं।

इङ्गलैंड तथा अन्य पश्चिमी देशों में उपभोक्ता स्टोर तथा गृह-निर्माण समितियां अधिकतर मिल मजदूरों के लिये स्थापित की गई हैं। किन्तु अभी तक भारतवर्ष में कोई समिति मजदूरों के लिये नहीं खोली गई है।

उन्नीसवां परिच्छेद

सहकारी शिक्षा, निरीक्षण तथा प्रचार।

भारतवर्ष में सहकारिता आन्दोलन को भारतीय सरकार ने चलाया, दूसरे देशों की भांति इस देश में यह आन्दोलन जनता ने स्वयं नहीं चलाया। कारण यह था कि भारतीय जनता विशेष कर किसान अशिक्षित, तथा कर्जदारी के बोझ से ऐसा दबा हुआ है कि उसको अपने आर्थिक सुधार की आशा ही नहीं रही। ऐसी दयनीय दशा में आत्मनिर्भरता तथा स्वावलम्बन के भाव ग्रामीण जनता में से लुप्त हो चुके थे, इस कारण राज्य को ही इस आन्दोलन का श्रीगणेश करना पड़ा।

जब राज्य ने इस आन्दोलन को अपने हाथ में लिया तो यह स्वाभाविक था कि रजिस्ट्रार ही इस आन्दोलन का सर्वेसर्वा हो जावे। आरम्भ में रजिस्ट्रार को आन्दोलन चलाने के लिये प्रचार कार्य, समितियों का संगठन, उनकी देख भाल, निरीक्षण, आय-व्यय निरीक्षण, सहकारिता आन्दोलन से संबंध रखने वाले साहित्य का अध्ययन, जनता में आन्दोलन के विषय में रुचि उत्पन्न करना, अपने अधीनस्थ कर्मचारियों का शिक्षण, तथा अन्य प्रान्तों में आन्दोलन की गति विधि का अध्ययन करने का कार्य और आन्दोलन समितियों के लिये पूँजी जुटाने का काम भी करना पड़ता था। यदि समिति तथा उसके सदस्यों में कोई झगड़ा हो तो उसका फैसला रजिस्ट्रार ही करता,

तथा समिति की दशा खराब हो जाने पर वही उसको तोड़ता तथा ' लिक्यूडेटर ' बनता था।

जैसे जैसे आन्दोलन बढ़ता गया इस बात का अनुभव होने लगा कि रजिस्ट्रार इतने कार्यों को भली भांति नहीं कर सकता। यह आवश्यक प्रतीत होने लगा कि रजिस्ट्रार के बोझ को कुछ हलका कर दिया जावे तथा आन्दोलन को क्रमशः जनता के हाथ में दे दिया जावे। अस्तु, सैन्ट्रल बैंक तथा प्रान्तीय बैंकों के स्थापित होते ही पूँजी जुटाने का कार्य रजिस्ट्रार के हाथ से निकल गया।

सहकारिता आन्दोलन जनता का आन्दोलन है और इस आन्दोलन को बाहरी सहायता पर निर्भर न रह कर स्वावलम्बी होना चाहिये। समितियों को डिपाज़िट आकर्षित करके कार्य-शील पूँजी इकट्ठी करनी चाहिये। प्रबंध कारिणी समिति को समिति की देख भाल करना चाहिये। समितियों की सम्मिलित यूनियन को आय-व्यय निरीक्षण करना चाहिये, तथा सहकारिता की शिक्षा भी यूनियन को देनी चाहिये। रहा प्रचार कार्य, उसके लिये सफलता पूर्वक कार्य करती हुई सहकारी समिति ही सर्वोत्तम साधन है। किन्तु भारतवर्ष में अशिक्षा, तथा रूढ़ियों में फंसे हुये भाग्यवादी ग्रामीण जन यह कार्य नहीं कर सकते थे। इस कारण यह आवश्यकता प्रतीत हुई कि जो कार्य कि एक समिति नहीं कर सकती वह यूनियन करे। इस उद्देश्य से भारत-वर्ष में भिन्न भिन्न कार्यों को करने के लिये यूनियन स्थापित की

गईं :— गारंटी देने वाली यूनियन, तथा सुपरविज़न (देख भाल करने वाली) यूनियन ।

गारंटी यूनियन—यद्यपि गारंटी देने वाली यूनियन देख भाल का भी कार्य करती है किन्तु इसका मुख्य कार्य सैन्ट्रल बैंक को अपनी सहकारी समितियों को दिये हुए ऋण की गारंटी देना है, इस कारण इसको गारंटी यूनियन कहते हैं । सहकारी साख समितियां मिलकर एक गारंटी यूनियन की स्थापना करती हैं । जो भी समिति यूनियन की सदस्य बनती है उसको अपनी साधारण सभा की बैठक में इस आशय का प्रस्ताव पास करना पड़ता है कि यदि कोई समिति अपना ऋण नहीं चुका पावेगी तो समिति उस दिवालिया समिति के ऋण को चुकाने की गारंटी देगी । समिति कितना रुपया चुकाने की गारंटी दे, इसका निश्चय भी साधारण सभा करती है । इस प्रकार यूनियन से संबंधित प्रत्येक समिति एक निश्चित रक़म की गारंटी देती है और यह सब मिला कर यूनियन की गारंटी होती है । यदि गारंटी यूनियन की कुल गारंटी ५००० रु० है तो सैन्ट्रल बैंक अथवा बैंकिंग यूनियन उसका ६ गुना अर्थात् ३०,००० रु० से अधिक उन समितियों को नहीं देगी । किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि किसी एक समिति को उसकी गारंटी से ६ गुने से अधिक न दिया जावे । समितियों को उनकी आवश्यकता तथा उनकी आर्थिक स्थिति के अनुसार अधिक भी दिया जा सकता है । समिति की साख का अनुमान सैन्ट्रल बैंक प्रति वर्ष करता है और उसी के अनुसार ऋण दिया

जाता है किन्तु समिति को गारंटी से १२ गुने से अधिक ऋण नहीं दिया जाता।

सर्व प्रथम गारंटी यूनियन बर्मा में स्थापित की गई। इसके उपरान्त बम्बई, संयुक्त प्रान्त, बरार, मध्य प्रान्त, बंगाल, तथा बिहार उड़ीसा में भी इनका प्रयोग किया गया किन्तु वे असफल हुईं। इन कारण वे क्रमशः टूट गईं और आगे फिर इन प्रान्तों में इस प्रकार की यूनियन स्थापित नहीं की गईं और न अन्य प्रान्तों तथा देशी राज्यों ने ही इन्हें अपनाया। जब कि साख समितियां अपरिमित दायित्व वाली होती हैं और बैंक उनके सदस्यों की हैसियत की जांच के उपरान्त साख निर्धारित करते हैं तब बैंक को कोई जोखिम नहीं रहती और न गारंटी की ही आवश्यकता रहती है। दूसरा दोष गारंटी यूनियन का यह है कि यदि कोई समिति अपना ऋण नहीं चुकाती तो जब तक कि उस समिति को या तो दिवालिया बना कर अथवा उसको फिर से संगठित करके उसका हिसाब ठीक नहीं कर दिया जाता तब तक बैंक किसी भी समिति को ऋण नहीं देता। समिति को लिक्यूडेट करने में कभी कभी बहुत समय लग जाता है, इस कारण कभी कभी कठिन समस्या उपस्थित हो जाती है।

इन्हीं कारणों से यह यूनियन सफल नहीं हुईं। केवल अपने जन्म स्थान बर्मा में वे कार्य करती रहीं। विद्वानों की सम्मति में बर्मा में सहकारिता आन्दोलन को जो भयंकर असफलता मिली है उसमें इन गारंटी यूनियन्स का भी हाथ है।

सुपरवाइज़िंग यूनियन (देख भाल करने वाली यूनियन)—सुपरवाइज़िंग यूनियन निम्न लिखित कार्य करती है:—ग्रामीय सहकारी समितियों की देख भाल करना तथा उनकी उन्नति का मार्ग दिखलाना, अपने क्षेत्र में नई सहकारी समितियों का संगठन करना तथा उनकी उन्नति करना, अपने से संबंधित समितियों की पूँजी की आवश्यकता का पता लगाना, तथा उनके सदस्यों की हैसियत का लेखा तैयार करके समिति की साख को निर्धारित करना, समितियों को उनके प्रबन्ध के विषय में तथा कार्य संचालन के विषय में उचित परामर्श देना, समिति के सदस्यों तथा उनके पंचायतदारों को सहकारिता की शिक्षा देने का प्रबंध करना, समितियों को यदि आवश्यकता हो तो क्रय विक्रय कार्य में सहायता देना तथा समिति और सैन्ट्रल बैंक के बीच में संबंध स्थापित करना।

सुपरवाइज़िंग यूनियन से संबंधित समितियां अपने प्रतिनिधियों को यूनियन की साधारण सभा में भेजते हैं। यूनियन की साधारण सभा एक कार्य कारिणी समिति का निर्वाचन करती है, इस समिति पर उस क्षेत्र के सैन्ट्रल बैंक का भी एक प्रतिनिधि रहता है। यह सामति सारा प्रबंध करती है और सहकारी समितियों की देख भाल के लिये एक सुपरवाइज़र नियुक्त करती है। प्रत्येक समिति को अपनी कार्य शील पूँजी के अनुपात में यूनियन को चन्दा देना होता है। सैन्ट्रल बैंक भी यूनियन को को आर्थिक सहायता देते हैं।

यद्यपि इन यूनियनों को चलाने में कुछ व्यय अवश्य होता है किन्तु आन्दोलन को सफल बनाने के किये यह आवश्यक है। ग्रामीण सहकारी समितियों का संगठन करने तथा उनको सबल बनाने के लिये यह आवश्यक है कि कोई उनकी देख भाल करे तथा उनको उचित परामर्श देता रहे।

मदरास प्रान्त में ४०० से ऊपर यूनियन देख भाल कर रही हैं। एक यूनियन एक ताल्लुके से बड़े क्षेत्र में कार्य नहीं करती। २० से ४० समितियां तक एक यूनियन से सम्बन्धित रहती हैं। मदरास में यूनियनों ने ज़िला संघ बना लिये हैं। ज़िले में जितनी यूनियन होती हैं उनका एक संघ बनाया जाता है जो कि यूनियन की देख भाल करते हैं।

संयुक्त प्रान्त में कोई सुपरवाइज़िंग यूनियन नहीं है, बड़ौदा में केवल दो यूनियन हैं, ट्रावंकोर में २० से ऊपर यूनियन देख भाल का कार्य कर रही हैं। बिहार में दो प्रकार की यूनियन हैं, एक तो आय व्यय निरीक्षण करती है दूसरी देख भाल करती है, कुर्ग में लगभग एक दर्जन यूनियन हैं, वे अधिक सफल नहीं हुई हैं। बम्बई में इस प्रकार की यूनियन सफलता पूर्वक कार्य कर रही हैं, वहां यह प्रयत्न किया जारहा है कि प्रान्त में कोई ग्रामीय सहकारी साख समिति ऐसी न रहे जो किसी न किसी यूनियन से सम्बन्धित न हो। ऐसी आशा की जाती है कि शीघ्र ही वहां प्रत्येक समिति यूनियन से सम्बन्धित हो जावेगी। पंजाब

में भी कोई यूनियन नहीं है। यह आश्चर्य की बात है कि पंजाब में जहां सहकारिता आन्दोलन सबसे अधिक सफल हुआ है, वहां यूनियन स्थापित नहीं की गई। किन्तु वहां यह कार्य प्रान्तीय सहकारी इंस्टिट्यूट करती है।

अवैतनिक कार्य कर्ता—प्रचार कार्य के लिये ग़ैर सरकारी अवैतनिक कार्यकर्ता नियुक्त किये गये। जिन सज्जनों को इस आन्दोलन से प्रेम तथा सहानिभूति थी, उन्हें आरगैनाइज़र नियुक्त कर दिया गया। अवैतनिक कार्य कर्ताओं का मुख्य कार्य नवीन समितियों का संगठन करना तथा पुरानी समितियों की देख भाल करना है। नई समितियों के संगठन का कार्य सैन्ट्रल बैंक के कर्मचारी भी करते हैं किन्तु प्रचार कार्य तथा संगठन कार्य में भेद है। अवैतनिक कार्य कर्ता रजिस्ट्रार अथवा डिपटी रजिस्ट्रार की अधीनता में कार्य करते हैं। कुछ दिनों के उपरान्त यह आवश्यकता प्रतीत होने लगी कि प्रचार कार्य को सुचारु रूप से चलाने के लिये इसको संगठन कार्य से पृथक कर दिया जावे। इसी उद्देश्य से प्रान्तीय सहकारी इंस्टिट्यूट स्थापित की गई। यद्यपि इन प्रान्तीय सहकारी संस्थाओं के भिन्न भिन्न प्रान्तों में भिन्न भिन्न नाम हैं, तथा उनके कार्यों में भी भिन्नता है, किन्तु सहकारिता का प्रचार करना उनका मुख्य कार्य है।

बम्बई में प्रान्तीय सहकारिता इंस्टिट्यूट है; पंजाब, मदरास तथा संयुक्तप्रान्त में प्रान्तीय सहकारिता यूनियन हैं, बंगाल और

आसाम में प्रान्तीय कोआपरेटिव आरगैनीज़ेशन सोसायटी है, बिहार, उड़ीसा, मध्यप्रान्त तथा बरार प्रान्तीय कोआपरेटिव फैडैरेशन और बर्मा में कोआपरेटिव काउंसिल है।

इनमें कुछ तो स्वतन्त्र संस्थायें हैं जो कि अपनी शाखाओं के द्वारा प्रचार कार्य करती हैं और कुछ समितियों की यूनियन हैं जो कि समितियों की ओर से कुछ कार्य करती हैं, तथा कुछ समितियों के संघ हैं। इस प्रकार सहकारिता आन्दोलन का कार्य तीन संस्थाओं के द्वारा हो रहा है। रजिस्ट्रार तथा उसके अधीनस्थ कर्मचारी शासन कार्य करते हैं। सैन्ट्रल तथा प्रान्तीय संस्थायें प्रचार करती हैं।

रजिस्ट्रार को अब भी सुपरविज़न, निरीक्षण, आय व्यय निरीक्षण, पंचायत, शिक्षा, तथा लिक्यूडेशन का कार्य करना पड़ता है। किन्तु निरीक्षण कार्य तो बहुत कुछ सैन्ट्रल बैंकों को देदिया गया है। आय व्यय निरीक्षण का, कार्य रजिस्ट्रार अपने स्टाफ़ से करवाता है किन्तु पंजाब संयुक्त प्रान्त तथा बिहार उड़ीसा में यह कार्य प्रान्तीय संस्थायें करती हैं। ४ तथा ५ अप्रेल १९३१ को हैदराबाद (दक्षिण) में होने वाली अखिल भारत-वर्षीय सहकारिता सम्मेलन में इस आशय का एक प्रस्ताव पास हुआ कि आय व्यय निरीक्षण तथा सुपरविज़न का कार्य आडिट यूनियन, प्रान्तीय इंस्टिट्यूट के अधीन करें। सहकारिता की शिक्षा देने का कार्य अभी तक रजिस्ट्रार ही करता है, किन्तु कुछ

प्रान्तों में वह यह कार्य इंस्टिट्यूट के सहयोग से करता है, बंबई में तो यह कार्य प्रान्तीय इंस्टिट्यूट को ही सौंप दिया गया है।

प्रान्तीय सहकारी संस्थाओं का मुख्य उद्देश्य यह होना चाहिये कि वे क्रमशः इस आन्दोलन को अधिकारी वर्ग के हाथों से निकाल कर जनता का आन्दोलन बनादें।

प्रान्तीय सहकारी संस्थायें

बम्बई:—बम्बई प्रान्तीय सहकारी इंस्टिट्यूट के निम्न लिखित मुख्य कार्य हैं:—(१) शिक्षा, (२) प्रचार, (३) सुपरविज़न, (४) सुधार कार्य, (५) जनता की आन्दोलन के संबंध में सम्मति प्रकट करना। समितियां तथा व्यक्ति दोनों ही इसके सदस्य हो सकते हैं। सदस्यों के चन्दे के अतिरिक्त सरकार से ३०,००० रु० वार्षिक सहायता इंस्टिट्यूट को मिलती है। कोई डिस्ट्रिक्ट बोर्ड तथा म्यूनिसिपल बोर्ड भी इंस्टिट्यूट को आर्थिक सहायता देते हैं। इंस्टिट्यूट की प्रत्येक जिलेमें शाखाएँ हैं। इंस्टिट्यूट ने एक शिक्षा बोर्ड नियुक्त कर दिया है जिसकी देख रेख में प्रान्त के भिन्न भिन्न स्थानों पर स्कूल खोले गये हैं जिनमें सहकारिता की शिक्षा दी जाती है। (सूरत, पूना, धारवार)। इसके अतिरिक्त अंग्रेज़ी तथा देशी भाषाओं में त्रैमासिक पत्रिकाएं प्रकाशित की

जाती हैं। प्रचार कार्य,ज़िला तथा डिवीज़नल कार्यकर्त्ता शाखाओं को सहायता से करते हैं। इंस्टिट्यूट ने गृह-निर्माण तथा विक्रय समितियों की स्थापना की है, वह ग्राम सुधार कार्य के लिये आर्थिक सहायता देती है। इंस्टिट्यूट का प्रबंध करने के लिये दो समितियां हैं:—कांऊसिल जिसमें रजिस्ट्रार के १० मनोनीत सदस्य रहते हैं और कार्य कारिणी जिस में रजिस्ट्रार के दो प्रतिनिधि रहते हैं।

पंजाब—पंजाब में प्रान्तीय कोआपरेटिव यूनियन है इसका मुख्य काम प्रचार, शिक्षा, आय व्यय निरीक्षण तथा सुपरविज़न (देख भाल) करना है। रजिस्ट्रार इसका सभापति होता है। यूनियन आय व्यय निरीक्षण तथा देख भाल का कार्य अपने कर्मचारियों से कराती है जिनकी संख्या लगभग ५०० है। प्रचार का काम इन्सपैक्टर करते हैं। यूनियन एक मासिक पत्र उर्दू में निकालती है। इसके अतिरिक्त सिनेमा, मैजिक लैन्टर्न, व्याख्यान प्रदर्शन करने वाली ट्रेन, तथा पुस्तकों को प्रकाशित करके प्रचार करती है। यूनियन प्रान्तीय सम्मेलन का भी आयोजन करती है। यूनियन को आडिट फ़ीस मिलती है तथा प्रान्तीय सरकार आर्थिक सहायता देती है।

मदरास—मदरास यूनियन के मुख्य कार्य प्रचार, नई तथा विशेष प्रकार की समितियों को स्थापित करना, तथा सुपरवाइज़िंग यूनियन की सहायता करना है। यूनियन अंग्रेज़ी में सहकारिता विषयक मासिक पत्रिका प्रकाशित करती है, पंचायतदारों

की शिक्षा का प्रबंध करती है, सहकारिता के सिद्धान्त का प्रचार करती है, ग्राम संगठन केन्द्र चलाती है, तथा प्रान्तीय सहकारिता सम्मेलन का आयोजन करती है। ग्राम संगठन केन्द्रों का व्यय उस क्षेत्र का सैन्ट्रल बैंक तथा प्रान्तीय बैंक देता है। प्रत्येक ग्राम संगठन केन्द्र पर २००० रु० वार्षिक व्यय होता है। मद्रास सरकार यूनियन को केवल १२०० रु० वार्षिक सहायता देती है।

बिहार-उड़ीसा में प्रान्तीय फ़ैडरेशन है। प्रत्येक समिति अपना प्रतिनिधि कांग्रेस में भेजती है जिसका वार्षिक अधिवेशन होता है। प्रांत को पांच डिवीज़नों में बांटा गया है। प्रत्येक डिवीजन में एक बोर्ड स्थापित किया गया है। प्रचार कार्य के लिये प्रत्येक डिवीजन में पांच कर्मचारी रक्खे गये हैं। प्रत्येक समिति को तथा सैन्ट्रल बैंक अपनी कार्य-शील पूँजी के अनुपात से फ़ैडरेशन को चन्दा देना पड़ता है। प्रान्तीय सरकार भी लगभग १०,००० रु० वार्षिक सहायता देती है। सहकारिता की शिक्षा देने के लिये इंस्टिट्यूट स्थापित की गई है। फ़ैडरेशन एक हिन्दी मासिक पत्रिका (बिहार सहयोग) तथा एक अंग्रेजी त्रैमासिक पत्रिका प्रकाशित करती है।

बंगाल—बंगाल में सहकारी आरगैनीज़ेशन सोसायटी है, यह प्रान्तीय संस्था अपने से सम्बन्धित समितियों की देख भाल करती है, दो पत्रिकाएं प्रकाशित करती है, कलकत्ते में एक पुस्तकालय चलाती है। व्याख्यान दाताओं को ज़िलों में भेज कर

प्रचार कार्य करती है, प्रान्तीय सम्मेलन का आयोजन करती है, तथा कर्मचारियों की शिक्षा का प्रबन्ध करती है।

संयुक्त प्रान्त—यहां प्रान्तीय सहकारी यूनियन है, जिसका सभापति रजिस्ट्रार होता है, सैन्ट्रल बैंक तथा सहकारी समितियां उसके सदस्य होते हैं। यूनियन सम्बन्धित समितियों की देख भाल का कार्य करती है। यूनियन १०० से अधिक आय व्यय निरीक्षक नियुक्त करती है। प्रांतीय सरकार यूनियन को लगभग ६६०००) रु० वार्षिक सहायता देती है। इसके अतिरिक्त सदस्यों से फ़ीस लीजाती है। आय व्यय निरीक्षण कार्य के लिये अलहदा फ़ीस ली जाती है।

मध्य प्रान्त—यहां प्रांतीय फ़ैडरेशन शिक्षा, तथा देख भाल का कार्य करती है। प्रान्त को पांच भागों में बांटा गया है, और प्रत्येक डिवीज़न में एक इंस्टिट्यूट स्थापित की गई है जो कि इस कार्य को करती है। इनमें बरार इंस्टिट्यूट सबसे अच्छा कार्य कर रही है। समितियों की देख भाल करने के लिये कर्मचारी नियुक्त किये गये हैं। फ़ेडरेशन एक हिन्दी मासिक पत्र (ग्राम) भी प्रकाशित करती है।

आसाम—यहां सुरमा घाटी की एक प्रान्तीय संगठन समिति (Surma Valley Co-operative Organisation Society) स्थापित की गई है। प्रत्येक समिति प्रान्तीय समिति को अपनी कार्यशील पूँजी के अनुपात में चन्दा देती है। आसाम में

शिक्षा का सर्वथा अभाव है, इस कारण समिति मैजिक लैनटर्न के द्वारा प्रचार कार्य करती है। इस कार्य के लिये उपदेशक भेजे जाते हैं। समिति एक बंगाली त्रैमासिक पत्रिका भी प्रकाशित करती है। इसी प्रकार की एक और समिति की स्थापना हुई है, जो आसाम के ऊपरी आधे हिस्से में कार्य करती है।

बर्मा—बर्मा कोआपरेटिव काऊंसिल, आय व्यय निरीक्षण, प्रान्तीय सम्मेलन का आयोजन, तथा प्रचार कार्य करती किन्तु आन्दोलन की हीन दशा के कारण वह टूट गई।

सहकारिता की शिक्षा—सहकारिता आन्दोलन की पूर्ण सफलता के लिये यह आवश्यक है कि सहकारिता आंदोलन को चलाने वाले कर्मकारी तथा समितियों और सैन्ट्रल बैंकों के पंचायतदार तथा डायरैक्टर गण सहकारिता के सिद्धान्त को भली भांति जानें। यह कार्य केवल शिक्षा के द्वारा होसकता है। किन्तु अभी सहकारिता की शिक्षा का उचित प्रबन्ध नहीं हुआ है। प्रान्तीय सहकारी संस्थायें इस ओर प्रयत्न कर रही हैं और सहकारी विभाग के सहयोग से शिक्षा का आयोजन किया जा रहा है। किन्तु अभी इसका प्रारम्भिक काल ही है। बम्बई, पंजाब मदरास, बिहार-उड़ीसा, हैदराबाद, बड़ौदा तथा मध्य प्रान्त में स्थायीरूप से सहकारिता की शिक्षा देने के लिये कक्षायें खुलगई हैं। बंगाल, बर्मा तथा बरार में प्रतिवर्ष कक्षायें नहीं खुलतीं किन्तु कभी कभी कक्षाओं के खोलने का प्रबन्ध होता है और नये कर्मचारियों को शिक्षा दी जाती है।

जिन प्रान्तों में स्थायी रूप से कक्षायें खोली गई हैं, वहां केवल सहकारिता विभाग के कर्मचारियों को ही शिक्षा नहीं दी जाती वरन् सैन्ट्रल बैंक के मैनेजरों तथा इंस्पैक्टरों और समितियों के मन्त्रियों को भी शिक्षा दी जाती है । बम्बई, मदरास, पंजाब, बिहार-उड़ीसा, की प्रान्तीय सरकारी संस्थायें प्रति वर्ष एक परीक्षा लेती हैं और उत्तीर्ण विद्यार्थियों को प्रमाण पत्र दिया जाता है। इन कक्षाओं में निम्न लिखित विषय पढ़ाये जाते हैं:— कोआपरेटिव आयव्यय निरीक्षण, कोआपरेटिव बैंकिंग, कोआपरेटिव ला (क़ानून), कोआपरेटिव बुक कीपिंग (वही खाता), कृषि, तथा ग्रामीय अर्थशास्त्र ।

वह समय आगया है जब कि सहकारिता की शिक्षा का प्रत्येक प्रान्त में उचित प्रबंध होना चाहिये। प्रत्येक प्रान्त में एक कालेज स्थापित किया जाना चाहिये जिसका डिप्लोमा सहकारिता विभाग तथा सैन्ट्रल बैंक के कर्मचारियों को प्राप्त करना आवश्यक हो।

बीसवां परिच्छेद

ग्राम सुधार और सहकारिता

भारतवर्ष गांवों का देश है, सात लाख गांवों में देश की लगभग ६० फ़ी सदी आबादी रह रही है। लेकिन गांवों में ग़रीबी, कलह, बीमारियों, गंदगी, अशिक्षा, और पुरानी हानिकर रस्मों का ऐसा ज़ोर है कि गांवों की दशा बहुत गिरगई है। हमारे गांव मनुष्यों के रहने लायक़ नहीं रहे हैं, यही कारण है कि जो गांव का रहने वाला पढ़ लिख जाता है, वह गांव में न रहकर शहर की ओर दौड़ता है। यही नहीं, वृद्ध अवस्था होने पर जब कि वह नौकरी या अपने धन्धे से छुट्टी लेता है, तब भी वह गांव को न लौटकर शहर में बस जाता है। पढ़े लिखे लोगों की बात जाने दीजिये, ज़मींदार भी गांवों में रहना नहीं चाहते, वे भी ज़मींदारी की आमदनी से शहरों में ही रहना चाहते हैं। जो भी कारीगर गांव में रहकर कुशलता प्राप्त कर लेता है वह भी शहर की ओर चल देता है। इस प्रकार आज हमारे गांवों से पूँजी, मस्तिष्क, तथा हुनर बाहर निकला चला जारहा है और गांवों में अशिक्षित तथा निर्धन किसान और कारीगरों के बीच में चतुर साहूकार उनको लूटने के लिये रहजाता है। फल यह होरहा है कि गांवों में निर्धन किसानों को रास्ता दिखलाने वाला कोई नहीं है। गांवों को उजड़ने से बचाने के लिये यह आवश्यक है कि गांवों की दशा में सुधार किया जावे जिससे कि पढ़े लिखे तथा पैसे वाले ग्रामीण गांव छोड़कर बाहर न जावें।

गांवों की दशा इतनी बुरी होते हुए भा सरकार और जनता सभी गांवों की ओर से उदासीन हैं। जो कुछ थोड़ा बहुत शिक्षा स्वास्थ तथा सड़कें बनवाने का कार्य होता है, शहरों में ही होता है, गांवों की ओर कोई भी ध्यान नहीं देता। इसका कारण यह है कि शहर वालों के पास पत्र हैं प्लेट-फार्म हैं तथा वे शोर मचाना जानते हैं, एसैम्बली तथा कौंसलों में हमारे प्रतिनिधि चिल्लाया करते हैं इस कारण सरकार को शहरों के लिये कुछ न कुछ करना ही पड़ता है। शहरों में शिक्षा, स्वास्थ तथा उद्योग-धन्धों और व्यापार की उन्नति के लिये सरकार को कुछ न कुछ करना ही पड़ता है, परन्तु गांवों की ओर से सभी उदासीन हैं। कैसे आश्चर्य की बात है कि यदि कपड़े स्टील, तथा शक्कर के कारखानों को घाटा होने लगता है तो कारखानों के मालिक, व्यवस्थापिका सभा के सदस्य तथा समाचार पत्र आकाश पाताल एक कर देते हैं और इन धन्धों को संरक्षण मिलता है, किन्तु खेती बारी की ओर जिस पर इस देश का आर्थिक संगठन अवलम्बित है और जिसकी दशा अत्यन्त शोचनीय है, कोई ध्यान तक नहीं देता। ग्रामीण जनता मूक तथा अशिक्षित है, इस कारण यह प्रतिवाद भी नहीं कर सकती। किन्तु कपतिय सज्जनों ने ग्रामीण जीवन के दुखदाई पतन को देखकर इस दिशा में कार्य करना प्रारम्भ किया है। बम्बई के कांग्रेस अधिवेशन (दिसम्बर १९३४ ई०) ने महात्मा गांधी के नेतृत्व में जो ग्रामीण-उद्योग संघ नामक संस्था को जन्म दिया है, इसके कारण

जनता और सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित अवश्य हुआ है। हम यहां पर संक्षेप में देश के अन्तर्गत होने वाले ग्राम सुधार कार्य का दिग्दर्शन मात्र करावेंगे।

गुरगांव में सुधार कार्य—पंजाब के गुरगांव ज़िले में श्रीयुत एफ़. एल. ब्राइन तथा श्रीमती ब्राइन ने १४०० गांवों में सुधार कार्य अत्यन्त उत्साह पूर्वक किया है। गुरगांव ज़िले में इस कार्य का संरक्षण करने तथा इस कार्य की देख भाल करने के लिये ग्रामीण-कौंसिल स्थापित की गई है। इस कौंसिल के सदस्य सरकारी कर्मचारी तथा ग़ैर सरकारी सज्जन जो इस कार्य से सहानुभूति रखते हैं, होते हैं। सदस्यों को थोड़ी सी फ़ीस देनी होती है। कौंसिल में उन सब विभागों के अधिकारी, जिनका कि सम्बन्ध गांवों से रहता है, अवश्य रहते हैं; जैसे शिक्षा विभाग इत्यादि। कौंसिल ग्राम सुधार कार्य का वार्षिक प्रोगाम तैयार करती है तथा ज़िले में वह कार्य किस प्रकार किया जावे इस विषय पर अपनी सम्मति देती है। कार्य को चलाने के लिये दो स्कूल खोले गये हैं। एक स्कूल ग्रामीण पुरुष कार्यकर्त्ताओं को तैयार करता है, तथा दूसरा स्कूल स्त्री कार्यकर्त्ताओं को तैयार करता है। यह कार्यकर्त्ता ही ग्राम सुधार का कार्य करते हैं। प्रत्येक ग्राम में एक सहकारी साख समिति तथा एक स्कूल स्थापित किया जाता है। स्कूल के अध्यापक को ग्राम सुधार कार्य की शिक्षा दी जाती है तथा स्कूल को इस कार्य का केन्द्र बनाया जाता है। जो कुछ सुधार गांव में आवश्यक समझे जाते हैं, उन

को शिक्षा बालक बालिकाओं को स्कूल में दी जाती है। श्रीयुत् ब्राइन लड़कियों की शिक्षा पर बहुत ज़ोर देते हैं और सह-शिक्षा को आर्थिक दृष्टि से आवश्यक बतलाते हैं। खेती की उन्नति के लिये प्रत्येक गांव में हिसार सरकारी फ़र्म के सांड खरीद कर रक्खे गये हैं जिनके संसर्ग से गांव के पशुओं की नस्ल को अच्छा बनाने का प्रयत्न किया गया है। चरस की जगह कूओं से सिंचाई करने के रहट का प्रचार किया गया है, अच्छा बीज सहकारी साख समितियों द्वारा बेचा जाता है तथा उधार भी दिया जाता है। किसानों को गोबर तथा गांव का दूसरा कूड़ा गड्ढों में भर कर खाद बनाना सिखाया जाता है। गोबर थापने की आर्थिक हानियां बता कर कंडे जलाने से किसानों को रोका जाता है। इससे तीन लाभ होते हैं। खेतों के लिये बढ़िया यथेष्ट खाद मिलती है, गांव में कूड़े तथा खाद के ढ़ेरों के कारण जो गंदगी रहती है वह दूर होती है, तथा स्त्रियों को कंडे थापने के गंदे काम से छुट्टी मिलती है और वे इस समय को सीने पिरोने तथा घर को साफ़ रखने में लगा सकती हैं। स्वास्थ्य के लिये श्रीयुत ब्राइन ऊपर लिखे हुये ढंग से गांव की सफ़ाई रखने के अतिरिक्त, पिट-लैट्रिन (गड्ढे वाले शौच गृह) तैयार कराने पर बहुत जोर देते हैं तथा मैदान में शौच जाने की रीति को छुड़वाते हैं। वर्षा ऋतु में कुनीन तथा मच्छरदानी का उपयोग करने तथा प्लेग और चेचक का टीका लगवाने को कहा जाता है। गांव की लड़कियों को कपड़ा सीने, काढ़ने तथा बुनने का काम सिखाया जाता है

और घरों को अधिक सुन्दर रखने का ढंग बतलाया जाता है। इन सब बातों का प्रचार मैजिक लैनटर्न, व्याख्यानों, सिनेमा फिल्मों तथा गानों के द्वारा किया जाता है। रेडियो के उपयोग पर भी श्री ब्राइन की नज़र है। मुकदमेबाज़ी कम करने, ज़ेवर में रुपया व्यर्थ न गंवा कर साख समिति में रुपया जमा करने तथा स्त्रियों के भारी कामों के बोझ को हलका करने को गांव वालों से कहा जाता है।

प्रान्तीय सरकार तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड ने इस कार्य के लिये आर्थिक सहायता प्रदान की। किन्तु श्रीयुत ब्राइन के चले जाने पर गुरगांव में कार्य शिथिलता आ गई। अभी थोड़ा समय हुआ कि पंजाब सरकार ने प्रान्तीय ग्राम सुधार विभाग का कमिश्नर बना कर श्रीयुत ब्राइन को प्रान्त में ग्राम सुधार कार्य करने के लिये फिर बुला लिया है।

श्रीनिकेतन (विश्व भारती) का ग्राम सुधार कार्य— महाकवि श्रीयुत रवीन्द्रनाथ टगोर ने शांति निकेतन विश्व भारती (विश्व विद्यालय) के साथ ही साथ श्रीनिकेतन नामक ग्राम सुधार कार्य करने वाली संस्था को भी जन्म दिया है। श्रीनिकेतन में ग्राम सुधार कार्य का केन्द्र स्थापित किया गया है जो वीरभूम ज़िले में ग्राम सुधार कार्य को चलाता है। अभी तक ६ ग्राम सुधार समितियां स्थापित की गई हैं। श्रीनिकेतन में एक केन्द्रीय उद्योग मन्दिर स्कूल स्थापित किया गया है जहां शिक्षा के साथ साथ ग्रामीय उद्योग-धन्धों की शिक्षा दी जाती है और गांवों के

बालकों को इस योग्य बनाया जाता है कि वे गांवों में जाकर वहां का नेतृत्व करें। केन्द्रीय स्थान में एक सैंट्रल सहकारी बैंक स्थापित किया गया है जिससे ग्रामीण सहकारी साख समितियां संबंधित हैं। यह समितियां गांवों में साख का प्रबन्ध करती हैं। श्रीनिकेतन में वृती बालक (बालचर) नामक संस्था को जन्म दिया गया है, जो नवयुवक इस ग्राम सुधार कार्य में सहायता देना चाहते हैं, उन्हें शिक्षा दी जाती है और उनको गांवों में भेज कर कार्य कराया जाता है। गांवों की सफ़ाई, स्वास्थ्य, शिक्षा, तथा अन्य आवश्यक कार्यों में वृती बालकों से खूब सहायता मिलती है। सहकारी साख समितियां तथा ग़ैर साख समितियां, उत्तम बीज, हल, और खाद का प्रचार करती हैं तथा पैदावार को बेचने का प्रबन्ध करती हैं।

दक्षिण भारत में वाई. एम. सी. ए. (Y. M. C. A.) का ग्राम सुधार कार्य—दक्षिण भारत में यंग मैन क्रिश्चियन एसोसियेशन ने ग्राम सुधार कार्य बड़ी सफलता से किया है। कुछ केन्द्रों में अच्छी सफलता प्राप्त हुई है। ट्रावंकोर राज्य में मारतंडम, मालाबार में आर्याकोड, निल्लौर में इन्द्रकूपेट, तथा नीलगिरी (मद्रास) में रामनाथपुरम, विशेष उल्लेखनीय हैं।

वाइ. एम. सी. ए. के ग्राम सुधार कार्य करने का ढङ्ग गुरगांव की योजना से भिन्न है। जहां भी ग्राम सुधार कार्य करना होता है, वहां निरीक्षण करने के उपरान्त एक ऐसा केन्द्रीय गांव ढूंढ लिया जाता है जो समीपवर्ती गांवों के मध्य में हो।

केन्द्रीय गांव में ग्राम सुधार केन्द्र स्थापित किया जाता है। इस केन्द्र के द्वारा ही समीपवर्ती गांवों में ग्राम सुधार कार्य होता है।

केन्द्र प्रदर्शन तथा प्रयोग करने का स्थान होता है। केन्द्र में अच्छी जाति के गाय और बैल रक्खे जाते हैं जिनके द्वारा समीपवर्ती गांवों के पशुओं की नस्ल अच्छी बनाई जाती है। केन्द्र में मुर्गी पालने के धन्धे को वैज्ञानिक ढङ्ग से चलाने की शिक्षा देने के लिये अच्छी जाति के मुर्गे मंगा कर रखे जाते हैं, जिनसे समीपवर्ती गांवों में मुर्गियों की नस्ल अच्छी हो। मुर्गी के लिये स्वास्थप्रद घर बिना अधिक व्यय किये किस प्रकार बनाये जाते हैं तथा उनका पालन किस प्रकार करना चाहिये, इसकी व्यवहारिक शिक्षा केन्द्र में दी जाती है। इसके अतिरिक्त शहद की मक्खी पालकर शहद निकालने का धन्धा किस प्रकार चलाया जाता है, इसका प्रदर्शन भी केन्द्र में किया जाता है। केन्द्र में बुनाई की शिक्षा भी दी जाती है। अस्तु, केन्द्र प्रदर्शन तथा शिक्षा कार्य करता है। समीपवर्ती गांवों के जो निवासी इन धन्धों को सीखना चाहते हैं उनको यह धन्धे सिखा दिये जाते हैं, और जब केन्द्र में सीखे हुए ग्रामीण लोग उन धन्धों को करने लगते हैं तब सहकारी विक्रय समितियां स्थापित करके उनकी पैदावार को बेचने का प्रबंध किया जाता है। मारतंडम में अंडे बेचने वाली समिति समीपवर्ती गांवों के अंडों को मदरास भेजती है। अकेले इस धन्धे से गांव वालों की यथेष्ट आय वृद्धि हुई है। केन्द्र में चारे की ऐसी फ़सलें तैयार की जाती हैं जो कि

एक मास में तैयार हो जावें, और गांव वालों को अपने पशुओं के चारे के लिये उन फ़सलों को एक छोटे से भूमि के टुकड़े पर बराबर पैदा करने के लिये उत्साहित किया जाता है। केन्द्र में खाद बनाने के ढंग तथा गांवों में गढ़े खोद कर शौचगृह तैयार करने का भी प्रदर्शन किया जाता है। केन्द्र में एक स्कूल तथा एक पुस्तकालय भी रहता है। स्कूल तथा पुस्तकालय की इमारत इस प्रकार की होती है कि आसानी से प्रत्येक गांव में कम व्यय करके बनाई जा सके। इन इमारतों को गांव वाले ही तैयार कर लेते हैं तथा सामान भी वही लगाया जाता है जो कि गांव में मिलता है। इस कारण नाम मात्र की लागत में इमारतें तैयार तैयार हो जाती हैं। केन्द्र का पुस्तकालय समीपवर्ती गांवों के पुस्तकालयों को पुस्तकें प्रति सप्ताह भेजता रहता है। चलते फिरते पुस्तकालयों के ढंग पर यह कार्य होता है। केन्द्रीय पुस्तकालय प्रत्येक गांव के पुस्तकालय को पुस्तकों का एक सैट भेज देता है। १५ दिन के उपरान्त प्रत्येक गांव के पुस्तकालय को केन्द्रीय पुस्तकालय द्वारा बतलाये हुये गांव को अपने पास वाला सैट भेज देना पड़ता है। इस प्रकार हर एक गांव में १५ दिन बाद नया सैट आजाता है। केन्द्र का मन्त्री समीपवर्ती गांवों में वाई. एम. सी. ए. स्थापित करता है। इन संस्थाओं के द्वारा केन्द्र के कार्यों का प्रचार किया जाता है। प्रत्येक ग्राम में एक सहकारी साख समिति स्थापित कीजाती है, स्कूल तथा पुस्तकालय खोले जाते हैं। रात्रि को इन्हीं स्कूलों की इमारतों में पुरुषों को व्याख्यान,

मैजिक लैनटर्न, तथा छोटे छोटे प्रहसनों के द्वारा अपने जीवन को अधिक सुखी बनाने के लिये प्रेरित किया जाता है। पंचायतें स्थापित कीजाती हैं, गांव के बालकों में सेवा भाव भरने के लिये स्काउटिंग की शिक्षा दी जाती है, तथा सफ़ाई और स्वास्थ के नियमों का प्रचार किया जाता है। केन्द्र का मन्त्री समीपवर्ती गांवों में कुछ ऐसे उत्साही कार्यकर्त्ता तैयार कर देता है जो केन्द्र की योजना का गांवों में प्रयोग करते रहते हैं। केन्द्र से इन गांवों की संस्थाओं को परामर्श तथा सहायता मिलती रहती है।

इनके अतिरिक्त और बहुतसी संस्थाएं तथा व्यक्ति अपनी शक्ति के अनुसार देश के भिन्न भिन्न भागों में ग्राम सुधार कार्य कर रहे हैं।

बंगाल में सर डेनियल हैमिल्टन ने सुन्दरबन के नम डेल्टा प्रदेश में आधुनिक ढंग की बस्तियां बसाई हैं, सहकारी साख समितियां स्थापित की गई हैं, पंचायतों के द्वारा लड़ाई झगड़ों का का फ़ैसला किया जाता है, मकान साफ़ रक्खे जाते हैं। किसानों की पैदावार बेचने के लिये विक्रय सहकारी समितियां स्थापित की गईं हैं। शिक्षा देने के लिये वर्नाक्यूलर स्कूल तथा अंग्रेज़ी स्कूल खोले गये हैं तथा बीमारियों को रोकने के लिये औषधालयों का भी आयोजन किया गया है। कोयम्बटूर में भी एक संस्था ग्राम सुधार कार्य कर रही है। श्रीयुत रामदास पंतलू की भी एक योजना है जिसके अनुसार मदरास प्रान्त में कार्य हो रहा है। श्री एम. के. राय ने उड़ीसा में ग्राम शिक्षा कार्य

किया है। पूर्व गोदावरी ज़िले में अलाभारू ग्राम सुधार योजना विशेष उल्लेखनीय है। इस योजना को ग्राम सुधार कार्य में विशेष सफलता प्राप्त हुई है। अलाभारू में जो कुछ भी ग्राम सुधार कार्य हुआ, उसका श्रेय श्री एच. एन. सत्यनारायण को है। प्रदेश घना आबाद है, प्रत्येक गांव में सहकारी समितियां स्थापित करदी गई हैं जो सफलता पूर्वक कार्य कर रही हैं। कुओं का खोदना, तालाबों का बनाना, सड़कें निकालना, बालकों की शिक्षा पुस्तकालय व्याख्यानों का प्रबन्ध, भिन्न भिन्न प्रकार की सहकारी समितियां, सहकारी भूमि बन्धक बैंक इस योजना की विशेषताएं हैं। ग्राम सुधार कार्य को चलाने के लिये राम मन्दिर नामक संस्था को जन्म दिया गया है। राम मन्दिर की देख रेख में ही यह कार्य होरहा है। जुआ तथा शराब का सफलता पूर्वक बहिष्कार किया गया है। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि अलाभारू की योजना भारतवर्ष में एक सफल योजना है।

पूना ज़िले में डैकन ऐग्रीकल्चर ऐसोसियेशन (दक्षिण कृषि सभा) ग्राम सुधार कार्य कर रही है। इसके सभापति श्री० जी. के. देवधर हैं। इसके अतिरिक्त देवधर मालाबार रिकंसट्रकशन ट्रस्ट मालाबार के पांच केन्द्रों में मोपलाओं के बीच ग्राम सुधार कार्य कर रहा है। हैदराबाद में डोरनाकल विलेज वैलफेयर ऐसो-सियेशन भी ग्राम शिक्षा, उद्योग-धन्धों की उन्नति तथा स्वास्थ्य रक्षा का कार्य करती है।

सरोज नलनीदत्त ऐसोसियेशन (कलकत्ता) अधिकतर

बंगाल और आसाम में ग्रामीण स्त्रियों में शिक्षा, सफ़ाई, स्वास्थ्य, गृह-उद्योग-धन्धों का प्रचार तथा स्त्रियों की आर्थिक तथा सामाजिक उन्नति करने का प्रयत्न कर रही है। यह बंग लक्ष्मी नामक पत्रिका भी निकालती है।

बंगाल में आसंसोल के समीप ऊषा ग्राम में ईसाई मिशनरियों के द्वारा श्रीनिकेतन के ढंग पर काम किया जा रहा है।

संयुक्त प्रान्त में ग्राम संगठन कार्य—बनारस ज़िले में श्रीयुत बी. एन. मेहता आई. सी. एस. ने जब कि वे ज़िलाधीश थे, बड़े उत्साह के साथ सहकारिता विभाग के सहयोग से ग्राम सुधार कार्य किया था। श्रीयुत मेहता की योजना गुरगांव की योजना से कुछ मिलती जुलती है। योजना इस प्रकार है:—बनारस में एक केन्द्रीय संस्था स्थापित की गई है। इस संस्था का उद्देश्य बनारस ज़िले में ग्राम सुधार कार्य करना है। सरकारी कर्मचारी तथा ग़ैर सरकारी सज्जन जो भी इस कार्य से सहानुभूति रखते हैं इसके सदस्य हो सकते हैं। यह केन्द्रीय संस्था गांवों की सारी समस्याओं को हल करती है। इसमें डाक्टर, स्वास्थ्य विभाग के कर्मचारी, कृषि विशेषज्ञ, पशुओं के विषय में जानकारी रखने वाले, अध्यापक, कला कौशल के विशेषज्ञ सभी सदस्य हैं। यह संस्था गांवों के सारे रोगों का इलाज ढूँढ़ निकालती है और गांवों में कार्य करने वाले कार्यकर्त्ता उस इलाज को गांव वालों को बतलाते हैं। ग्राम सुधार कार्य करते हुए जो कोई कठिनाई उपस्थित होती है, वह केन्द्रीय संस्था के सामने उपस्थित

जाती है। संस्था उस विषय के जानकारों की राय लेती है और उस कठिनाई को हल करती है।

बनारस में ही एक ट्रेनिंग क्लास खोला गया है जिसमें गांवों में कार्य करने वाले कार्यकर्त्ता तैयार किये जाते हैं। यह कार्यकर्त्ता संस्था द्वारा बनाये हुये प्रोग्राम के अनुसार गांवों में सुधार कार्य करते हैं। गांवों में सफाइ, स्वास्थ्य खेती बारी में सुधार, पंचायतों की स्थापना इत्यादि समस्याओं के विषय में संस्था बतलाये हुये ढंग से प्रचार करना इन कार्यकर्त्ताओं का काम होता है।

श्रीयुत मेहता ने ग्राम सुधार कार्य में गांव की पाठशाला की मदद लेने पर बहुत जोर दिया है। उनका कहना है कि गांव की पाठशाला को ग्राम सुधार कार्य का केन्द्र बनाना चाहिये। बनारस जिले में जहां जहां ग्राम सुधार किया गया, वहां वहां पाठशालायें खोली गईं और बच्चों के साथ ही प्रौढ़ों को भी शिक्षा दी गई। जब माता पिता शिक्षा के महत्व को समझ लेते हैं तब वे अपने बच्चों को पाठशाला भेजने में आनाकानी नहीं करते। पाठशाला का शिक्षक गांव वालों में उन सब बातों का प्रचार करता है जिनकी गांव में आवश्यकता होती है। गांवों में जलाने के लिये ईंधन कम होने के कारण गांव के लोग गोबर के कंडे जलाते हैं, जिससे बहुमूल्य खाद नष्ट होता है। इस समस्या को हल करने के लिये श्री मेहता ने यह योजना निकाली कि कि ग्राम निवासियों को यह बतलाया जावे कि वृक्ष लगाना पुण्य का काम है, इस लिये

वर्ष में एक दिन वृक्ष लगाने का त्यौहार मनाया जावे। उस दिन गांव का रहने वाला हर एक पुरुष एक एक वृक्ष लगावे। इस प्रकार थोड़े दिनों में ईंधन की समस्या हल हो सकती है और गोबर खाद के लिये बच सकता है। बनारस ज़िले में गांवों की सफ़ाई के लिये दिवाली और होली के त्यौहारों का विशेष उपयोग किया गया है। दिवाली और होली के त्यौहारों पर हर एक गृहस्थ अपने घर की सफ़ाई करता है, बनारस में गांव वालों को यह समझाया गया कि घर के साथ गांव की सफ़ाई करना भी उनका धर्म है। इस प्रकार वर्ष में गांवों की दो बार सफाई हो जाती है।

बनारस की ग्राम सुधार संस्था गांव में कार्य करने वालों को, सहकारिता विभाग की सहायता से उन सब विषयों की शिक्षा देती है जो कि गांवों में कार्य करने वालों के लिये आवश्यक हैं। यह उपदेशक (कार्यकर्त्ता) घूम घूम कर गांवों में मैजिक लैन्टर्न द्वारा तथा अन्य साधनों से प्रचार करते हैं। दाइयों को आधुनिक ढंग से बच्चा जनाने की शिक्षा दी जाती है। श्रीयुत मेहता ने इस बात पर बहुत ज़ोर दिया है कि गांव वालों के अन्ध विश्वासों तथा समाज की बुरी रूढ़ियों को नष्ट करने के लिये यह आवश्यक है कि गांव की किम्वदन्तियां, ग्राम्य गीतों, तथा कहावतों का ही उपयोग किया जावे। ऐसे गीत, किम्वदन्तियां और कहावतें इकट्ठी की जावें जो कि अन्ध-विश्वासों के विरुद्ध हों और उनको गाकर तथा सुना कर उनका प्रचार किया जावे। श्रीयुत मेहताजी ने इस प्रकार की कहावतें इकट्ठी भी की हैं।

जच्चा को जिस प्रकार रखना चाहिये, बच्चों का पालन किस प्रकार करना चाहिये, तथा हैजा प्लेग और चेचक इत्यादि रोगों से किस प्रकार बचना चाहिये, यह सब बातें गांव वालों को बतलाई जाती हैं तथा औषधियां बांटने का भी प्रबंध किया जाता है।

श्री० मेहताजी ने देशी खेलों के द्वारा गांव के बालकों के स्वास्थ्य को सुधारने का प्रयत्न किया है। गांवों में अखाड़े खोले गये हैं जिनमें गांव के युवक कुश्ती लड़ते हैं।

सहकारिता विभाग की सहायता से गांवों में साख समितियां, रहन सहन सुधार समितियां और कहीं कहीं क्रय विक्रय समितियां भी स्थापपित की गई हैं।

श्रीयुत् मेहता जब तक बनारस के ज़िलाधीश रहे तब तक तो ग्राम सुधार कार्य बड़े उत्साह से होता रहा किन्तु उनके बनारस से चले जाने के उपरान्त कार्य में कुछ शिथिलता आ गई।

प्रतापगढ़ में ग्राम संगठन कार्य—संयुक्त प्रान्त में बनारस के अतिरिक्त प्रतापगढ़ ज़िले में सहकारिता विभाग ने ग्राम संगठन कार्य किया है। लगभग पांच वर्ष हो गये जब प्रतापगढ़ ज़िले में ग्राम संगठन कार्य आरम्भ किया गया था। सहकारिता विभाग ने अपनी बहुत सारी शक्ति इस कार्य में लगा दी है।

रहन सहन सुधार समितियों की अधिक संख्या में स्थापना

की गई है। यह समितियां गांवों की सफ़ाई करवाती हैं; गड्ढ़ों में खाद तैयार करवातीं हैं, तथा ग्रामीणों को सामाजिक कार्यों पर फ़िज़ूलख़र्च करने से रोकती हैं। गांव वालों के आपस के झगड़ों का निबटारा करने के लिये पंचायतें स्थापित की गई हैं। इन गांवों में साख समितियों के द्वारा किसान को समुचित साख देने का प्रयत्न किया जा रहा है। कृषि विभाग के सहयोग से उत्तम बीज, खाद, तथा यन्त्रों का प्रचार किया जा रहा है और स्वास्थ्य विभाग की सहायता से गांवों की सफ़ाई कराने तथा बीमारियों को रोकने का प्रयत्न किया जा रहा है। कुछ लोगों का यह कहना है कि सहकारिता विभाग को अब अपनी शक्ति अन्य ज़िलों में लगानी चाहिये।

इन दो स्थानों के अतिरिक्त फ़ैज़ाबाद ज़िले में भी ग्राम संगठन कार्य शुरू किया गया है। गोंडा ज़िले से कोर्ट आफ़ वार्डस ने " मेरी उम्मेद " नामक आदर्श गांव बसाया है।

राजपूताने के जयपुर राज्य में "बनस्थली" नामक गांव के आस पास ग्राम संगठन कार्य हो रहा हैं। शिक्षा, उद्योग-धन्धों की उन्नति, सफ़ाई, रीति रस्मों में सुधार, और साख का प्रबंध करना ही इस योजना की मुख्य बातें हैं।

अभी तक जिन स्थानों पर भी ग्राम संगठन कार्य किया गया है, वह केवल प्रयोग मात्र है, कहीं भी विस्तृत क्षेत्र में ग्राम संगठन कार्य नहीं हुआ है। राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) ग्राम उद्योग-संघ द्वारा इस कार्य को बड़े क्षेत्र में करना चाहती है,

परन्तु अभी इसके विषय में कुछ कहा नहीं जासकता क्योंकि ग्राम-उद्योग-संघ अभी तक अच्छी तरह काम शुरू भी नहीं कर सका है।

गांवों के प्रति जनता की रुचि देखकर भारत सरकार तथा प्रान्तीय सरकारों का ध्यान भी इस ओर गया है। सन् १६३५-३६ के बजट में भारत सरकार ने ग्राम सुधार कार्य के लिये एक करोड़ रुपया प्रान्तीय सरकारों को दिया है। भारत सरकार से मिले हुए धन के अतिरिक्त प्रान्तीय सरकारों ने भी कुछ धन इस कार्य के लिये अपने बजटों में रखा है और अपने अपने प्रान्तों में योजनायें तैयार करके काम शुरू कर दिया है।

ग्राम संगठन कार्य चाहे जिस प्रकार किया जावे, परन्तु दो बातें अवश्य ध्यान में रखनी चाहियें:—

(१) गांवों का सुधार तभी सफलतापूर्वक हो सकता है जब कि गांव को सब समस्याओं को एक साथ हल किया जावे। गांव की एक आध समस्या को लेकर कार्य करने से कोई लाभ न होगा।

(२) ग्राम संगठन का आधार सहकारिता आन्दोलन होना चाहिये। यदि सहकारिता आन्दोलन की नींव पर ग्राम संगठन की दीवार खड़ी न की गई तो ग्राम संगठन कार्य का प्रभाव स्थायी न होगा।

—

इक्कीसवां परिच्छेद

उपसंहार

भारतवर्ष में सहकारिता आन्दोलन का आरम्भ हुए ३१ वर्ष के लगभग समय होगया, किन्तु आन्दोलन ने इस देश के आर्थिक जीवन में कोई विशेष परिवर्तन उपस्थित कर दिया हो, ऐसा दिखलाई नहीं देता। इसका कारण यह है कि आन्दोलन अभीतक शक्तिहीन है। बर्मा में तो आन्दोलन की मृत्यु ही होगई। वहां अधिकांश सहकारी समितियां दिवालिया होगईं; कुछ वर्षों से वहां का सहकारी विभाग केवल समितियों को दिवालिया बनाकर उस संबंध की ही कार्यवाही कर रहा है। वर्मा का तो प्रान्तीय बैंक तक फ़ेल होगया। वहां आन्दोलन नये सिरे से चलाया जावे तब भविश्य में कुछ आशा की जासकती है। किन्तु एक बार हज़ारों समितियों के दिवालिया होजाने पर नई समितियों की स्थापना करना कठिन होगा।

आसाम, मध्यप्रान्त, बिहार-उड़ीसा तथा उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त में भी आन्दोलन शक्तिहीन है। इन प्रान्तों में आन्दोलन फैल नहीं रहा है। साख समितियों की अवस्था भी सन्तोपजनक नहीं है। किन्तु प्रयत्न करने से समितियों की अवस्था सुधर सकती है और आन्दोलन को मज़बूत बनाया जा सकता है।

बड़े प्रान्तों में पंजाब और बम्बई में पूर्ण रूप से नहीं, किन्तु साधारण रूप से आन्दोलन सन्तोपजनक है, इनके उपरांत क्रमशः

मद्रास, संयुक्त प्रान्त तथा बंगाल का नम्बर आता है । यद्यपि इन प्रान्तों में भी बहुत संख्या में समितियां, ऐसी हैं कि जिनकी दशा सन्तोषजनक नहीं है और प्रति वर्ष सैकड़ों समितियां दिवालिया होती हैं किन्तु फिर भी आन्दोलन की दशा अत्यन्त शोचनीय नहीं है । अजमेर–मेरवाड़ा कुर्ग तथा देहली प्रांतों में आंदोलन की दशा साधारण है ।

देशी राज्यों में भी आन्दोलन की दशा सन्तोषजनक नहीं है भूपाल में आन्दोलन की दशा अत्यन्त शोचनीय है । ग्वालियर, इन्दौर, तथा काश्मीर में आन्दोलन अभी शक्तिहीन है, मैसूर, हैदराबाद, बड़ौदा, तथा ट्रावंकोर राज्यों में आन्दोलन की साधारण दशा है । अधिकतर देशी राज्यों में आन्दोलन अभी आरम्भ ही नहीं हुआ ।

तीस वर्षों के उपरान्त सहकारिता आन्दोलन को देश में एक प्रबल, शक्तिशाली आन्दोलन बनजाना चाहिये था । आन्दोलन को स्वयं अपने आप बढ़ना चाहिये था । ग्रामीण जनता को स्वयं सहकारी समितियों की मांग करनी चाहिये थी, महाजन को इस आन्दोलन से डरना चाहिये था तथा सहकारी समितियों के सदस्यों की आर्थिक स्थिति सुधरना चाहिये था किन्तु अभीतक ऊपर लिखे चिन्ह दृष्टिगोचर नहीं होरहे हैं इस कारण हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि आन्दोलन की दशा संतोषजनक नहीं है।

आन्दोलन की असफलता के कारण बहुत से हैं, भिन्न भिन्न विद्वानों ने भिन्न भिन्न कारणों को मुख्य माना है, जिनके विषय में

आगे लिखा जावेगा। किन्तु अभी तक विद्वानों का ध्यान ग्रामीण ऋण की ओर यथेष्ठ आकर्षित नहीं हुआ है; यह, लेखक की सम्मति में आन्दोलन की असफलता का मुख्य कारण है। यहां ग्रामीण ऋण के विषय में वे सब बातें दोहराने की आवश्यकता नहीं जो कि तीसरे परिच्छेद में लिखी जाचुकी हैं, केवल इतना कह देना पर्याप्त होगा कि किसान महाजन के चंगुल में बुरी तरह से फंसा हुआ है, वह चोटी से लेकर एड़ी तक ऋण में डूबा हुआ है। महाजन के शोषण करने का ढंग ऐसा विचित्र तथा भयंकर है कि किसान कभी ऋण-मुक्त नहीं हो सकता। इस का फल यह हुआ है कि किसान तथा अन्य निर्धन वर्गों का जीवन निराशावादी बनगया है। जिनको विश्वास नहीं, जिनको आशा नहीं कि हमारी दशा सुधर सकती है, उनमें सहकारिता आन्दोलन कैसे सफल हो सकता है! अस्तु, इस समस्या को हल करने का सर्व प्रथम प्रयत्न होना चाहिये।

भारतीय किसान तथा निर्धन वर्गों में अशिक्षा का अखंड साम्राज्य है। शिक्षा प्रत्येक आन्दोलन की पूर्ण सफलता के लिये आवश्यक है। सहकारिता आन्दोलन में तो शिक्षा की और भी आवश्यकता है, क्यों कि सदस्यों को स्वयं सहकारी साख समितियों को चलाना पड़ता है। समितियों के हिसाब रखने के लिये उनकी कार्यवाही लिखने के लिये शिक्षा की आवश्यकता है। भारतवर्ष में सहकारी साख समितियों के लिये सदस्य मन्त्री नहीं मिलते, इस कारण बाहर के आदमी को मंत्री नियुक्त करना पड़ता

है। आठ या दस समितियों का एक ही मन्त्री होता है, फल यह होता है कि मन्त्री ही इन समितियों का कर्ता धर्ता बनजाता है और सदस्यों को कार्य करने की शिक्षा नहीं मिलती। इन ग्रूप-सैक्रेटरियों के विरुद्ध बहुत शिकायत है किन्तु वे जमे हुए हैं। हैनरी वुल्फ जैसे प्रसिद्ध विद्वान का मत है कि अशिक्षा आन्दोलन की गति धीमी अवश्य रखती है किन्तु आन्दोलन की असफलता या सफलता इस पर निर्भर नहीं है क्योंकि किसान अशिक्षित होते हुए भी बुद्धि का तेज़ होता है। यदि उसे सहकारिता के सिद्धान्तों की शिक्षा ठीक प्रकार से दीजावे तो वह समिति को भली प्रकार चला सकता है।

भारत में बहुत से विद्वानों का मत है कि आन्दोलन सार्वजनिक न हो कर एक सरकारी नीति (State policy) के रूप में चलाया जा रहा है, यही आन्दोलन की निर्बलता है। है भी यह बहुत कुछ सत्य। यदि देखा जावे तो सहकारिता विभाग का रजिस्ट्रार ही आन्दोलन का सर्वेसर्वा है। समितियों का निरीक्षण करना, नई समितियों का रजिस्टर करना, खराब समितियों का तोड़ना, तथा उनका आडिट कराना उसके मुख्य कार्य हैं। रजिस्ट्रार अधिकतर कोई सिविलियन होता है अथवा उसी ग्रेड का कोई कर्मचारी, उसके नीचे डिप्टी रजिस्ट्रार तथा इन्सपैक्टर होते हैं। असिस्टेंट रजिस्ट्रार तथा डिप्टी रजिस्ट्रार प्रान्तीय सिविल सर्विस के होते हैं। कोई भी सिविलियन अधिक दिनों तक रजिस्ट्रार नहीं रह पाता, क्योंकि वह अपनी उन्नति को आन्दोलन

के लिये नहीं छोड़ सकता। फल यह होता है कि रजिस्ट्रार जल्दी जल्दी बदला करते हैं और एक नीति स्थायी रूप से काम में नहीं लाई जाती। रजिस्ट्रार को नियुक्त होते समय सहकारिता का ज्ञान नहीं होता, (श्री० कैल्वर्ट, स्टिकलैंड, तथा डार्लिंग इसके अपवाद स्वरूप हैं)। डिप्टी रजिस्ट्रारों को आन्दोलन से कोई विशेष प्रेम नहीं होता, क्योंकि वे दूसरे विभागों में जाने की चेष्टा करते रहते हैं। एक डिप्टी कलैक्टर डिप्टी रजिस्ट्रार बनने पर प्रसन्न नहीं होता। किसी भी आन्दोलन के लिये यह आवश्यक है कि उसके संचालक उत्साह और लगन के साथ उसमें जुटें। अधिकतर सहकारिता विभाग के कार्यकर्ताओं में इस बात का अभाव है। जो सज्जन कि इस आन्दोलन में अवैतनिक कार्य करते हैं वे सेवाभाव से काम नहीं करते वरन सरकार को प्रसन्न करके पदवी इत्यादि प्राप्त करने के उद्देश्य से करते हैं। यहां यह कह देना आवश्यक होगा कि बम्बई तथा मदरास प्रान्त में तथा अन्य प्रान्तों में भी कुछ ऐसे सज्जन अवश्य मिलेंगे कि जो शुद्ध सेवा भाव से काम कर रहे हैं। श्रीयुत देवधर, सर लल्लू भाई सांवल दास, श्री० एस. एस- तलमाकी, श्रीयुत् रामदास पंतलू, तथा मदरास के श्री टी. के. हनुमन्त राव और सर्वेन्ट-आफ़-इण्डिया सोसायटी के कार्यकर्ताओं की जितनी प्रशंसा की जावे, वह थोड़ी है, किन्तु अधिकतर कार्यकर्ता पहिली श्रेणी के हैं।

इस सबका फल यह हुआ है कि सहकारी साख समिति का सदस्य समिति को अपनी संस्था न समझ कर सरकारी बैंक

समझता है। वह तो समझता है कि जिस प्रकार सरकार तक़ावी बांटती है उसी प्रकार यह सरकारी बैंक ऋण देता है। इसका अर्थ यह है कि सहकारी समिति का सदस्य सहकारिता के मूल सिद्धान्त से अपरिचित है। वह यह नहीं समझता कि यह स्वावलम्बन का सिद्धान्त है। हम लोग मिलकर अपने पैरों स्वयं खड़े हुए हैं और अपनी आर्थिक उन्नति का प्रयत्न कर रहे हैं। इस अनिभिज्ञता का मुख्य कारण यह है कि सैन्ट्रल बैंक के कर्मचारी तथा अन्य संगठनकर्त्ता सदस्यों को सहकारिता के सिद्धान्तों की शिक्षा नहीं देते, जो अत्यन्त आवश्यक है और जिस पर मैकलेगन कमेटी ने विशेष ज़ोर दिया था। इसके अतिरिक्त सुपरवाइज़र, सैन्ट्रल बैंक के कर्मचारी तथा अन्य कार्यकर्त्ता सदस्यों को यह नहीं बतलाते कि यह समिति तुम्हारी है, तुम्हीं इसके मालिक हो, तुम इसका प्रबन्ध स्वयं जैसा चाहो कर सकते हो। इसका कारण यह है कि कर्मचारीगण यह समझते हैं कि ऐसा करने से सदस्यों पर रौब नहीं रहेगा तथा सैन्ट्रल बैंक का रुपया वसूल नहीं होगा। ऐसी परिस्थिति में भला किसान यह कैसे समझ सकता है कि समिति का वही मालिक है और समिति उसी की चीज़ है। जब तक कि किसान ऐसा न समझने लगें, उनमें स्वावलम्बन के भाव जागृत न हो उठें, तब तक यह आन्दोलन सहकारिता आन्दोलन नहीं कहा जा सकता। कोई भी आन्दोलन इस प्रकार सफल नहीं हो सकता। जर्मनी में सहकारिता आन्दोलन के जन्मदाता श्री० रैफ़ीसन तथा श्री० स्कूलज़ ने किसी

स्वार्थवश उसे नहीं चलाया था, वे अपने निर्धन भाइयों की सेवा के लिये सरकारी नौकरियों को ठुकरा कर उसके जन्मदाता बने थे। आन्दोलन के असफल होने का एक यह मुख्य कारण है कि इसमें कार्य करने वालों में लगन नहीं है। श्री० रैफ़ीसन सरकारी सहायता के दोपों को जानते थे। वे कहते थे कि यह आन्दोलन स्वावलम्बन तथा आत्मनिर्भरता के सिद्धान्त पर खड़ा किया गया है, सरकारी सहायता लेने से आन्दोलन में निर्बलता आ जावेगी। यही कारण था कि उन्होंने यह नियम बनाया कि सरकारी सहायता न ली जावे। भारतवर्ष में स्थिति ऐसी थी कि बिना सरकारी सहायता के आन्दोलन का देश में प्रवेश भी नहीं हो सकता था। सभी विद्वान् एक स्वर से इस बात को स्वीकार करते हैं कि प्रारम्भिक काल में सरकारी सहायता के बिना आन्दोलन चलाया नहीं जा सकता किन्तु यह विचार ज़ोर पकड़ता जा रहा है कि अब आन्दोलन को जनता के हाथों में सौंप देना चाहिये। परन्तु शाही कृषि कमीशन की सम्मति इसके बिलकुल विरुद्ध है। कमीशन ने तो यहां तक कह दिया है कि अवैतनिक कार्यकर्त्ताओं को आन्दोलन में आने के लिये उत्साहित नहीं करना चाहिये।

इस सम्बन्ध में एक बात उल्लेखनीय है, कहीं कहीं सहकारी समितियों का उपयोग डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, प्रान्तीय कौंसिल, तथा एसैम्बली के चुनाव सम्बन्धी प्रचार में किया जाने लगा है। सेन्ट्रल बैंकों के डायरैक्टर तथा अन्य प्रभावशाली कार्यकर्ता

अपने चुनाव में समितियों का उपयोग करते हैं। पंजाब के रजिस्ट्रार महोदय ने पिछली रिपोर्ट में इस ओर संकेत किया। अभी तक यह रोग अधिक नहीं है किन्तु सम्भव है कि भविष्य में यह भयंकर रूप धारण करे, इस कारण अभी से इसे रोकने का प्रयत्न होना चाहिये।

सहकारिता आन्दोलन की असफलता का एक कारण सहकारी समिति के सदस्यों के साथ असभ्य व्यवहार भी है। सहकारिता का सिद्धान्त तो यह है कि समिति के सदस्य अपनी आवश्यकताओं का अनुमान लगा कर अपने सम्मिलित अपरिमित दायित्व पर बैंक से कर्ज़ ले लें, रुपये को आवश्यतानुसार आपस में बांट लें और अदायगी के समय हर एक सदस्य अपनी किश्त दे दे तथा पंचायत समिति के ऋण की किश्त बैंक को चुका दे, क्योंकि सारे सदस्य समिति के ऋण के देनदार हैं। इस कारण यदि कोई सदस्य अपनी किश्त नहीं चुकाता तो अन्य सदस्य उस पर जोर डालेंगे और उससे वसूल कर लेंगे। किन्तु इसके विपरीत होता यह है कि बैंक के कर्मचारी उस गांव में पहुंचते हैं, जिसके सदस्यों पर ऋण होता है। बैंक के मैनेजर अथवा प्रबंधक (सुपरवायज़र) मालिक की भांति बैठते हैं और सदस्य हाथ बांध कर दूर खड़ा रहता है जो समय पर रुपया अदा नहीं कर पाते उन पर फटकार पड़ती है, गाली दी जाती है, और कभी कभी पिटवाया भी जाता है। इससे दो बड़ी हानियां होती हैं, एक तो सदस्य की दृष्टि में समिति का मूल्य नहीं रहता, वह महाजन

की तरह ही बैंक के कर्मचारी को ऋण-दाता समझता है। दूसरे जो किसान यह सब देखते हैं वह यह समझते हैं कि समिति से तो महाजन ही अच्छा है क्योंकि वह सबों के सामने अपमानित तो नहीं करता। यही कारण है कि सहकारिता आन्दोलन अभी तक जनता को आकर्षित नहीं कर सका। संयुक्त प्रान्त के आन्दोलन की जांच करने के लिये जो ओकडन कमेटी बिठलाई गई, उसने एक स्थान पर रिपोर्ट में लिखा है कि अन्दोलन स्वयं फैल नहीं रहा है। सोचने की बात है यह है कि यदि आन्दोलन को ग्रामीण जनता लाभदायक समझती तो आन्दोलन तीव्र गति से बढ़ता। किन्तु ऐसा नहीं हो रहा है, इससे यह अनुमान सहज में ही हो सकता है कि आन्दोलन के संचालन में कहीं न कहीं दोष अवश्य है। पंजाब, बम्बई, तथा मदरास को छोड़ कर अन्य प्रान्तों में तो सहकारी साख समितियों ने महाजन का ध्यान भी अपनी ओर आकर्षित नहीं किया है। महाजन की स्थिति गांवों में उतनी ही मज़बूत है जैसी कि पहिले थी, वह सहकारी साख समितियों से भयभीत नहीं हुआ है। इन सब बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि आन्दोलन में जीवन शक्ति की कमी है।

भारतीय सहकारिता आन्दोलन की एक कमी यह भी है कि आन्दोलन साख समितियों तक ही सीमित रहा। ग़ैर साख समितियां संख्या में बहुत कम हैं। बात यह थी कि ग्रामीण ऋण की इतनी भयंकर समस्या सामने उपस्थित थी कि आरम्भ में केवल साख समितियां ही स्थापित करने का प्रयत्न किया गया

और आज भी कार्यकर्त्ताओं का ध्यान साख समितियों की ओर ही अधिक है। भारतवर्ष जैसे कृषि प्रधान देश में साख समितियां अत्यन्त आवश्यक हैं, उनके महत्व को कोई अस्वीकार नहीं कर सकता किन्तु ग़ैर साख समितियों की भी उतनी ही आवश्यकता है। गांव का महाजन किसान को केवल ऋण ही नहीं देता, वह गांव का दूकानदार भी होता है, अर्थात् किसान को आवश्यक वस्तुएं बेचता है और उसके खेतों की पैदावार ख़रीदता है। जब तक कि सहकारी समितियां क्रय-विक्रय को भी अपने हाथ में लेकर महाजन को उसके स्थान से हटा नहीं देतीं, तब तक महाजन का बल नष्ट नहीं होगा और न किसान की आर्थिक दशा ही सुधर सकती है। यही नहीं, और भी दिशाओं में सहकारिता आन्दोलन को किसानों की सहायता करनी है। साथ ही साथ गृह-उद्योग धन्धों में लगे हुए कारीगरों के लिये उत्पादक समितियों की भी नितान्त आवश्यकता है। हर्ष का विषय है कि कुछ दिनों से सहकारिता विभाग तथा अन्य कार्यकर्त्ता ग़ैर-साख-समितियों की आवश्यकता का अनुभव करने लगे हैं और इस ओर प्रयत्न भी किया जा रहा है।

एक दोष जो कि इस आन्दोलन में घुस आया है, वह है काग़ज़ी लेन देन — जब समिति के सदस्य रुपया अदा नहीं करते तो समिति बैंक से उतना ही ऋण ले लेते हैं जितनी किश्त उन्हें चुकानी होती है। बैंक के बही खाते में पिछली किश्त चुकता दिखा दी जाती है, और उतना ही रुपया नये ऋण के रूप में

दिखला दिया जाता है। इसका अर्थ यह है कि रुपया वसूल नहीं होता, केवल लिखा-पढ़ी करली जाती है और अधिकारियों को धोखा दिया जाता है।

कहीं कहीं पंचायतदार बेईमानी करते हैं, कहीं कहीं महाजन ही समिति को हथियाने का प्रयत्न करता है, किन्तु भाग्यवश अब यह दोष कम दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

ऊपर लिखी हुई समालोचना से पाठकगण यह न समझ लें कि आन्दोलन से देश को कोई लाभ ही नहीं हुआ है। यह तो मानना ही होगा कि आन्दोलन अभी निर्बल है, दोष-पूर्ण संगठन तथा कार्यकर्त्ताओं की अकर्मण्यता के कारण यह अभी तक सबल नहीं हो सका है। फिर भी आन्दोलन से देश को बहुत लाभ हुआ है। साख समितियों के विषय में लिखते हुए हमने इस विषय में शाही कृषि कमीशन की सम्मति लिखी थी। कृषि कमीशन की सम्मति में " सहकारिता आन्दोलन के विषय में जानकारी बढ़ रही है, मितव्ययिता को प्रोत्साहन दिया जा रहा है। बैंकिंग के सिद्धान्तों की शिक्षा दी जा रही है, जहां आन्दोलन की नींव दृढ़ है वहां महाजन ने सूद की दर घटा दी है, तथा महाजन का प्रभुत्व कम हो गया है। इसका परिणाम यह हुआ है कि किसानों की मनोवृत्तियां बदल रही हैं। " कृषि कमीशन की तो यह राय है कि किसानों का उद्धार सहकारिता आन्दोलन की सफलता पर ही निर्भर है, यदि यह आन्दोलन असफल हुआ तो भारतीय किसान वर्ग के सुधार की सारी आशायें नष्ट हो जावेंगी।

आन्दोलन के दोषों की ओर संकेत करते हुए कृषि कमीशन ने कहा है कि आन्दोलन की आर्थिक दशा संतोषजनक है; हां, उसके संचालन में बहुत से दोष हैं।

अभी तक सहकारिता आन्दोलन का प्रचार बहुत कम हो पाया है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि सहकारी साख समितियां, ग्रामीण जनता को जितने ऋण की आवश्यकता होती है, उसका केवल पांच फ़ी सदी ऋण देती हैं। सहकारी साख समितियों के सदस्यों को एक शिकायत यह रही है कि जब उनको रुपये की आवश्यकता होती है तब उन्हें रुपया नहीं मिलता, लिखा-पढ़ी तथा जांच में बहुत समय लग जाता है। किसान को समय पर रुपया मिलना चाहिये — रुपया समय पर न मिलने पर उसे बहुत कठिनाई होती है इस कारण विवश होकर उसे महाजन से रुपया लेना पड़ता है।

अन्तिम शब्द—भारतवर्ष में लगभग ७ लाख गांव हैं, अधिकांश (९० प्रतिशत) जन संख्या गांवों में निवास करती है। आज हमारे गांवों की दशा अत्यन्त पतित है और उनमें रहने वाली जनता के अधिकांश भाग का जीवन निर्धनता, अज्ञान तथा गंदगी से भरा हुआ है, उसका शोषण अत्यन्त निर्दयता से हो रहा है। ऐसी दशा में ग्रामीण जनता जीवित है, यही क्या कम आश्चर्य की बात है। आयरिश किसानों के उद्धारकर्त्ता, आयरलैंड में सहकारिता आन्दोलन के जन्मदाता, सर होरेस-प्लैंकट के शब्दों में किसान के उद्धार के लिये तीन वस्तुओं की आवश्यकता

है, अच्छी खेती (Better farming), अच्छा जीवन (Better living) तथा अच्छा व्यापार (Better business)। भारतीय ग्रामीण को इनकी अत्यन्त आवश्यकता है।

हर्ष का विषय है कि कुछ दिनों से शिक्षित भारतीयों का ध्यान ग्राम्य जीवन को सुधारने की ओर गया है। किन्तु यह सर्वमान्य बात है कि ग्राम संगठन का कार्य विना सहकारिता के हो ही नहीं सकता। यदि हम चाहते हैं कि हमारे ग्रामीण भाइयों की दशा सुधरे तो हमें सहकारिता आन्दोलन में लग जाना चाहिये। जो चमत्कार कि सहकारिता आन्दोलन ने आयरलैंड, जर्मनी और इटली में कर दिखलाया वह भारतवर्ष में भी हो सकता है। किन्तु अभी तक हमारे शिक्षित वर्ग ने इस ओर ध्यान ही नहीं दिया। यदि हमारा शिक्षित वर्ग विशेषकर नवयुवक समुदाय इस ओर लग जावे तो थोड़े समय में आन्दोलन गांवों की कायापलट करदे। जिस सहकारिता आन्दोलन में राष्ट्र निर्माण की इतनी शक्ति है उस आन्दोलन की ओर से कोई भी देश-भक्त उदासीन किस प्रकार रह सकता है? जिस दिन हम भारतवासी सहकारिता आन्दोलन के मर्म को समझ लेंगे और आन्दोलन का प्रचार गांव गांव में कर सकेंगे, उस दिन भारतीय ग्राम जीवन सुखमय हो जावेगा।

शब्दावली

अन्तर्राष्ट्रीय	International
अपरिमित दायित्व	Unlimited liability
आडिट यूनियन	आय व्यय निरीक्षण करने वाली यूनियन
आय व्यय निरीक्षण	Auditing
आर्थिक	Economic
उत्पत्ति	Production
उत्पादक	Productive
उत्पादक सहकारी समितियां	Producers' Co-operative Societies
उपभोक्ता	Consumer
उपभोक्ता स्टोर्स	Consumers' Stores
उपभोग	Consumption
एकाधिपत्य (एकाधिकार)	Monopoly
औद्योगिक संगठन	Industrial organisation
क्रय-विक्रय समितियां	Purchase and Sale Societies
कार्यशील पूँजी	Working capital
गैर-साख-समितियां	Non-Credit-Societies
गृह-उद्योग-धन्धे	Cottage-industries

गृह-निर्माण समितियां	House-building Societies
घन	Cubic
घन फुट	Cubic foot
चल जायदाद	Moveable property
चल पूँजी	Fluid Resources
चल सम्पत्ति	Moveable Property
चालू जमा	Current deposit
जमानत	Security
ट्रेड यूनियन	मजदूर सभा
दायित्व	Liability
देनी	Liabilities
द्रव्य बाजार	Money market
धन वितरण	Distribution of wealth
नक़द साख	Cash-credit
निरीक्षण कौंसिल	Supervising Council
परिमित दायित्व	Limited Liability
पूँजीपति	Capitalist
प्रतिद्वंदिता / प्रतिस्पर्धा	Competition
प्रबन्धकारिणी समिति	Managing Committee
प्रारम्भिक सहकारी समिति	Primary co-oprative Society

बट्टा खाता	Bad debt
बन्धक बांड	Mortgage bond
भूमि बन्धक बैंक	Land Mortgage Banks
मितव्ययिता	Thrift
मिश्रित पूँजी वाली कम्पनी	Joint Stock Company
मिश्रित पूँजी वाले बैंक	Joint Stock Banks
मुद्दती जमा	Fixed deposit
रहन सहन सुधार समितियां	Better-living Societies
रक्षित कोष	Reserve Fund
लगान क़ानून	Tenancy Act
लायसैंस	अनुमति
लेनी	Assets
लेनी देनी का लेखा	Balance Sheet
विनिमय	Exchange
विनिमय व्यापार	Exchange business
व्यापारिक	Commercial
शक्तातिजीवन	Survival of the fittest
श्रमजीवी	Labourer
श्रम विभाग	Division of labour
श्रम समितियां	Labour Societies
सहकारिता	Co-operation
सहकारिता आन्दोलन	Co-operative movement

सहकारिता के सिद्धान्त	Principles of Co-operation
सहकारितावादी	Co-operators
सहकारी कृषि समितियां	Co-operative farming Societies
सहकारी श्रमजीवी समितियां	Co-operative labour Societies
साख	Credit
साधारण सभा	General meeting
साधारण साख	Normal credit
साम्यवाद	Socialism
सुरक्षित कोष	Reserve Fund
संघ	Federation
संतुलन	Balancing
संतुलन केन्द्र	Balancing centre
स्थिर सम्पत्ति	Immoveable property

भारतवर्षीय हिन्दी-अर्थशास्त्र-परिषद

(सन् १९२३ ई० में संस्थापित)

सभापति—

श्रीयुत् पंडित दयाशंकर दुबे, एम० ए०, एल-एल० बी० अर्थशास्त्र अध्यापक, प्रयाग—विश्वविद्यालय, प्रयाग।

मन्त्री—

(१) श्रीयुत् जयदेवप्रसादजी गुप्त, एम० ए०, बी० कॉम०, एस० एम० कालेज, चन्दौसी।

(२) साहित्यरत्न पंडित उदयनरायणजी त्रिपाठी एम० ए०, अध्यापक, दारागंज हाईस्कूल, दारागंज, प्रयाग।

इस परिषद का उद्देश्य है, जनता में हिन्दी द्वारा अर्थशास्त्र का ज्ञान फैलाना और उसका साहित्य बढ़ाना। कोई भी सज्जन १) प्रवेश शुल्क देकर इस परिषद का सदस्य हो सकता है। जो सज्जन इसे कम से कम १००) की आर्थिक सहायता देते हैं, वे इसके संरक्षक समझे जाते हैं। प्रत्येक सदस्य और संरक्षक को परिषद द्वारा प्रकाशित या सम्पादित पुस्तकें पौने मूल्य पर दी जाती हैं।

परिषद् की सम्पादन समिति द्वारा सम्पादित होकर निम्न-लिखित पुस्तकें प्रकाशित होचुकी हैं:—

(१) भारतीय अर्थशास्त्र (दो भाग)। (गंगा ग्रंथागार, लखनऊ)
(२) विदेशी विनिमय। ,, ,,
(३) अर्थशास्त्र शब्दावली (भारतीय ग्रंथमाला, वृन्दावन)
(४) कौटिल्य के आर्थिक विचार। ,, ,,
(५) हिन्दी में अर्थशास्त्र और राजनीति साहित्य। ,,
(६) सम्पत्ति का उपभोग। (साहित्य-मंदिर, दारागंज, प्रयाग)
(७) हमारे हरिजन। (सरस्वतीसदन, दारागंज, प्रयाग)

(८) भारतीय बैंकिंग। (रामदयाल अग्रवाल, प्रयाग)

इनके अतिरिक्त, निम्नलिखित पुस्तकों का सम्पादन होरहा है:-

(९) भारत में हिन्दुओं की दशा।

(१०) राजस्व-शास्त्र।

(११) अंक-शास्त्र।

(१२) मूल्य-विज्ञान।

हिन्दी में अर्थशास्त्र-सम्बन्धी साहित्य की कितनी कमी है, यह किसी साहित्य-प्रेमी सज्जन से छिपा नहीं है। देश के उत्थान के लिये इस साहित्य की शीघ्र वृद्धि होना अत्यन्त आवश्यक है प्रत्येक देश प्रेमी तथा हिन्दी प्रेमी सज्जन से हमारी प्रार्थना है कि वह इस परिषद का संरक्षक या सदस्य होकर हम लोगों को सहायता देने की कृपा करें। जिन महाशयों ने इस विषय पर कोई लेख या पुस्तक लिखी हो, वे उसे सभापति के पास भेजने की कृपा करें। लेख या पुस्तक परिषद द्वारा स्वीकृत होने पर सम्पादन-समिति द्वारा बिना मूल्य सम्पादित की जाती है। आर्थिक कठिनाइयों के कारण परिषद अभी तक कोई पुस्तक प्रकाशित नहीं कर पायी है, परन्तु वह प्रत्येक लेख या पुस्तक को सुयोग्य प्रकाशक द्वारा प्रकाशित कराने का पूर्ण प्रयत्न करती है। जो सज्जन अर्थशास्त्र-सम्बन्धी किसी भी विषय पर लेख या पुस्तक लिखने में किसी प्रकार की सहायता चाहते हों, वे नीचे लिखे पते से पत्र व्यवहार करें।

दारागंज, प्रयाग] दयाशंकर दुबे, एम० ए०

भारतीय ग्रन्थमाला, वृन्दावन

इस माला की स्थापना सन् १९१५ ई० में हुई। इसका उद्देश्य विशेषतया राजनीति, अर्थशास्त्र और समाज शास्त्र आदि विशेष उपयोगी विषयों की पुस्तकों की रचना और प्रकाशन है। अब तक १६ पुस्तकें छपी हैं। कुछ पुस्तकों के कई कई संस्करण होचुके हैं। कई पुस्तकें राष्ट्रीय एवं सरकारी शिक्षा संस्थाओं में स्वीकृत और प्रचलित हैं, तथा शिक्षा विभागों द्वारा पुरस्कृत है। पुस्तकों की नामावली अगले पृष्ठ पर दी हुई है, विशेष परिचय प्राप्त करने के लिये माला का विवरण और सूचीपत्र मंगाकर देखिये। कुछ सम्मितियां संक्षेप में आगे दी जाती हैं।

"प्रत्येक देश प्रेमी को इस माला की पुस्तकें अपनाकर इसके व्यवस्थापक को सत्साहित्य की वृद्धि के लिये उत्साहित करना चाहिये।" सैनिक।

It is the duty of every Hindi-knowing citizen to help the author, in the pioneer work that he is doing.

The Education.

"स्वराज्य चाहने वालों में कितने ही शास्त्री, पंडित और आचार्य तक वे बातें नहीं जानते जिनपर आपने इतनी पुस्तकें लिख कर प्रकाशित करदीं।" —महावीरप्रसाद द्विवेदी।

"यदि हम चाहते हैं कि हिन्दी में उपयोगी साहित्य का निर्माण हो तो हमें इस साहित्य को अपनाना चाहिये"। —विशाल भारत।

"हम जनता से निवेदन करेंगे कि वह माला की पुस्तकों को अपनाकर संचालक महोदय को अपनी दिशा में निर्द्वन्द बढ़ने के लिये प्रोत्साहन दे"। —स्वराज्य।

"हम इस ग्रन्थमाला में, इस ग़रीबी के गर्व में, इस ज्ञान के आत्म यज्ञ में, सम्मान करने योग्य अपनापन देखते हैं।" —कर्मवीर।